# श्री नित्यानन्द विलास

परमहंस परिव्राजकाचार्य
अवधूत श्री केशव भगवान

परमहंस परिव्राजकाचार्य अवधूत
शिरोमणि श्री गुप्तानंदजी महाराज

सद्गुरुदेव समर्थ अवधूत श्री नित्यानंदजी
महाप्रभुजी बापजी महाराज

अनंतश्री विभूषित ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
श्री जयनारायणजी बापजी महाराज

सद्गुरुदेव समर्थ अवधूत श्री नित्यानंदजी
महाप्रभुजी बापजी महाराज

ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अवधूत
श्री लक्ष्मीकांतजी बापजी महाराज

ॐ

# श्री नित्यानन्द विलास

ॐ

# श्री नित्यानन्द विलास

चतुर्थ संस्करण
गुरु पूर्णिमा, २०६० वि. सं.
१३ जुलाई २००३

१००० प्रतियां

केवल श्रद्धालु भक्तों के लिए
भेंट रु. १०१/- मात्र

- प्रकाशक -
गुरु भक्त मण्डल
श्री गुप्तानन्द आश्रम
मंदसौर (म. प्र.)

- मुद्रक -
कर्मवीर प्रकाशन
१०, पत्रकार नगर,
माधवराव सप्रे मार्ग, भोपाल (म.प्र.)

ॐ

# श्री नित्यानन्द विलास

परमहंस, परिब्राजकाचार्य, परम् अवधूत,

ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय, अनन्त श्री,

सद्‌गुरुदेव श्री नित्यानन्द जी

महाप्रभु जी के

सदुपदेशों का संग्रह

# विनय

समर्थ अवधूत श्रेष्ठ को नमन् करते हुए प्रस्तुत ग्रंथ का 'प्रारंभिक निवेदन' प्रस्तुत कर रहे हैं। ग्रंथ की 'प्रस्तावना' करने की धृष्टता हम नहीं कर सकते हैं। जो ग्रंथ परम ज्ञानी सद्गुरुदेव श्री नित्यानंदजी महाप्रभुजी के मुखारविन्द से उद्गारित हुआ है, उसे पढ़ कर सही समझ पाने की स्थिति में भी हम नहीं हैं। यह तो गुरुकृपा ही है जो इस ग्रंथ को पढ़ने का सौभाग्य हमें मिला।

'महानता' यदि प्रचारित न हो तो महानता को कोई फर्क नहीं पड़ता, किन्तु यदि सुप्रचारित हो जाए तो अनेक व्यक्ति उससे लाभ उठा सकते हैं। महान गुरु को प्रचार से कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, लेकिन उनकी वाणी कई सद्पात्रों को सार्थक जीवन दे सकती है। गुरुदेव के वचनों का प्रचार भी गुरुसेवा का ही एक रूप है। यह गुरुदेव के जगत कल्याण के लक्ष्य में सहयोगी होती है।

ऐसे ही गुरु सेवक तथा परम गुरुभक्त रतलाम के पं. कन्हैयालालजी उपाध्याय (वकील सा:) ने, जनकल्याणार्थ, प्रस्तुत ग्रंथ को प्रथम बार संग्रहित किया। ग्रंथ की प्रथम आवृत्ति भुवनेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम से प्रकाशित हुई थी। बाद में थोड़े परिवर्धन के साथ इसकी द्वितीय आवृत्ति (गुजराती भाषा में), सूर्य प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस, अहमदाबाद से प्रकाशित हुई।

एक अन्तराल के बाद १९३७ में गुरुभक्त श्री भाईलाल भाई डी. त्रिवेदी ने श्री राधेश्याम प्रेस बरेली से इसका तृतीय संस्करण प्रकाशित कराया। इसमें गुरुगीता, प्रश्नोत्तरी, वेदान्त रत्न, बापजी के उपदेश, वार्ताप्रसंग एवं कुछ कविताओं को भक्तों के ज्ञान-लाभ के लिए ग्रन्थ के रूप में आबद्ध किया गया।

वर्तमान में इस ग्रंथ का यही तृतीय संस्करण भक्तों को प्राप्य है, किन्तु लगभग ६५ वर्ष के प्रकाशकीय अन्तराल ने ग्रंथ को करीब-करीब अनुपलब्ध बना दिया है। जिज्ञासु भक्त, कठिनाई से प्राप्य इस ग्रंथ की

छाया प्रतियाँ करा कर ही पढ़ पाते हैं।

श्री गुप्तानंद आश्रम, मंदसौर में विराजमान परमपूज्य सद्‌गुरु श्री रामजीवानन्दजी महाराज एवं पूज्य श्री सच्चिदानंद जी गुरु माँ की कृपा एवं आशीर्वाद से, भक्तों की सुविधा के लिए सेवाभाव से यह चौथी आवृत्ति प्रस्तुत की जा रही है।

हमारा यह प्रयास रहा है कि छपाई की कोई गलती न रह पाये। तथापि मुद्रक और प्रकाशक अपनी ऐसी किसी भी भूल के लिए परम पूज्य गुरुवर और भक्तगणों से विनम्र क्षमाप्रार्थी हैं। क्योंकि यह ग्रंथ तो परम अवधूत सद्‌गुरुदेव श्री नित्यानन्द जी महाप्रभु की समर्थ वाणी है, जिसमें किसी तरह की त्रुटि की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

सिर्फ इतनी विनय है कि पूज्य गुरुदेव और गुरुमाँ का आदेश, उन्हीं की कृपा से इस संस्करण के रूप में उन्हीं के श्रीचरणों में समर्पित है। इसे प्रकाशित करने का गौरव कर्मवीर प्रकाशन, भोपाल को प्राप्त हुआ है। गुरुकृपा से प्राप्त इस 'प्रसादी' का रसास्वादन भकतगण विवेकपूर्वक कर सकें, यही कामना है।

समर्थ सद्‌गुरुदेव को नमन!

निवेदक
गुरुभकत मंडल
गुप्तानंद आश्रम
मंदसौर, मध्यप्रदेश

गुरुपूर्णिमा, २०६० वि.सं.
तदनुसार १३ जुलाई, २००३ ई.

गुरुदेव की कृपा से, आनन्द हो रहा है ।।टेक।।

तम से घिरा हुवा था, जो अन्ध हो रहा था।
वो दिव्य ज्योति पाकर, स्वर्भानु हो रहा है।।
गुरुदेव की कृपा. ।।१।।

जो था गरीब भारी, दर द्वार का भिखारी।
वो दिव्यकोश पाकर, अलमस्त हो रहा है।।
गुरुदेव की कृपा. ।।२।।

भ्रम से भटक रहा था, दिन रात हो रहा था।
लाचार हो रहा था, वह आज हंस रहा है।।
गुरुदेव की कृपा. ।।३।।

भयभीत हो रहा था, जो दीन हो रहा था।
तत्वं पदार्थ से वो, निर्भीक हो रहा है।।
गुरुदेव की कृपा. ।।४।।

संग्रहकर्ता-

## गुरु महिमा

अनेनैव प्रकारेण बुद्धिभेदो न सर्वगः।
दाता च धीरतामेति, गीयते नामकोटिभिः॥
गुरुप्रज्ञा प्रसादेन, मूर्खो वा यदि पण्डितः।
यस्तु-सम्बुध्यते तत्त्वं, विरक्तो भवसागरात्॥

(अवधूत गीता)

गुरु ब्रह्मा विष्णु हर कर, ऋषि मय ऋषि आदिकर।
कृतकृत्य वे हुवे हैं, एक देखे काना गाना ॥१॥

x x x

प्रभु है सोई गुरु है, गुरु है सोई प्रभु है।
अरे वो आत्मा तेरी है, गीता है तूंही सुखो ॥२॥

x x x

उठते बैठते फिरते सद्‌गुरु, नाम को भजना।
भजे जिसको बिना देखे, कभी होता नहीं तिरना ॥३॥

x x x

गुरु भक्त दिव्य स्वरूप निज, देखे विराट् है ॥४॥

x x x

जड़ का भजन किये से, मुक्ति न कोऊ पावे।
जड़ रूप वो हो जावे, भव बीच गोता खावे ॥५॥

x x x

रोना हँसना विश्व में, देखो घर घर होय।
शून्य विवेकी शून्य संग, रहा शून्य को रोय ॥६॥

x x x

महावीर उसको कहें, दे असत्य संग छोड़।
उलट वृत्ति जड़ देह से, निज आतम मे जोड़ ॥७॥

x x x

सूरत में ही मूरत मैंही, जहां देखूं वहाँ दीखूं मैं ही।
कोई भेद वा न अभेद है, नहिं दीखे दिल में ओट है ॥८॥

x x x

सर्व ठौर सर्व काल, नित्यानन्द को संभार।
निर्भय वोही मन्त्र जाप, खूब खात और खिलात रे ॥९॥

x x x

जड़ देह नित्य स्वरूप शून्य तज; जिनकी, अखंड सतमे रति ॥१०॥

x x x

लखा निज रूप नित्यानन्द कृपा गुरुदेव की पाई ॥११॥

x x x

जीव सदा शिवरूप, चराचर जीव सदा शिवरूप ॥१२॥

x x x

कुछ पर्वा नहीं ॥१३॥

x x x

AM Soul Almighty immortal ॥१४॥

# ॥ विषय सूची ॥

## नित्य-पाठ

सद्गुरु देव की आरती

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|---|

## नित्यानन्द- विलास



## परमात्मा की महिमा



## (३) मस्तों के ह्रदयोदगार



## (४) गुरु महिमा

## (५) सन्त महिमा



## (६) जिज्ञासु को सद्गुरु उपदेश

**७ ऋद्धि-सिद्ध**

## (११) रहस्य मय विनोद



## (१२) विपर्यय छन्द

## (१३) श्री राम विनोद



## (१४) नित्यआनन्द श्रुति



## (१५) जीवन सिद्धान्त (दोहा)



## (१६) ककक्काक्षरी



## (१७) वेदान्त रत्न जननी सुत उपदेश

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|---|

## (१८) मनुष्य जीवन की सफलता के अर्थ बाफनी का उपदेश



## (१९) विद्यार्थी के लक्षण



## (२०) उपदेश प्रद पद



## (२१) वार्ता प्रसंग

- ॐ -

नित्यानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति।
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम्॥

श्री महाप्रभु अवधूत श्री १०८ श्री नित्यानन्दजी महाराज

एकं नित्यं विमल मचलं सर्वधीसाक्षिभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं त्वां नमामि॥१॥

ॐ

# श्रीगुरू-गीता

सत्यं मानविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं,
व्याप्तं स्थावरजङ्गमं मुनिवरैर्ध्यातं निरुद्धेन्द्रियैः।
अर्काग्नीन्दुमयं शताक्षरवपुस्तारात्मकं संततं,
नित्यानन्दगुणालयं गुणपरं वन्दामहे तन्महः॥

–o–

# प्रास्तविक निवेदन।

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है; न कि- दुःख। परन्तु- "वास्तविक सुख किसे कहते हैं? तथा- वह किस प्रकार प्राप्त हो सकता है?" इसके विषय में भगवती 'श्रुति' कहती है-

**"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति,**
**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"**

(यजुः)

भावार्थः- 'उस परब्रह्म परमात्मा को जानकर ही मनुष्य 'शाश्वतसुख-अमृत' (मोक्ष) पद को प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त- अन्य और कोई उपाय नहीं है'।

दूसरी श्रुति कहती है:-

**"आचार्यवान् पुरुषो वेद।"**

(छान्दोग्योपनिषद्)

भावार्थः- 'परन्तु- जो ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय गुरु वाला (शिष्य) है, वह ही उस परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है; इतर (नुगरा) व्यक्ति नहीं'। इसी बात को श्री गोस्वामी तुलसीदासजी अपने शब्दों में इस भाँति स्पष्ट कहते हैं:-

**चौपाई-**

**गुरु बिन जल निधि तरै न कोई।**
**जो विरञ्चि शङ्कर सम होई॥**

इसी को ॐ प्रभु श्री 'जयहरि' जी निम्न शब्दों में बता रहे हैं-

दोहा-

**गुरु विन ज्ञान न ऊपजे, गुरु विन मिटै न भेव।**
**गुरु विन संशय ना मिटे, जय २ श्री गुरुदेव॥**

x x x

परन्तु - प्रथम तो वैसे 'सद्गुरु' की पहिचान, और उनका प्राप्त होना कठिन, पश्चात्- उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेना तो बहुत ही कठिन कार्य है; क्योंकि- गुरु की प्रसन्नता परा गुरु-भक्ति बिना प्राप्त नहीं हो सकती। यथा-

**यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**

**तस्यैते कथिता ह्यर्थाः, प्रकाशन्ते महात्मनः॥**

भावार्थः- "जिसकी देव (भगवान्) मे परा भक्ति है; और जैसी देव (भगवान्) मे है; वैसी ही अपने श्री गुरुदेव में हैं, उसी को यह सब शास्त्रों में कहे हुए विषय प्रकाशित होते हैं"। ऐसी स्थिति में यद्यपि-

**"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाऽभिगच्छेत्समित्पाणिः।**

**श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"**

भावार्थः- उस परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये- अधिकारी पुरुष भेट हाथ में लेकर ब्रह्मश्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाय।" इत्यादि श्रुति तथा-पुराण और इतिहासों के अनेक कथानकों में गुरुशरणागति की विधि बतायी गयी है, परन्तु- अत्यन्त संक्षेप से।

अतः- यह विषय अत्यन्त गम्भीर एवं सब सिद्धियों का मूल होने से कृपालु भगवान् श्री शङ्कर ने जगज्जननी श्री पार्वती जी के प्रति यत्किञ्चित् विस्तार से लोकोपकार्थ प्रकट किया, वही यह-

**"श्री गुरुगीता" है।**

परन्तु- गुरुगीता जैसे गम्भीर उपनिषद् का सम्पूर्ण अर्थ लेखनी द्वारा प्रगट करना अत्यन्त कठिन ही नहीं अपितु-असम्भव है, वह तो गुरु कृपा प्राप्त होने पर स्वतः हृदय में प्रकाशित होने वाला विषय है। जिज्ञासु-पुरुषों को इस के पाठ से उक्त कथन का आभाष प्राप्त होगा इस में संशय नहीं अस्तु-

x x x

यह गुरुगीता साम्प्रतं अप्राप्य-दुर्लभ सी हो गयी है। बहुत तलाश करने पर महाराष्ट्र, गुर्जर तथा- हिन्दी भाषी प्रान्तों से सिर्फ़ ११ प्रतियां; वह भी अस्तव्यस्त एवं अपूर्ण प्राप्त हुई हैं। क्योंकि- जिसके पास यह पुस्तक है; वह वंश परम्परया प्राणों से भी अधिक इसे छिपाकर रखता है। तथापि श्री गुरुदेव की कृपा से प्राप्त प्रतियों और समान ग्रन्थों से मिलान कर इसे प्रकाशित किया जा रहा है। ॐ एतेन तुष्यतां गुरुः।

ॐ तत्सत्

**दोहा।**

अड़े रहो गुरु चरण में, अपना जाप अजाप।
सदा विश्वव्यापक अचल, गुरुवर आपहि आप॥

## भजन (राग-भैरवी)

कौन करे सन्मान, गुरुविन। कौन करे सन्मान।
गुरू-भकत की गुरु-कृपा से, छुट जाये चौखान।टेक॥
अष्ट-सिद्धि नव-निद्धि जिनके, अवर करे धन धान।
स्थिर लोक परलोक में रहे वे, करे गमनागमन नहिं प्राण॥१॥
मतलब बिन तू देख लोक में, मान दे आप अमान।
सम्यक् ज्ञान होय सोइ मुनिसुण, हैक्वचित् पुरुष जन अजान॥२॥
समवृत्ति समहोय दृष्टि गुरु, कर गुरु का गुण गान।
है उल्लेख 'गुरुणां गुरुवर', कर दिव्य दृष्टि होय भान॥३॥
मन्दिर महल गाँव वन तीरथ, बसह जाय समसान।
नित्यानन्द चराचर व्यापक, है श्री गुरु भगवान्॥४॥

## भजन (राग-भैरवी)

गुरु बिन कौन लड़ाबे लाड।
मात तात पत्नी सुत आदि दे-भोग मोक्ष में आड।टेक॥
भूत भविष्यत् बर्तमान में, होय आनन्द मल छाँड।
अन्न वस्त्र फल फूल दूध घृत, प्रेटी ऑल् माइटी दी गॉड॥१॥
नित्य शुद्ध गुरु निराकार है, निराभास ओंकार।
चिदानन्द निजबोध रूप को, उष्ण लगे नहिं टाड॥२॥
विमल अनादि अक्षर ब्रह्म खिल, अखण्ड निरञ्जन आप।
स्वयं साक्षि चेतन निज आतम, अक्रिय अविनाशी झाड॥३॥
"भावातीतं त्रिगुणरहितं" ध्रुव तत्त्व में नहिं राड।
शेष महेश शारदा कथते, सुनहु जन जड़ता काड॥४॥

## भजन (राग-भैरवी)

कौर करे कल्याण? गुरू बिन कौन करे कल्याण।
सुजन कहूं बिन मुख मैं वाणो बिना कान सुन मान।।टेक।।
निद्रा भोजन भोग भय, -ये पशु पुरुष समान।
नर निज ज्ञान अधिकता जानहु, ज्ञान बिना पशु जान।।१।।
सत्य असत्य द्वैत जे कहिये, दे अद्वय यथारथ ज्ञान।
शिष्य गुरु को खोज शिष्य गुरु, तब पावे पद निर्वाण।।२।।
ब्रह्मज्ञान अपरोक्ष बिना गुरु, करा सके नहिं आन।
जीवन मुक्त करे गुरु छिन में, धर हृदये गुरु पद को ध्यान।।३।।
मान कहूँ वाणी सत् प्राणी, चाबी गुरु के हाथ।
परम कृपालु करुणासागर, नित्यानन्द पिछान।।४।।

**दोहा।**

परम सनेही विश्व में, श्री गुरु तेरा मीत।
कृत कृत्य तुझको करे, तज प्रमाद मति चीत।।१।।

# अथ गुरुगीता प्रारम्भः

श्रीगणेश-शारदा-सद्गुरु-मंगल-मूर्तिभ्योनमः

**यं ब्रह्म वेदान्त-विदो वदन्ति,**
**परं प्रधानं पुरुषं तथाम्ये।**
**विश्वोद्गाते कारणमीश्वरं वा,**
**तस्मै नमो बिघ्ननिवारणाय॥१॥**

ॐ अस्य श्रीगुरुगीता माला मन्त्रस्य ॥ भगवान् सदाशिव ऋषिः ॥ विराट छंदः ॥ श्रीगुरु-परमात्मा देवता ॥ हं बीजम् ॥ सः शक्तिः ॥ सोहं कीलकम् ॥ श्रीगुरु-प्रसाद सिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः॥

**॥ अथ करन्यासाः ॥**

ॐ हं सां सूर्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यां नमः॥ ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने मध्यमाभ्यां नमः॥ ॐ हं सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां नमः॥ ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः॥ ॐ हं सः अव्यक्तात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इति करन्यासाः॥

**॥ अथ हृदयादिन्यासाः ॥**

ॐ हं सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः॥ ॐ हं सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा ॥ ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने शिखायैवषट् ॥ ॐ हं सैं निराभासात्मने कवचायहुम् ॥ ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्॥ ॐ हं सः अव्यकतात्मने अस्त्राय फट्॥ इति हृदयादि न्यासाः॥

**॥ अथ घ्यानम् ॥**

**हंसाभ्यां परिवृत्त-पत्र-कमलैर्दिव्यैर्जगत् कारणं,**
**विश्वोत्कीर्णमनेक-देह-निलय स्वच्छंदमानन्दकम्।**
**आद्यन्तैकमखंड-चिदुघन-रसं पूर्णं ह्यनन्तं शुभं,**
**प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुपदं ध्यायेद्विभुं शाश्वतम् ॥१॥**

ॐ प्राणीमात्र में व्यापक, आत्मस्वरूप सुन्दर-मुख तथा दिव्यनेत्रवाले जगत के

कारणस्वरूप, विश्व उद्धार को अनेकदेह धारण करने वाले, स्वच्छन्द, आनन्द-दाता, अखंड, एक रस, सच्चिदानन्द, पूर्ण, अनन्त, कल्याणकर्त्ता, प्रत्यक्ष, अक्षर विग्रहवाले, शाश्वत, विभु, श्रीगुरुदेव के चरण कमलों का ध्यान करो ॥१॥

**विश्वं व्यापि नमामिदेवममलं नित्यं परं निष्कलं,**
**नित्योद्बद्ध-सहस्त्र-पत्र-कमलं लुप्ताक्षरे मण्डपे ॥**
**नित्यानन्दमयं सुखैकनिलयं नित्यं शिवं स्वप्रभं,**
**ध्यायेद्धंस-परं परात्परतरं स्वच्छंदसर्वागमम् ॥२॥**

श्रीगुरुदेव कैसे हैं कि- संसार भर में व्यापक, निर्मल, नित्य, पर, निष्कल, नित्यबुद्ध-बोधस्वरूप, सहस्रदल-कमल में ॐ में विराजित, नित्यानन्दस्वरूप, सुख समुद्र, त्रिकालावाधित, कल्याणकर्ता, अपनी प्रभा में प्रकाशित, पर, परात्पर, आत्मस्वरूप, स्वच्छन्द और सर्वत्र व्यापक हैं- ऐसे श्रीगुरुदेव को मेरा नमस्कार है ॥२॥

**ऊर्ध्वाम्नायगुरोः पदं त्रिभुवनोंकाराख्यसिंहासनं,**
**सिद्धाचारसमस्तवेदपठितं षट्चक्रसंचारणम् ।**
**अद्वैतस्फुरदग्निमेकममलं पूर्णप्रभा-शोभितं,**
**शान्तं श्रीगुरुपंकजं भज मनश्चैतन्यचंद्रोदयम् ॥३॥**

हे मन! श्रीगुरुदेव के चरणकमल सर्व वेदों के श्रेष्ठ भाग उपनिषद्-वेदान्त द्वारा स्तुति किये हुए, ज्ञानदाता, त्रिभुवन के आधार रूप, ॐकार नामक सिंहासनरूप, सिद्धाचार और समस्त वेदों से पठित, षट्चक्रों के संचारण रूप, अद्वैत तत्व के स्फुरण कराने वाले, एक अद्वितीय रूप, अखिल स्वरूप, पूर्ण प्रकाश से सुशोभित, शान्त और चैतन्य चन्द्र के उदय रूप हैं, तू सदा उनका ध्यान कर ॥३॥

**नमामि सद्गुरुं शान्तं, प्रत्यक्षं शिव रूपिणम् ।**
**शिरसा योगपीठस्थं, मुक्तिकामार्थसिद्धिदम् ॥४॥**

शान्त, प्रत्यक्ष शिवरूप, योगासन पर विराजित तथा मुक्ति की इच्छावालों को उनकी इच्छित सिद्धि देनेवाले ऐसे श्रीसद्गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

**प्रातःशिरसि शुक्लाब्जे, द्विनेत्रंद्विभुजं गुरुम् ।**
**वराभयकरं शान्तं, स्मरेत्तन्नाम-पूर्वकम् ॥५॥**

प्रातःकाल में-स्वेत कमल पर स्थित, दो नेत्र, दो भुजावाले वरदमूर्ति, अभय-कर्ता, शान्तरूप श्रीगुरुदेव का उनके नाम सहित स्मरण-ध्यान करे।

**प्रसन्नवदनाक्षं च, सर्वदेवस्वरूपिणम्।**
**तत्पादोदकजां धारां, निपतन्तीं स्व-मूर्द्धनि॥६॥**

जो प्रसन्न मुखारविन्दवाले हैं, सर्वदेव-स्वरूप हैं और जिनके चरणकमलों से निकली अमृतधारा को मस्तक पर धारण करने से शिष्य सर्व दुःखों से निवृत्ति पाता है॥६॥

**तया संक्षालयेद्देहे, ह्यंतर्वाह्यगतं मलम्।**
**तत्क्षणा द्विरजो मंत्रो, जायते स्फटिकोपमः॥७॥**

इस अमृतधारा में देह क्षालन करने से अन्तर बाहिर के सब मल दूर होकर हृदय में 'गुरु मन्त्र' स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान हो जाता है॥७॥

**तीर्थानि दक्षिणे पादे, वेदास्वन्मुखमाश्रिताः।**
**पूजयेदर्चितं तंतु, तदभिर्ध्यानपूर्वकम्॥८॥**

श्रीगुरु के दाहिने चरण में सब तीर्थ निवास करते हैं, तथा- सर्व वेद उनके मुखारबिन्द में स्थिर हैं, इसलिये ध्यानपूर्वक उनकी पूजा अर्चा करना चाहिये।

**सहस्रदल-पंकजे सकल-शीत-रश्मि-प्रभं**
**वरामय-कराम्बुजं विमल-गंध-पुष्पाम्वरम्।**
**प्रसन्न-वदने-क्षणं सकल-देवता-रूपिणं,**
**स्मरेच्छिरसिहंसगं तद्भिधानपूर्वं गुरुम्॥९॥**

सहस्रदल कमल में, सकल शान्त, तेज प्रभावाले, अभय करने वाले हस्तकमलवाले, निर्मल, श्रेष्ट गन्ध पुष्पों द्वारा अर्चित, प्रसन्नमुखवाले, सर्वदेव स्वरूप श्री गुरुदेव का 'हंस' रूप से ध्यान पूर्वक स्मरण करे॥९॥ इति ध्यानम्॥

ॐ मानसोपचारैः श्रीगुरुं पूजयित्वा॥ तद्यथा ॐ लं पृथिव्यात्मने गंधतन्मात्राप्रकृत्यानंदात्मने श्री गुरुदेवाय नमः-पृथिव्यात्मकं गंधंसमर्पयामि ॥ ॐ हं आकाशात्मने शब्दतन्मात्राप्रकृ-

त्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवायनमः- आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि ॥ ॐ यं वाय्वात्मने स्पर्शतन्मात्राप्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः-वायवात्मकं धूपं समर्पयामि ॥ ॐ रं तेज आत्मने रूपतन्मात्रा प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः- तेज आत्मकं दीपं समर्पयामि ॥ ॐ वं अवात्मने रसतन्मात्रा प्रकृत्यानंदात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः- अवात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि ॐ सं सर्वात्मने सर्वतन्मात्रा प्रकृत्यानंदात्मने श्री गुरुदेवाय नमः- सर्वात्यकम् सर्वात्मकान् सर्वोपचारान् समर्पयामि ॥ इति मानस पूजा॥ अथ श्रीगुरुमालामंत्रः।
"ॐ नमः श्रीगुरुदेवाय परमपुरुषाय, सर्वदेवतावशीकराय, सर्वारिष्टविनाशाय, सर्व-

मंत्रच्छेदनाय त्रैलोक्यं वशमानय स्वाहा॥

ॐ अचिंत्याव्यक्तरूपाय, निर्गुणाय गुणात्मने। समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः॥१॥ॐ

विचार में न आवे ऐसा है अस्फुट स्वरूप जिनका, ऐसे, परमार्थ से निर्गुण, व्यवहार से गुणरूप और समरत जगत के आधाररूप स्वरूपवाले श्रीसद्गुरुरूप परब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूं॥१॥

ऋषयऊचुः-

**गुह्याद्गुह्यतरं सारं, गुरुगीता विशेषतः।**
**त्वत्प्रसादाच्च श्रोतव्या, तत्सर्वं ब्रूहि सूत नः॥२॥**

ऋषिगण बोले-

हे सूत! धर्म्म दुर्ज्ञेय है, विशेषतः गुरुगीता-विद्या सब विद्याओं से अति दुर्ज्ञेय है, आपकी कृपा से हम उसको श्रवण करना चाहते हैं, इस कारण उसका वर्णन कीजिये॥२॥

सूतउवाच-

**कैलासशिखरे रम्ये, भक्ति-साधन-हेतवे।**
**प्रणम्य पार्वती भक्त्या, शंकरं परिपृच्छति॥३॥**

सूत बोले-

किसी समय-कैलास पर्वत के अति रमणीय-सुन्दर शिखर पर विराजित, श्रीशङ्कर भगवान् से जगन्माता पार्वती जी लोकोपकार के लिये भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रश्न करती हुई॥३॥

श्रीपार्वत्युवाच-

**ॐ नमो देव देवेश, परात्पर जगद्गुरो।**
**सदाशिव महादेव, गुरुदीक्षां यच्छमे॥४॥**

श्री पार्वती जी बोलीं-

हे प्रणवस्वरूप देव देवेश! हे परात्पर! हे जगद्गुरो! हे कल्याणस्वरूप देवाधिदेव महादेवजी!! मैं आपको प्रणाम करती हूं, कृपा करके मुझे गुरु-दीक्षा दीजिये!

**भगवन् सर्वधर्मज्ञ ब्रतानां ब्रतनायकम्।**
**ब्रूहि मे कृपया शंभो, गुरुमाहात्म्यमुत्तमम्॥५॥**

हे भगवन्! आप सर्व धर्मों के जाननेवाले हैं, इसलिये हे शम्भो! व्रतों में मुख्य-व्रत-रूप और उत्तम जो श्रीगुरु माहात्म्य है, वह कृपा करके मुझको कहिये॥४॥

**केन मार्गेण भो स्वामिन्, देही ब्रह्म मयो भवेत्।**
**तत्कृपां कुरु मे स्वामिन्नमामि चरणौ तव ॥६॥**

हे स्वामिन्! जीव कौन उपाय अवलम्बन करने से ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकता है? सो कृपा करके मुझसे कहिये। हे देव! मैं आपके चरण-कमलों को बारम्बार नमस्कार करती हूँ॥६॥

श्रीमहादेवउवाच-

**यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिता ह्यर्थाः, प्रकाशन्ते महात्मनः॥७॥**

श्रीमहादेव जी बोले-

हे पार्वती! जिससे परमेश्वर में उत्तम भकित हो और जैसी परमेश्वर में भकित हो, वैसी ही अपने गुरु में भकित होवे, उस महापुरुष को यह (योगशास्त्र में और वेदान्त में) कहे हुए अर्थ निज हृदय में प्रकाशित होते हैं।

**मम रूपासि देवित्वं, त्वद्भक्त्यंर्थ वदाम्यहम्।**
**लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा॥८॥**

हे देवि! तू मेरा ही रूप है तेरी भकित के लिये मैं कहता हूँ, तेरा यह प्रश्न लोकोपकार-जन-कल्याण के अर्थ है, पूर्व में ऐसा प्रश्न मुझसे किसी ने भी नहीं किया॥८॥ सुनो-

**यो गुरुः स शिवः प्रोक्तोयः शिवः सगुरुः स्मृतः।**
**विकल्पं यस्तु कुर्वीत, सनरो गुरुतल्पगः॥९॥**

"जो गुरु हैं- वही शङ्कर हैं और जो शङ्कर हैं- वही गुरु हैं" ऐसा जो कहा गया है सो सत्य है। इसमें जो संशय करता है उस मनुष्य को गुरु-पत्नि-गामी के समान महा पापी जानना॥९॥

**दुर्लभं त्रिषु लोकेषु, तच्छृणुष्व वदाम्यहम्।**
**गुरुं ब्रह्म बिना नान्यत् सत्यंसत्यं वरानने॥१०॥**

त्रैलोक्य के विषे दुर्लभ ऐसा तत्वसार तुझसे कहता हूँ तू सुन- 'गुरु ब्रह्म' के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है. हे पार्वती! यह वार्ता सत्य है। सत्य है!॥१०॥

**वेदशास्त्र पुराणानि, इतिहासादिकानिच।**
**मंत्रयंत्रादि विद्यानां, स्मृतिरुच्चाटनादिकम्॥११॥**

**शैवशाक्तागमादीनि, ह्यन्ये च वहवो मताः।**
**अपभ्रंशः समस्तानां, जीवानां भ्रान्तचेतसाम्॥१२॥**

वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, नाना प्रकार की विद्या, स्मृति चौंसठ कला, उच्चाटन, मारण, मोहन, जारण, वशीकरण आदि॥११॥

शैवमत, शाक्तमत और आगमादि दूसरे अनेक मत हैं ये सब अपभ्रंश को प्राप्त हुए मत जीवों के चित्तों को भ्रान्ति उत्पन्न करने वाले हैं॥१२॥

**जपस्तपोव्रतं तीर्थ, यज्ञोदानं तथैव च।**
**गुरुतत्त्वमविज्ञाय, सर्वं व्यर्थ भवेत्प्रिये॥१३॥**

हे प्रिये! गुरु के स्वरूप को जाने बिना जप, तप, व्रत, तीर्थ, यज्ञ और दानादि सर्व कर्म व्यर्थ होते हैं॥१३॥

**गुरुर्बुद्ध्यात्मनो नान्यत्, सत्यं सत्यं वरानने।**
**तल्लाभार्थं प्रयत्नस्तु, कर्त्तव्यश्च मनीषिभिः॥१४॥**

हे वरानने! जो गुरु है- वह ज्ञानात्मा से अन्य नहीं; यह वार्ता सत्य है, सत्य है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि- उसे प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करे॥१४॥

**गूढा विद्या जगन्माया, देहमज्ञानसंभवम्।**
**विज्ञानं तत्प्रसादेन, गुरु-शब्देन कथ्यते॥१५॥**

हे देवी! देह में अहंभाव प्रकट होने से महान् अविद्या उत्पन्न होती है। और जिसके कृपा प्रसाद से इसका अनुभवपूर्वक ज्ञान उत्पन्न होता है वह 'गुरु' शब्द से कथित है॥१५॥

**यदंघ्रिकमलद्वंद्वं, द्वंद्वतापनिवारकम्।**
**तारकं भवसिंधौ च, श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम्॥१६॥**

जिनके दोनों चरणकमल, दोनों- (मानसिक और दैहिक) तापों को अथवा- शीत उष्णादिक द्वंद तापों को हरण करने वाले तथा-संसार रूप समुद्र से पार उतारने वाले हैं, ऐसे श्रीगुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूं॥१६॥

**देही ब्रह्मभवेद्यस्मात्, त्वत्कृपार्थं वदामि तत्।**
**सर्वपापी विशुद्धात्मा, श्रीगुरोः पादसेवनात्॥१७॥**

जिस ज्ञान करके जीव ब्रह्मरूप हो जाता है 'वह ज्ञान' मैं तुझे कृपा के अर्थ कहता हूं- श्री गुरु के चरणों की सेवा करने से सर्वपापी पवित्र शुद्धात्मा हो जाता

है ॥१७॥

**सर्वतीर्थाऽबगाहस्य, संप्राप्नोति फलं नरः।**
**गुरोः पादोदकं पीत्वा, शेषं शिरसि धारयन्॥१८॥**

सर्व तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल-श्रीगुरु के पादोदक को पीने से तथा- शेष रहे को मस्तक पर धारण करने से प्राप्त होता है ॥१८॥

**शोषणं पापपंकस्य, दीपनं ज्ञानतेजसः।**
**गुरोः पादोदकं सम्यक्, संसारार्णवतारकम्॥१९॥**

श्रीगुरु का चरणोदक पापरूपी कीचड़ को सुखानेवाला, ज्ञानरूपी तेज को प्रकाश करनेवाला और संसाररूपी समुद्र से भली प्रकार तारनेवाला- पार करनेवाला है ॥१९॥

**अज्ञानमूलहरणं, जन्म-कर्म-निवारणम्।**
**ज्ञान-विज्ञानसिद्धयंर्थ, गुरुपादोदकं पिबेत्॥२०॥**

अज्ञान के मूल को हरण करने वाला, जन्म और कर्म निवारण करने वाला, तथा ज्ञान-विज्ञान सिद्ध करने वाला श्रीगुरु का पादोदक-चरणामृत पान करना चाहिये॥२०॥

**गुरुपादोदकं पानं, गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।**
**गुरु-मूर्तेः सदा ध्यानं, गुरु-स्त्रोत्रं सदा जपः॥२१॥**

श्रीगुरु के चरणोदक को पीना, श्रीगुरु का उच्छिष्ठ भोजन करना और श्रीगुरुमूर्ति का ध्यान करना तथा गुरुस्तोत्र का जाप करना॥२१॥

**स्वदेशिकस्यैव च नाम-कीर्त्तनं,**
**भवेदनन्तस्य शिवस्य कीर्त्तनम्॥**
**स्व-देशिकस्यैब च नाम-चिन्तनं,**
**भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम्॥२२॥**

अपने गुरुदेव का कीर्तन करना ही अनन्त शिव कीर्तन है और अपने गुरुदेव का चिंतन करना ही अनन्त शिव चिन्तन है॥२२॥

**यत्पादरेणु वैं नित्यं, कोपि संसारवारिधौ।**
**सेतु-वंधायते नाथ, देशिकं तमुपास्महे॥२३॥**

संसार-समुद्रपार होने के लिये जिन गुरुदेव की चरण-धूलि सेतु-रूप दिखती

है- उन श्रीगुरुदेव की मैं उपासना करता हूँ॥२३॥

**यस्मादनुग्रहं लब्ध्वा, महदज्ञानमुत्सृजेत्।**
**तस्मै श्रीदेशिकेन्द्राय, नमश्चाभीष्टसिद्धये॥२४॥**

जिनके अनुग्रह से ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, उन गुरुदेव को अभीष्ट सिद्ध के लिये नमस्कार करता हूँ॥२४॥

**काशी-क्षेत्रं निवासश्च, जान्हवी चरणोदकम्।**
**गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात्, तारकं ब्रह्म निश्चितम्॥२॥**

जहाँ श्रीगुरु निवास करते हैं, वहीं श्रीकाशी क्षेत्र जानना, श्रीगुरुचरणोदक को गंगा जानना और श्रीगुरु को साक्षात् श्री विश्वनाथ जान, वे श्रीगुरु साक्षात् तारक ब्रह्म हैं ऐसा निश्चय जानना॥२५॥

**शिरः पादांकितं कृत्वा, गयास्ते चाक्षयो वटः।**
**तीर्थराजप्रयागोऽसौ, गुरु-मूर्त्यै नमोनमः॥२६॥**

गुरु चरण मस्तक ऊपर धारण करना, यही गया, यही अक्षय वट और इसे ही तीर्थराज प्रयाग जानना। इस श्रीगुरु-मूर्ति को बारम्बार नमस्कार हो॥२६॥

**गुरुर्मूर्तिं स्मरेन्नित्यं, गुरोर्नाम सदा जपेत्।**
**गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत, गुरोरन्यन्न भावयेत्॥२७॥**

गुरुमूर्ति का सदा स्मरण करना (ध्यान धरना), गुरु नाम का सदा जाप करना, गुरु की आज्ञा पालन करना और गुरु के सिवाय अन्य की भावना नहीं करना॥२७॥

**गुरु-वक्त्रस्थितं ब्रह्म, प्राप्यते तत्प्रसादतः।**
**गुरोर्ध्यानं तथा कुर्यान्नारीव स्वैरिणी यथा॥२८॥**

श्रीगुरु के मुखारबिन्द बिषे ब्रह्म स्थित है, गुरु के प्रसाद से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, इसलिये गुरुमूर्ति का ध्यान सदा इस प्रकार करना; जैसे कि- जार स्त्री अपने प्रिय का चिन्तन करती है॥२८॥

**स्वाश्रमञ्च स्वजातिञ्च, स्वकीर्तिं पुष्टिवर्धनम्।**
**एतत्संर्व परित्यज्य, गुरोरन्यन्न भावयेत्॥२९॥**

अपने आश्रम को, वा अपनी जाति को वा कीर्ति को पुष्टि देने वाला सिवा गुरु के दूसरा कोई नहीं है, इसलिये दूसरे दूसरे सर्व पदार्थों का त्याग कर श्री गुरु के सिवा कोई भी भावना करना नहीं॥२९॥

**अनन्याश्चिन्तयन्तो ये, सुलभं परमं सुखम्।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, गुरोराराधनं कुरु॥३०॥**

श्री गुरु के अनन्य चिंतन करने से परमसुख की प्राप्ति सुलभ हो जाती है, इसलिए सर्व प्रयत्न करके श्रीगुरु की आराधना करो॥३०॥

**गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्तया च लभ्यते।**
**त्रैलोक्येऽस्फुटवक्तारो-देवाद्यसुरपन्नगाः॥३१॥**

श्री गुरु के मुख में जो ब्रह्म-विद्या रहती है वह गुरु-भकित द्वारा ही प्राप्त होती है, दूसरे (इन्द्रादिक) जितने त्रैलोकय में उपदेश देने वाले हैं वे गुरु समान नहीं हैं॥३१॥

**'गु' कारश्चांधकारोहि, 'रु' कारस्तेज उच्यते।**
**अज्ञान-ग्रासकं ब्रह्म, गुरुरेव न संशयः॥३२॥**

'गु' शब्द का अर्थ अंधकार है 'रु' शब्द का अर्थ तेज, प्रकाश है। अज्ञान का नाश करने वाला जो 'ब्रह्म' वह गुरु ही है, इसमें संशय नहीं॥६२॥

**'गु' कारश्वांधकारस्तु, 'रु' कारस्तन्निरोधकृत्।**
**अंधकार-विनाशित्वात् गुरुरित्यभिधीयते॥३३॥**

गुकार अन्धकार का वाचक तथा- रुकार उसके निरोध का वाचक है, इस कारण जो अज्ञान रूप अन्धकार को नाश करते हैं वे ही गुरु शब्द वाच्य हैं॥३३॥

**'गु' कारश्च गुणातीतोरूपातीतो 'रु' कारकः।**
**गुण-रूप-विहीनत्वात्, गुरुरित्यभिधीयते॥३४॥**

'गु' वर्ण गुणातीत तथा 'रु' कार वर्ण रूपातीत का वाचक है, गुण और रूप से परे जो परमतत्व है वह 'गुरु' शब्द से वर्णन किया गया है॥३४॥

**गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुणभासकः।**
**'रु' कारोऽस्ति परब्रह्म, मायाभ्रांतिविमोचकम्॥३५॥**

गुरु इस शब्द के प्रथम वर्ण 'गु' से माया आदि गुण प्रकाशित होता है, और द्वितीय वर्ण 'रु' से ब्रह्म में जो माया का भ्रम है; उसका नाश होता है; इस कारण 'गु' शब्द सगुण को और 'रु' शब्द निर्गुण अवस्था को प्रतिपन्न करके 'गुरु' शब्द बना है॥३५॥

**एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुर्लभम्।**
**हाहाहूहूगणैश्चैव, गन्धर्वादैश्च पूजितम्॥३३॥**

इस प्रकार से गुरु के चरणारविन्द सर्वश्रेष्ठ हैं जो देवताओं को भी दुर्लभ है, हाहा हूहू नामक गंधर्वादिकों ने भी इन्हीं चरणों को पूजा है ॥३६॥

**ध्रुवं तेषां च सर्वेषां, नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।**
**गुरोराराधनं कार्यं, स्वजीवित्वं निवेदयेत्॥३७॥**

सर्व पूजितों का यह ध्रुव निश्चय है कि- गुरु से परे कोई दूसरा तत्व नहीं है, इसलिये गुरु-सेवा कार्य में अपने जीवन को अर्पण कर देना ॥३७॥

**आसनं शयनं वस्त्रं, वाहनं भूषणादिकम्।**
**साधकेन प्रदातव्यं, गुरु-संतोष-कारणम्॥३८॥**

साधक को चाहिये कि वह गुरु को सन्तुष्ट करने के लिये आसन, शय्या, वस्त्र, वाहन, भूषणादि उनको अर्पण करे॥३८॥

**कर्मणा मनसा वाचा, सर्वदाऽऽराधयेद्गुरुम्।**
**दीर्घदण्डं नमस्कृत्य, निर्लज्जो गुरुसन्निधौ॥३९॥**

मन से वाचा से, और कर्म से सदा सर्वदा श्रीगुरु की अराधना करे, और गुरु के सन्मुख निर्ल्लज होकर दीर्घ दण्डाकार साष्टाङ्ग प्रणाम करे॥३९॥

**शरीरमिंद्रियं प्राणमर्थं, स्वजनबांधवान्।**
**आत्मदारादिकं सर्वं, सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्॥४०॥**

शरीर, इन्द्रिय, प्राण द्रव्य, स्वजन, वन्धु, आत्मा, स्त्री, पुत्र कन्या आदि सर्व श्री सद्गुरु के अर्पण असंकुचित चित्त से करे॥४०॥

**गुरुरेको जगत्सर्वं, ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।**
**गुरोः परतरं नास्ति, तस्मात्संपूजयेद्गुरुम्॥४१॥**

श्री गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिदेव रूपों से समस्त विश्व में व्याप्त हैं; गुरु की अपेक्षा और कोई श्रेष्ठ नहीं है, इस कारण गुरु की पूजा करना सदा उचित है॥४१॥

**सर्वश्रुतिशिरोरत्न, -नीराजितपदाम्बुजम्।**
**वेदान्तार्थ-प्रवक्तारं, तस्मात्सम्पूजयेद्गुरुम्॥४२॥**

सर्व श्रुतियों के शिरोरत्न-महावाक्य- श्री गुरु के चरण कमलों की आरति करते हैं- अर्थात् उनके स्वरूप को स्पष्ट रीति से प्रकाशित करते हैं; इसलिए वेदान्त के अर्थ का भली प्रकार प्रबोध कराने वाले श्रीगुरु की सम्यक् प्रकार से पूजा करे॥४२॥

यस्य स्मरणमात्रेण, ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
स एव सर्वसंपत्तिः, तस्मात्संपूजयेद्गुरुम्।।४३।।

जिनके स्मरणमात्र से ज्ञान स्वतः- आपोआप उत्पन्न होता है वे सद्गुरु ही सर्व सम्पत्तिरूप- सर्वस्वरूप हैं, इसलिये श्रीगुरु का सम्यक् प्रकार से पूजन करे।।४२।।

कृमिकीटभस्मविष्ठा, -दुर्गन्धिमलमूत्रकम्।
श्लेष्मरक्त त्वचामांसैर्नद्धं चैतद्वरानने।।४४।।

हे वरानने! यह शरीर तो कृमि, कीट, भस्म, विष्ठा, दुर्गन्धि मल, मूत्र, श्लष्म, रक्त, त्वचा, मांस आदि से भरा पड़ा है; इस लिये यदि इसका सदुपयोग करना है तो गुरु सेवा करो।।४४।।

संसार-वृक्षमारूढ़ाः, पतन्ति नरकार्णवे।
तस्मादुद्धरते सर्वान्, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।४५।।

संसार रूप वृक्ष पर आरूढ़ हुए जीव नर्करूपी समुद्र में पड़ते हैं उस नर्क से सभी का जो उद्धार करने वाले हैं, ऐसे श्री गुरु देव को मेरा नमस्कार है।।४६।।

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेकं परंब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।४६।।

गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही शिव और गुरु ही परब्रह्म हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।।४६।।

अज्ञानतिमिरांधस्य, ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।४७।।

जिन्होंने ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका द्वारा अज्ञान रूप-अन्धकार से अन्धे जीव के नेत्रों को खोल दिया है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।४७।।

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।४८।।

जो अखण्डमण्डलरूप इस स्थावर-जङ्गमात्मक संसार में व्याप्त हो रहे हैं, उन परमात्मा के परमपद का जो दर्शन कराते हैं; ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।।४८।।

स्थावरं जंगमं व्याप्तं, यत्किञ्चित्सचराचरम्।
त्वंपदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।४९।।

आकाश के सहित जड़ और चेतन जो कुछ पदार्थ हैं उनमें जो परमात्मा व्याप्त

हो रहे हैं- उनके चरण कमलों का दर्शन जिनके द्वारा मिला है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।४९॥

**चिन्मयं व्यापितं संर्व, त्रैलोक्यं सचराचरम्।**
**असित्वं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५०॥**

जो स्थावर-जङ्गमात्मक त्रिलोक में व्याप्त हो रहे हैं और जो शुद्ध ज्ञान मय हैं; ऐसे परमात्मा के चरण कमलों का दर्शन जिनके द्वारा हुआ है- होता है, उन गुरुदेव को नमस्कार है।५०॥

**निमिषार्द्धार्द्धपाताद्वा, यद्वाक्याद्वै विलोक्यते।**
**स्वात्मानं स्थिरमादत्ते, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५१॥**

जिनके वचन मात्र, अथवा- कृपावलोकन मात्र से निमिष मात्र में आत्मस्थिर हो जाता है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।५१॥

**चैतन्यं शाश्वतं शांत, व्योमातीतं निरंजनम्।**
**नादविन्दुकलातीतं, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५२॥**

जो पुरुष चैतन्यरूप, नित्य, शान्त, आकाश से भी परे और निरञ्जन हैं, जो प्रणव, नाद, ज्योति और कला से अतीत हैं; ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है।५२॥

**निर्गुणं निर्मलं शान्तं, जंगमं स्थिरमेव च।**
**व्याप्तं येन जगत्सर्वं, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५३॥**

जो त्रिगुण रहित, निर्मल, शान्त, चराचर रूप हैं, और जगत, मात्र में व्यापक हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।५३॥

**त्वं पिता त्वं च मे माता, त्वं वंधुस्त्वं च देवता।**
**संसार-प्रीति-भंगाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५४॥**

हे श्री गुरुदेव! आप मेरे पिता हो, आप मेरी माता हो, वन्धु हो और मेरे देव भी आप ही हो, संसार में से प्रीति-आसक्ति छुड़ाने वाले हे गुरुदेव! आपको मेरा नमस्कार है।५४॥

**यत्सत्येन जगत्सत्यं, यत्प्रकाशेन भाति यत्।**
**यदानन्देन नन्दन्ति, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥५५॥**

जिसकी सत्यता से जगत् सत्य दिखता है, जिसके प्रकाश से सब प्रकाश होता है, जिस आनन्द से ही सब आनन्द है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।५५॥

**यस्मिन् स्थितमिदं सर्वं, भाति यद्भानुरूपतः।**
**यत्प्रीत्या प्रियपुत्रादि, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।५६।।**

जिसमें यह सब जगत् स्थिर है, और सूर्य रूप से जो प्रकाशित है, जिसकी प्रीति के हेतु पुत्रादि प्रिय हैं; ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।।५६।।

**येन चेतयता हीदं, चित्तं चेतयते नरः।**
**जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्त्यादौ, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।५७।।**

जिसकी चैतन्यता से ही यह सब चैतन्य है, जिसकी चैतन्यता से ही मनुष्य का चित्तचेतन होता है, और जो जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्त्यादि में एक रस हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है।।५७।।

**यस्य ज्ञानमिदं विश्वं, न दृश्यं भिन्नभेदतः।**
**सदैकरूपरूपाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।५८।।**

जिस ज्ञान से यह संसार भेद-भाव-रहित, एक, अखंड-रूप जानने में आता है, उस ज्ञान के प्रदाता श्री गुरुदेव को नमस्कार है।।५८।।

**यस्य ज्ञानं मतं यस्य, मतं यस्य न वेद सः।**
**अनन्यभावभावाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।५९।।**

जिनका ज्ञान 'वेदसम्मत' है; और 'वेद का ज्ञान' ही जिनका ज्ञान है- ऐसे अनन्य भाव वाले श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।५९।।

**यस्मै कारणरूपाय, कार्यरूपेण भाति यत्।**
**कार्यकारणरूपाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६०।।**

कार्य-रूप से भासित होने वाले में जो कारण-रूप से स्थित हैं; उन 'कार्य-कारण-रूप' श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६०।।

**नानारूपमिदंविश्वं, न केनाप्यस्ति भिन्नता।**
**कार्य-कारण-रूपाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६१।।**

नाना प्रकार के विश्व में जो अनेक प्रकार की भिन्नता दीखती है; उसमें जो 'कार्य-कारण-रूप' से स्थित हैं; उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६१।।

**ज्ञानशक्तिसमारूढ-तत्वमालाविभूषिणे।**
**भक्तिमुक्तिप्रदायात्र, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६२।।**

जो ज्ञान शकित की पूर्णता को पहुंचे हुए हैं; और तत्त्वरूप माला से विभूषित हैं; और भोग तथा- मोक्ष प्रदान करने में समर्थ हैं- ऐसे श्रीगुरुदवे को नमस्कार

है।।६२।।

**अनेकजन्मसंप्राप्त, -कर्मधर्मविदाहिने।**
**ज्ञानाऽनलप्रभावेण, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६३।।**

जो आत्मज्ञान के प्रभाव-दान से बहुजन्मजन्मान्तरों के 'कर्म-रूप-बन्धनों' को दग्ध किया करते हैं- ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६३।।

**शोषणं भवसिन्धोश्च, दापनं सारसम्पदाम्।**
**गुरोः पादोदकं यस्य, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६४।।**

जिनके पादोदक पान, करने से संसार-रूपी समुद्र सूख जाता है, और तत्त्वज्ञान-रूप 'सारवान् सम्पत्ति' की प्राप्ति हो जाती है; ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६४।।

**न गुरोरधिकं तत्त्वं, न गुरोरधिकं तपः।**
**तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६५।।**

'तत्त्व' अर्थात्- 'ब्रह्म-ज्ञान' गुरु से अधिक नहीं है; तपस्या भी श्रीगुरुदेव से अधिक नहीं है; और जिस 'गुरु-तत्त्व-ज्ञान' से अधिक इस संसार में और कुछ भी नहीं है- ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६५।।

**मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।**
**स्वात्मैव सर्वभूतात्मा, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६६।।**

मेरे नाथ 'श्रीगुरु' ही जगत् के श्रीनाथ'- ईश्वर हैं, मेरे श्रीगुरु ही 'जगद्गुरु' हैं, मेरा आत्मा ही 'जगत् के सब प्राणियों का आत्मा है'- सो ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६६।।

**गुरुरादिरनादिश्च, गुरुः परमदैवतम्।**
**गुरुमन्त्रसमो नास्ति, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।६७।।**

गुरु ही सबके आदि हैं- उनसे आदि कोई भी नहीं है। गुरु ही देवताओं के देवता हैं, और गुरु-मन्त्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है- ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६७।।

**एक एव परोबन्धुर्विषमे समुपस्थिते।**
**गुरुः सकलधर्मात्मा, तस्मै श्रीगुरवे नमः।। ६८।।**

विषम समय के उपस्थित होने पर जो 'एक मात्र-वन्धु'- रक्षक हैं, जो सकल धर्मो की आत्मा हैं- ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।।६८।।

**गुरुमध्ये स्थितं विश्वं, विश्वमध्ये स्थितं गुरुम्।**
**गुरुर्विश्वं नमस्तेऽस्तु, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥६९॥**

गुरु के मध्य में विश्व स्थित है; और विश्व में श्रीगुरुस्थित हैं, ऐसे 'विराट्-रूप' प्रणम्य श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥६९॥

**भवारण्यप्रविष्टस्य, दिङ्मोहभ्रान्तचेतसः।**
**येन संदर्शितः पन्था, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७०॥**

संसार रूपी महाबन में प्रविष्ट हुए दिङ्मूढ-भ्रमित-जीव को मार्ग बतानेवाले श्री गुरुदेव हैं- ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥७०॥

**तापत्रयाग्नितप्तानामशान्तप्राणिनां मुने।**
**गुरुरेव परागङ्गा, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥७१॥**

हे मुनि! तीनों तापों की अग्नि से तप्त-अशान्त प्राणियों के लिये एक गुरु ही 'परा-गङ्गा' हैं- ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥७१॥

**अज्ञानेनाहिना ग्रस्ताः, प्राणिनस्तान् चिकित्सकः।**
**विद्यास्वरूपो भगवान्, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७२॥**

अज्ञान-रूपी रोग से ग्रस्त प्राणियों के 'वैद्य-विद्या-ज्ञान स्वरूप' भगवान् गुरु हैं- ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥७२॥

**हेतवे जगतामेव, संसारार्णवसेतवे।**
**प्रभवे सर्वविद्यानां, शंभवे गुरवे नमः॥७३॥**

जगत् के 'हेतु-रूप', संसाररूपी समुद्र से तिरन में सेतु-रूप' तथा-ज्ञान मात्र के उत्पादक 'कल्याण-स्वरूप' श्रीगुरुदेव को नमस्कार है॥७३॥

**ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम्।**
**मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥७४॥**

गुरु-मूर्तिध्यान ही 'सब ध्यानों का मूल' है; गुरु के श्रीचरण-कमल की पूजा ही सब 'पूजाओं का मूल' है, गुरु वाकय ही सब 'मन्त्रों का मूल' है और गुरु की कृपा ही 'मुकित' प्राप्त करने का प्रधान कारण है॥७४॥

**सप्तसागरपर्यन्तं, तीर्थस्नानफलं यथा।**
**गुरोः पादोदविन्दोश्च, सहस्रांशेन तत्फलम्॥८५॥**

सप्त समुद्र पर्य्यन्त तीर्थों में स्नान करने से जो फल लाभ होता है- गुरु के चरणकमलों के एक बिन्दु चरणामृत पान करने से उससे अधिक फल होता है, इस

कारण 'गुरु-पाद-पद्म-जल' सहस्र अंशेन 'पवित्र और दुर्लभ' है॥८५॥

**शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन।**
**लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यक्, गुरुमेव समाश्रयेत्॥७६॥**

शिव के रुष्ट हो जाने पर गुरु बचा लेते हैं परन्तु गुरु के रुष्ट हो जाने पर कोई बचा नहीं सकता। इसलिये 'सद्गुरु की प्राप्ति' हो जाने पर उसकी सम्यक् प्रकार से सेवा कर 'आश्रय' लेना चाहिये॥

**मधुलुब्धो यथा भृङ्गः, पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत्।**
**ज्ञानलुब्धस्तथाशिष्यो, गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत्॥७७॥**

जिस प्रकार भ्रमर मधु के लोभ में पुष्प से पुष्प पर घूमता फिरता है इसी प्रकार शिष्य ज्ञान प्राप्ति के लिये 'गुरु के पीछे पीछे' फिरता रहता है॥७७॥

**वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं, वाङ्मनोऽतीतगोचरम्।**
**श्वेतरक्तप्रभाभिन्नं, शिवशक्त्यात्मकं परम्॥७८॥**

शिवशक्त्यात्मक, श्वेत-रक्त-प्रभा से भिन्न, मनवाणी से अगोचर, श्रीगुरुदेव के श्रेष्ट-चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूं॥७८॥

**गुकारञ्च गुणातीतं, रुकारंरूपवर्जितम्।**
**गुणातीतमरूपञ्च, योदद्यात्स गुरुः स्मृतः॥७९॥**

'गु' कार अर्थान्- गुणातीत; और 'रु' कार अर्थात्- रूप वर्जित; ऐसे 'त्रिगुणातीत' को और 'अरूप' अर्थात्- 'निर्गुणनिराकार'- ऐसे 'ब्रह्मतत्त्व' को जो 'स्वरूपज्ञान' द्वारा भान कराते हैं- वह गुरु कहलाते हैं॥७९॥

**अत्रिनेत्रः शिवः साक्षाद्द्विवाहुश्च हरिः स्मृतः।**
**योऽचतुर्वदनोब्रह्मा, श्रीगुरुः कथितः प्रिये॥८०॥**

हे प्रिये! जो गुरुदेव हैं वे तीन नेत्र न होते हुए भी 'शिव' हैं दो हाथवाले 'हरि' हैं और चार मुख के बिना 'ब्रह्मा' हैं- ऐसा शास्त्रों में कहा है॥८०॥

**अयं मयाञ्जलिर्बद्धो, दयासागरसिद्धये॥**
**यदनुग्रहतो जन्तुः, चित्रसंसारमुक्तिभाक्॥८१॥**

ऐसे दया के सागर श्रीगुरुदेव को मैं सिद्धि-कृपा के अर्थ हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ, जिसकी कृपा से जीव संसार को 'चित्रवत्' देखता है और 'मुकित का भागी' बनता है॥८१॥

**श्रीगुरोः परमं रूपं, विवेकं चक्षुरग्रतः।**
**मन्दभाग्या न पश्यन्ति, अन्धाः सूर्योदयं यथा॥८२॥**

विवेकी चक्षु से श्रीगुरुदेव का 'परमस्वरूप' दीखता है, मन्द भागी-अभागों-को नहीं। जैसे कि- अन्धा सूर्योदय को नहीं देख सकता॥८२॥

**कुलानां कुलकोटीनां, तारकस्तत्र तत्क्षणात्।**
**अतस्तं सद्गुरुं ज्ञात्वा, त्रिकालमभिवन्दयेत्॥८३॥**

जो वंश और वंश-परम्परा को तत्क्षण उद्धार करने वाले हैं- ऐसे सद्गुरु को जानकर-प्राप्तकर-तीनों काल उनकी 'वन्दना' करते रहना॥८३॥

**श्रीनाथचरणद्वन्द्वं, यस्यां दिशि विराजते।**
**तस्यांदिशि नमस्कुर्याद्भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये॥८४॥**

हे प्रिये! जिस दिशा में श्रीगुरुदेव के चरणकमल विराजते हैं; उस दिशा को प्रतिदिन भकित पूर्वक नमस्कार करना चाहिए॥८४॥

**साष्टाङ्गप्रणिपातेन, स्तुवन्नित्यं गुरुं भजेत्।**
**भजनात्स्थैर्यमाप्नोति, स्वस्वरूपमयो भवेत्॥८५॥**

श्रीगुरुदेव को साष्टांग प्रणाम, सेवा स्तुति से भजना चाहिए। भजन से चित्त स्थिर रहता है; और फिर 'स्व-स्वरूप का ज्ञान' प्राप्त होता है॥८५॥

**दोर्भ्यां पद्भ्याञ्च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।**
**मनसा वचसा चेति, प्रणमोऽष्टाङ्ग उच्यते॥८६॥**

दोनों हाथों से, दोनों पाँव से, दोनों घुटनों से, छाती से, मस्तक से, दृष्टि से, मनसे और वाणी से- इस प्रकार (संयुकत रूप) से की गयी प्रणाम को 'अष्टाङ्ग प्रणाम' कहते हैं॥८६॥

**तस्यैदिशे सततमञ्जलिरेष नित्यं।**
**प्रक्षिप्यते मुखरितैर्मधुरैः प्रसूनै॥**
**जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती,**
**विश्वस्थिति-प्रलय-नाटक-नित्य-साक्षी॥८७॥**

जहाँ- चक्रवर्ती भगवान्-गुरुदेव सदा जाग्रत रहकर इस विश्वनाटक की 'स्थिति' और 'प्रलय' के साक्षी रूप से विराजित; 'मधुर' 'वाकय-पुष्प' खिलाते रहते है; उस दिशा को मेरी सदा-सर्वदा प्रणामाञ्जलि है॥८७॥

**अभ्यस्तैः किमु दीर्घकालविमलैर्व्याधिप्रदैर्दुष्करैः।**
**प्राणायामशतैरनेककरणैर्दुःखात्मकैर्दुर्जयैः॥**
**यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुःस्वयं तत्क्षणात्।**
**प्राप्यस्तत्सहजस्वभावमनिशं सेवे तमेकंगुरुम्॥८८॥**

बहुत काल में निर्मल बनानेवाले, व्याधि-प्रद दुष्कर, अनेक साधनों की अपेक्षा रखनेवाले, दुःख-रूप और दुर्जय- ऐस सैकड़ों प्राणायामों के अभ्यास से क्या प्रयोजन? जिसके (हृदय में) प्रकट होते ही बलवान् वायु स्वयं तत्काल विनाश को प्राप्त हो जाता है, उस 'सहजावस्था' को प्राप्त हो- मैं एकमात्र उन गुरुदेव को ही निरन्तर सेवन करता हूँ॥८८॥

**ज्ञानं बिना मुक्तिपदं, लभ्यते गुरुभक्तितः।**
**गुरोःसामान्यतो नान्यत्, साधनं गुरुमार्गिणाम्॥८९॥**

श्रीगुरु के प्रति भक्ति करने से ज्ञान के बिना भी मुक्तिपद-लाभ हो सकता है। श्रीगुरुदेव से परे और कुछ भी नहीं है; इस कारण गुरु-पन्थावलम्बी-साधकगण को ऐसे गुरुदेव का ध्यान करना उचित है॥८९॥

**यस्मात्परतरं नास्ति, नेति नेतीति वै श्रुतिः।**
**मनसा वचसा चैव, सत्यमाराधयेद्गुरुम्॥९०॥**

वेद कहते हैं कि- गुरु से परे दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है; इसलिये मन, वचन, कर्म से सदा- सर्वदा श्रीगुरुदेव की 'पूजा-आराधना' करना उचित है॥९०॥

**गुरोः कृपाप्रसादेन, ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः**
**सामर्थ्य तत्प्रसादेन, केवलं गुरुसेवया॥९१॥**

ब्रह्मा विष्णु और शिव ये तीनों देवता केवल एकमात्र श्रीगुरुदेव की कृपा से ही और गुरु-सेवा के फल से ही 'सृष्टि-पालन और प्रलय-क्रिया' करने में समर्थ हुए हैं॥९१॥

**देव-किन्नर-गन्धर्वाः, पितृ-यक्षाश्च तुम्बुरुः।**
**मुनयोऽपि न जानन्ति, गुरुशुश्रूषणे विधिम्॥९२॥**

देवतागण, किन्नरगण, गन्धर्वगण, यक्षगण, चारणगण और मुनिगण कोई भी गुरु-सेवा की विधि नहीं जानते॥९२॥

**महाऽहंकारगर्वेण, तपोविद्यावलेनच।**
**भ्रमन्त्येतस्मिन्संसारे, घटियन्त्रं तथा पुनः॥९३॥**

वे-तप, विद्या और शरीरबल के गर्व से गर्वित हो अहङ्कारी हो गये हैं, इससे घटियन्त्र की भाँति संसार के आवागमन के चक्कर में घूमते रहते हैं.॥९३॥

**न मुक्ता देवगन्धर्वाः, पितृयक्षास्तु चारणाः।**
**ऋषयः सिद्धदेवाद्या, गुरुसेवापराङ्मुखाः॥९४॥**

देवगण, गन्धर्वगण, पितृगण, यक्षगण, किन्नरगण, ऋषिगण और सब सिद्धगण के बीच में जो कोई गुरु सेवा-पराङ् मुख हो- सो कदापि 'मुक्ति-लाभ' करने में समर्थ न होगा॥९४॥

**ध्यानं शृणु महादेवि, सर्वानन्दप्रदायकम्।**
**सर्वसौख्यकरं चैव, भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥९५॥**

हे महादेवि पार्वती! मैं तुम्हारे निकट "गुरू-ध्यान" कहता हूँ- श्रवण करो, इस गुरु-ध्यान से सर्व प्रकार का आनन्द, सर्व सौख्य-लाभ होता है और एकाधार में यह भोग और मुक्ति-प्रदान किया करता है॥९५॥

**श्रीमत्परंब्रह्म गुरुं स्मरामि,**
**श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं भजामि।**
**श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं वदामि,**
**श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं नमामि॥९६॥**

श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु का 'स्मरण' करता हूँ, श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु का 'भजन' करता हूँ, श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु की 'प्रार्थना' करता हूँ तथा- श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु को 'नमस्कार' करता हूं॥९६॥

**ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,**
**द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।**
**एकं नित्यं विमलमचलं सवधीसाक्षिभूतं,**
**भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि॥९७॥**

ब्रह्म के स्वरूप भूत, आनन्दरूप परमसुख के दाता केवल ज्ञान को मूर्तिमय, सुखवन्दुःखादि द्वंद से रहित, आकाशतुल्य, वेद के 'तत्त्वमसि' इत्यादि-महाकाव्य के 'लक्ष्य' रूप, एक नित्य, निर्मल, स्थिर, सर्व प्राणियों की बुद्धि के साक्षीरूप छः भाव विकारों से परे, तीनों गुणों से रहित- ऐसे श्री सद्गुरु देव को मैं नमस्कार करता हूं॥९७॥

हृदम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थं,
सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम्॥
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकला-प्रकाशं,
सच्चित्सुखाभीष्टवरं दधानम्॥९८॥

हृदयरूपी कमल के मध्य भाग में स्थित-सिंहासन पर विराजित, दिव्यमूर्तिरूप, चन्द्रकला के समान प्रकाशवाले, सत्, चित् और आनन्द-सुख-रूप, और इच्छित-वरदान के देनेवाले- श्रीसद्गुरु का ध्यान शिष्य को करना चाहिये॥९८॥

श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पं,
मुक्ताविभूषं मुदितं द्विनेत्रम्॥
वामाङ्क-पीठस्थितदिव्य-शक्तिं,
मन्दस्मितं पूर्ण-कृपा-निधानम्॥९९॥

श्वेतवस्त्र धारण किये हुए, सफ़ेद गन्ध-पुष्प-मोतियों से विभूषित, हँसते दो नेत्रवाले, वामाङ्क में दिव्यशकित धारण किये, कृपा के सागर धीमे धीमे (मन्द मुस्कान से) हँस रहे हैं- ऐसा गुरु का ध्यान करे॥९९॥

आनन्दमानन्द-करं प्रसन्नं।
ज्ञान-स्वरूपं निज-भाव-युक्तम्॥
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं।
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि॥१००॥

आनन्दरूप, आनन्द-दाता, प्रसन्नमुखबाले, ज्ञान-स्वरूप, अपने सत्-स्वभाव से युक्त, योगीश्वर, स्तुति करने योग्य, और संसार रूपी रोग के वैद्य, श्रीमान गुरु को मैं नित्य प्रणाम करता हूं. ॥१००॥

वन्दे गुरूणां चरणारविन्दं,
संदर्शितस्वात्मसुखाम्बुधीनाम्॥
जनस्य येषां गलिकायमानं,
संसार-हालाहल-मोहशान्त्यै॥१०१॥

स्वस्वरूप-सुखरूप-समुद्र को बतानेवाले जो श्रीगुरुदेव के चरणकमल हैं; वे शिष्य के संसाररूप हालाहल-विष-से मोहित-मूर्छा- के लिये गलिका-औषध-रूप हैं- उन चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूं॥१०१॥

**यस्मिन् सृष्टिस्थितिध्वंस-निग्रहानुग्रहात्मकम्।**
**कृत्यं पञ्चविधं शाश्वद्, भासते तं गुरुं भजे।।१०२।।**

जिसमें उत्पत्ति, स्थिति, लय, निग्रह, अनुग्रह रूप पांच कृत्य 'शाश्वत्' (निरन्तर) भासते रहते हैं- उन गुरु का भजन करता हूँ।।१०२।।

**पादाब्जे सर्वसंसार-दावकालानलं स्वके।**
**ब्रह्मरंध्रेस्थिताम्भोज-मध्यस्थं चन्द्रमण्डलम्।।१०३।।**

जिन चरणकमलों का ध्यान करने से संसार की सर्वदावानल-अग्नि शान्त हो जाती है; वे चरणकमल ब्रह्मरंध्र में स्थित चन्द्र-मंडल में विराजमान हैं।।१०३।।

**अकथादित्रिरेखाब्जे, सहस्रदल-मण्डले।**
**हंसपार्श्वत्रिकोणे च, स्मरेत्तन्मध्यगं गुरुम्।।१०४।।**

'आज्ञाचक्र' के ऊपर मस्तक में 'सहस्र पत्र कमल' है। इस रविसदृश कमल के पञ्चाशत् दलों पर अकारादि क्षकार पर्यन्त पञ्चाशद्वर्ण हैं, उस अक्षर-कर्णिका में 'गोलाकार चन्द्रमण्डल' है, उस चन्द्रमण्डल के छत्राकार से ऊपर एक 'ऊर्ध्वमुखी द्वादश कमल' की कर्णिका में अकथादि 'त्रिकोण यन्त्र' विद्यमान है, इस यंत्र के चारों ओर 'सुधासागर' रहने से यन्त्र 'मणि-द्वीप' सदृश हो गया है। इस द्वीप के मध्यस्थान में 'मणिपीठ' है. उसमें 'नादविन्दु' के ऊपर 'हंस-पीठ' का स्थान है। हंस-पीठ के ऊपर 'गुरु-पादुका' है- इस स्थान में श्रीगुरुदेव का ध्यान करें।।१०४।।

**नित्यं शुद्धं निराभासं, निराकारं निरञ्जनम्।**
**नित्यबोधं चिदानन्दं, गुरुंब्रह्म नमाम्यहम्।।१०५।।**

नित्य-त्रिकालावाधित, माया मल से रहित, निराभास, लौकिक प्रकाश से रहित, आकार रहित, निरंजन-निर्लेप, ज्ञान तथा चिदानन्दरूप, ब्रह्मस्वरूपो 'श्रीसद्गुरु-ब्रह्म' को मैं नमस्कार करता हूँ।।१०५।।

**सकलभुवनसृष्टिः कल्पिताशेषसृष्टि-**
**र्निखिलनिगमदृष्टिः सत्पदार्थैकसृष्टिः।।**
**अथ गणपरमेष्टी सत्पदार्थैक सृष्टि-**
**र्भवगुणपरमेष्टी मोक्षमार्गैकदृष्टिः।।१०६।।**

समस्त संसार की सृष्टि जिसकी दृष्टि में कल्पनामात्र रह गई है, और इससे शेष सृष्टि जिसे सर्ववेदमयदृष्टि से सत् रूप-ब्रह्मरूप-दीखती है, इन्द्रियां जिसकी

परमनैष्ठिक होकर ब्रह्म-चिन्तन में निरत हो; एक मोक्ष मार्ग की ही ओर लगी हुई हैं- ऐसे श्रीसद्गुरुदेव की मुझ पर 'कल्याण-कारिणी-दृष्टि' सदा रहे ॥१०६॥

**सकलभुवनभंगस्थापनास्तंभयष्टिः**
**सकरुणरसवृष्टिस्तत्वमालासमष्टिः।**
**सकलसमयसृष्टिः सच्चिदानन्ददृष्टि-**
**र्निवसतु मयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्यदृष्टिः॥१०७॥**

सकल विश्व की उत्पत्ति-स्थिति-लयरूप-क्रिया के अधिष्ठान रूप, करुणारस की वृष्टिरूप, तत्त्वमाला की समष्टि-आधार रूप, सकल समय की सृष्टि रूप, सच्चिदानन्द-दृष्टिरूप; ऐसी श्रीगुरुदेव की 'दिव्य-दृष्टि' मुझ पर नित्य-निरंतर रहियो ॥१०६॥

**न गुरोरधिकं न गरोरधिकं,**
**न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।**
**शिवशासनतः शिवशासनतः,**
**शिवशासनतः शिवशासनतः॥१०८॥**

श्रीशिव की आज्ञा से, श्रीशिव की आज्ञा से, श्रीशिव की आज्ञा से, श्रीशिव की आज्ञा से- गुरु से कोई अधिक नहीं, गुरु से कोई अधिक नहीं, गुरु से कोई अधिक नहीं, गुरु से कोई अधिक नहीं ऐसा सद्गुरु के अनन्य भक्त कहते हैं॥१०८॥

**इदमेव शिवमिदमेव शिवं,**
**इदमेव शिवमिदमेव शिवम्।**
**मम शासनतो मम शासनतो,**
**मम शासनतो मम शासनतः॥१०९॥**

मेरी (महेश्वर की- स्वयं की) आज्ञा से, मेरी आज्ञा से, मेरी आज्ञा से, मेरी आज्ञा से, यह ('गुरुपूजन-स्तुति') ही सुखरूप है, यह ही सुखरूप है, यह ही सुखरूप है, यह ही सुखरूप है॥१०९॥

**विदितं विदितं विदितं विदितं,**
**विजनं विजनं विजनं विजनम्।**
**हरिशासनतो हरिशासनतो,**
**हरिशासनतो हरिशासनतः॥११०॥**

(भगवान् शंकर कहते हैं कि-) हरि (श्रीविष्णु) के शासन (वचन) से, हरि के शासन से, हरि के शासन से, हरि के शासन से, विजन (एकान्त) में, विजन में, विजन में, विजन में मैंने यह जाना है, यह जाना है, यह जाना है, यह जाना है कि- "कल्याण कर्ता श्री गुरु ही हैं" ॥११०॥ इति ध्यानम्

**एवं विधं गुरुं ध्यात्वा, ज्ञान मुत्पद्यते स्वयम्।**
**तदा गुरूपदेशेन, मुक्तोऽहमिति भावयेत्॥१११॥**

इस प्रकार गुरू का ध्यान करने से ज्ञान आप ही आप- स्वयं उत्पन्न होता है। और गुरु प्रसाद से ज्ञान होने से 'मुकत' होता है॥१११॥

**गुरुपदेशितै मार्गैर्मनशुद्धिं तु कारयेत्।**
**अनित्यं खण्डयेत्सर्वं, यत्किञ्चिदात्मगोचरम्॥११२॥**

गुरु के बताये हुए साधन द्वारा बुद्धिमान् (शिष्य) को अपने मन की शुद्धि करना चाहिए; और जो कुछ मन की विषय रूप वस्तु है; वह सब अनित्य है- ऐसा विचार करना चाहिए॥११२॥

**ज्ञेयं सर्वमतीतञ्च, शास्त्रकोटिशतैरपि।**
**ज्ञानं ज्ञेयं समं कृत्वा, यथा नान्यद्वितीयकम्॥११३॥**

ज्ञान, ज्ञेय दोनों को एक रूप जाने। नित्य-अनित्य अथवा-अनित्य-नित्य; यह सब छोड़ देकर ज्ञानी 'गुरुत्राण' लेता है॥११३॥

**किमत्र बहुनोक्तेन, शास्त्रकोटिशतैरपि।**
**दुर्लभा चित्तविश्रांतिर्विना गुरुकृपां पराम्॥११४॥**

बहुत कहने से क्या लाभ है- सौ करोड़ शास्त्रों से भी क्या होवे; सार बात तो यह है कि- "गुरु-कृपा के बिना मनुष्य के चित्त को विश्रांति मिलना दुर्लभ है"॥११४॥

**करुणा-खड्ग-पातेनच्छित्वां पाशाष्टकं शिशोः।**
**सम्यगानन्द-जनकः, सद्गुरुःसोभिधीयते॥११५॥**

जो दया-रूप खड्ग के पात (झटके) से शिशु (शिष्य) के (मल माया कर्मादि) आठ पाशों को छेदन कर सम्यक् आनन्द के उत्पन्न करने वाले है; वे गुरु- 'सद्गुरु' कहाते हैं॥११५॥

**एवं श्रुत्वामहादेवि, गुरुनिन्दां करोति यः।**
**स याति नरकान् घोरान्, यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥११६॥**

हे देवी! ऐसा श्रवण करने पर भी जो प्राणी गुरुदेव की निंदा करता है; वह जब तक चन्द्र सूर्य विद्यमान रहते हैं तब तक महान् घोर नरक में पड़ा रहता है॥११६॥

**यावत्कल्पांतको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।**
**गुरुलोपोन कर्तव्यः, स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्॥ ११७॥**

हे देवी! कल्पकान्त तक देह रहे; तब तक 'गुरु-स्मरण' करता रहे और ज्ञान प्राप्त हो जाय; अथवा- गुरु ताड़ना करे, तो भी 'गुरु आज्ञा का लोप न करे' यह शिष्य का कर्तव्य है॥११७॥

**हुंकारेण न वक्तव्यं, प्राज्ञशिष्यैः कदाचन।**
**गुरोरग्रे न वक्तव्यमसत्यं तु कदाचन॥ ११८॥**

विवेकी शिष्य को चाहिय कि- गुरु से कभी 'हुँकार कर' न बोले, तथा- कभी उनके सन्मुख 'असत्य-भाषण' न करे॥११८॥

**गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य, गुरुसान्निध्यभाषणः।**
**अरण्ये निर्जले देशे, स भवेद् ब्रह्मराक्षसः॥ ११९॥**

गुरु के सन्मुख जो शिष्य हुंकार तुंकार कर भाषण करता है- ओछी बोली बोलता है, वाद करता है; वह ऐसे वन में- जहाँ जल नहीं मिलता- ब्रह्मराक्षस होता है॥११९॥

**गुरुकार्यं न लङ्घेत, नाऽपृष्ट्वा कार्यमाचरेत्।**
**नह्युत्तिष्ठेद्दिशेऽनत्वा, गुरुसद्भावशोभितः॥ १२०॥**

गुरु के अपने ऊपर के प्रेम से अथवा अपने प्रमाद से उन्मत्त होकर गुरु के कार्य का उल्लंघन नहीं करना। गुरु को पूछे बिना नया काम नहीं करना तथा- प्रणाम किये बिना गुरु के पास से उठना वा- बैठना नहीं॥१२०॥

**न गुरोराश्रमे कुर्याद्दुःपानं परिसर्पणम्।**
**दीक्षा व्याख्या प्रभुत्वादि, गुरोराज्ञा न कारयेत्॥ १२१॥**

गुरु के आश्रम में 'अपेय-पान' और 'खोटा चलन' नहीं करना और न गुरु की आज्ञा सिवाय दीक्षा, व्याख्यान तथा अपनी बड़ाई- महत्व-वर्णन करे॥१२१॥

**नोपाश्रयञ्च पर्यङ्कं, न च पादप्रसारणम्।**
**नाङ्गभोगादिकं कुर्यान्न लीलामपरामपि॥ १२२॥**

गुरु के सामने पलंग पर न बैठे, पाँव फैलाकर न बैठे। न भोगादिक करे और

न किसी से ठट्ठा मश्करी करे॥१२२॥

**गुरूणां सदसद्वापि, यदुक्तं तन्न लङ्घयेत्।**
**कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ, दासवन्निवसेद्गुरौ॥ १२३॥**

गुरु के योग्यायोग्य कहे वचनों का उल्लंघन न करे, दिन रात उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सेवक-दास की भाँति रहे॥१२३॥

**अदत्तं न गुरोर्द्रव्यमुपभुञ्जीत कर्हिचित्।**
**दत्तञ्च रङ्कवद् ग्राह्यं, प्राणोप्येतेन लभ्यते॥ १२४॥**

चाहे प्राण जाँय तो भी गुरु के द्रव्य को बिना उनके दिये कभी उपयोग में नहीं लाना। और यदि गुरु देवें तो गरीब के समान ले लेना॥१२४॥

**पादुकासन-शय्यादि, गुरुणा यदधिष्ठितम्।**
**नमस्कुर्वीत तत्सर्वं, पादाभ्यां न स्पृशेत्क्वचित्॥ १२५॥**

जिस वस्तु का गुरु ने उपयोग किया हो- ऐसी चाखड़ी, (खड़ाऊँ) आसन तथा- शय्या आदि समस्त वस्तुओं को शिष्य नमस्कार करे; पर उसे कोई दिन पांव से स्पर्श न करे॥१२५॥

**गच्छतःपृष्ठतो गच्छेद्, गुरुछायां न लङ्घयेत्।**
**नोल्वणं धारयेद्वेषं, नालङ्कारांस्तथोल्वणान्॥ १२६॥**

गुरु जाते हों; तो उनके पीछे जाना। गुरु की छाया उल्लंघन न करे, असभ्य वेष न रखे, वैसे ही सजते गहने भी न पहने॥१२६॥

**गुरुनिंदाकरं दृष्ट्वा, धावयेदथवा शयेत्।**
**स्थानं वा तत्परित्याज्यं, जिव्हाछेदाक्षमो यदि ॥ १२७॥**

कोई गुरु की निन्दा करता हो तो वहाँ से चल दे, अथवा- सो जाय, या उस स्थान का परित्याग करदे, या- शक्ति हो तो उस निन्दक की जीभ काट डाले, या उसे चुप कर दे. "परन्तु गुरु निन्दा कभी न सुनें"॥१२७॥

**नोच्छिष्ठं कस्यचिद्देयं, गुरोराज्ञां न च त्यजेत्।**
**कृत्स्नमुच्छिष्टमादाय, नित्यमेव व्रजेद्बहिः॥ १२८॥**

गुरुदेव से मिले हुए प्रसाद को किसी को न दे, न कभी गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करे। 'गुरु-प्रसाद' रहित दूसरी वस्तु अंगीकार नहीं करना॥१२८॥

**नाऽनृतं नाऽप्रियं चैव, न गर्वान्ना प वा वहु।**
**न नियोगपरं ब्रूयाद्गुरोराज्ञां विभावयेत्॥ १२९॥**

झूठ नहीं बोलना, अप्रिय-भाषण नहीं करना, गर्व की अथवा- बहुत सी बात नहीं करना और न अभ्यास सम्बन्धी बात गुरु आज्ञा सिवाय कहना॥१२९॥

**प्रभो! देव! कुलेशान! स्वामिन्! राजन्! कुलेश्वर!**
**इति सम्बोधनैर्भीतो, गुरुभावेन सर्वदा॥ १३०॥**

प्रभो! देव! कुलेशान! स्वामिन्! राजन्! कुलेश्वर! इत्यादि संबोधन करते हुए-डरते हुए- गुरु-भाव से सर्वदा रहना॥१३०॥

**मुनिभिः पन्नगैर्वाऽपि, सुरैर्वा शापितो यदि।**
**काल-मृत्युभयाद्वापि, गुरुः संत्राति पार्वति॥ १३१॥**

हे पार्वती! मुनियों ने, सर्पों ने अथवा देवताओं ने जो किसी को शाप दिया हो तो- उसमें से अथवा-कालरूपी मृत्यु के भय से भी गुरु उसे बचा लेते हैं.॥१३१॥

**अशक्ता हि सुराद्याश्च, अशक्ता मुनयस्तथा।**
**गुरुशाप-प्रपन्नस्य, रक्षणाय च कुत्रचित्॥ १३२॥**

जिसे गुरु ने शाप दिया हो; ऐसे का रक्षण करने को कभी कोई भी देवता आदि समर्थ नहीं हैं, और मुनियों की भी सामर्थ्य नहीं हैं॥१३२॥

**मंत्र-राजमिदं देवि, गुरुरित्यक्षरद्वयम्।**
**स्मृति-वेदाथवाक्यानां, गुरुः साक्षात्परं पदम्॥ १३३।**

हे पार्वती! श्रुति के और स्मृति के वाक्यों में 'गुरु' यह दो अक्षर वाला महामंत्र है। और 'गुरु' यह साक्षात् 'परम-पद' हैं॥१३३॥

**सत्कार-मानपूजार्थं, दण्डकाषाय-धारणैः।**
**स सन्यासी न वक्तव्यः, सन्यासी ज्ञानतत्परः॥ १३४॥**

जो मान-सम्मान-पूजा प्राप्त करने को दण्ड, काषाय-वस्त्र धरण करते हैं वे सन्यासी नहीं हैं. सन्यासी उसी को कहा जाता है; जो 'ज्ञान में तत्पर हो'॥१३४॥

**विजानन्ति महावाक्यं, गुरोश्चरणसेवया।**
**ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता, इतरे वेषधारिणः॥ १३५॥**

जिन्होंने श्रीगुरु के चरणों की सेवा करके 'तत्वमस्यादि' महावाक्यों को जाना है- समझा है; वे ही जन सन्यासी हैं, इतर तो वेषधारी मात्र हैं॥१३५॥

**ब्रह्म नित्यं निराकारं, निर्गुणं बोधयेत्परम्।**
**भासयन् ब्रह्मभावं यो, दीपात् दीपान्तरं यथा॥ १३६॥**

जिस प्रकार एक दीपक अन्य- दीपक को प्रकट करता है, उसी प्रकार जो

अन्य (शिष्य) को ब्रह्मभाव का भास करा- नित्य, निराकार, निर्गुण परब्रह्म का बोध करे- वह 'गुरु' है ॥१३६॥

**गुरुप्रसादतः स्वात्माऽन्यात्मारामनिरीक्षणात्।**
**समता मुक्तिमार्गेण, स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते॥ १३७॥**

गुरु की कृपा से "निजात्मा और अन्य की आत्मा एक है" ऐसा निरीक्षण करते, करते, मुक्ति के मार्ग में चलते हुए- आत्मज्ञान में प्रवृत्ति होती है ॥१३७॥

**आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं, परमात्मस्वरूपकम्।**
**स्थावरं जङ्गमञ्चैव, प्रणमामि जगन्मयम्॥ १३८॥**

'स्थावर जंगमरूप' यह अखिल ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसे 'श्रीजगद्गुरु-ब्रह्म' को मैं नमस्कार करता हूं ॥१३७॥

**वंदेऽहं सच्चिदानन्दं, भावातीतं जगद्गुरुम्।**
**नित्यं पूंर्ण निराकारं, निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्॥ १३९॥**

सच्चिदानन्दमय, भेदरहित, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण और आत्मा के विषे स्थित- ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार है ॥१३९॥

**परात्परतरं ध्यायेन्नित्यमानन्द-कारकम्।**
**हृदयाकाश-मध्यस्थं, शुद्धस्फटिक-सन्निभम्॥ १४०॥**
**स्फटिके स्फाटिकं रूपं, दर्पणे दर्पणो यथा।**
**तथात्मनि चिदाकारमानन्दं सोहमित्युत॥ १४१॥**

वेही परात्पर, ध्यान करने में श्रेष्ठ, नित्य, आनन्द-कारक, हृदऽऽकाश के मध्य में शुद्ध 'स्फटिक' की भांति स्थित हैं ॥१४०॥

जैसे- स्फटिक में स्फटिक तथा दर्पण में दर्पण दीखता है; वैसे ही- आत्मा के चिदाकार में वह आनन्द स्वरूप 'सोऽहम्' मैं ही हूँ; यह दीखता है- 'अपरोक्षानुभव' होता है ॥१४१॥

**रूपातीतं हि पुरुषं, ध्यायते चिन्मयं हृदि।**
**तत्र स्फुरति यो भावः, श्रुणु तत्कथयामि ते॥ १४२॥**

हे देवी! निर्गुण, निरञ्जन, परमात्मा का 'ज्योति' रूप से हृदय में ध्यान करने से जो भाव उत्पन्न होता है; वह मैं तुझ से कहता हूँ, सो सुन- ॥१४२॥

**अजोऽहममरोऽहञ्च, अनादि-निधनोह्यहम्।**
**अविकारश्चिदानन्दो, हणीयान् महतो महान्॥ १४३॥**

**अपूर्वमपरं नित्यं, स्वयं ज्योतिर्निरामयम्।**
**विरजं परमाकाशं, ध्रुवमानन्दमव्ययम्॥ १४४॥**

'मैं अजन्मा हूं, अमर हूं, अनादि हूं, अनिधन हूं, अविकारी, आनन्द स्वरूप, अणु से अणु और महान् से महान् हूं।

मैं अपूर्व हूं, अपर, नित्य, ज्योति: स्वरूप, निरञ्जन, निराकार, परमाकाश रूप- सब में विराजमान, ध्रुव तथा-आनन्द रूप और अव्यय-स्वरूप हूं" ॥१४३-१४४॥

**अगोचरं तथाऽगम्यं, नाम-रूप-विवर्जितम्।**
**नि:शब्दं तु विजानीयात्स्वभावाद् ब्रह्म पार्वति॥ १४५॥**

हे पार्वती! जो अगोचर है, अगम्य है, नाम-रूप रहित है, तथा शब्दों द्वारा जो समझा न जा सके- ऐसी स्थिति को 'ब्रह्म' कहा है॥१४५॥

**यथा गन्ध-स्वभावत्वं, कर्पूरकुसुमादिषु:।**
**शीतोष्णत्व-स्वभावत्वं, तथा ब्रह्मणि शाश्वतम्॥ १४६॥**

जिस प्रकार कपूर-पुष्पादि में गंध स्वभाव ही से रहती है, सर्दी-गर्मी स्वाभाविक है, उसी प्रकार 'ब्रह्म' स्वभाव ही से स्थित है॥१४६॥

**यथा निज-स्वभावेन, कुण्डले कटकादय:।**
**सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति, तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम्॥ १४७॥**

जिस प्रकार कुण्डल-कङ्कणादि में सुवर्ण स्वभावत: है- वैसे ही 'ब्रह्म' सदा सर्वदा सब में स्वभावत: ही स्थित है॥१४७॥

**स्वयं तथा विधोभूत्वा, स्थातव्यं यत्र कुत्रचित्॥**
**कीटो भृङ्ग इव ध्यानाद्यथा भवति तादृश:॥ १४८॥**

संसार में कहीं भी- किसी भी- स्थिति में रहते हुए 'ब्रह्म का ध्यान' करने से 'ब्रह्म-रूप' हो जाता है। जैसे कि- 'कीड़ा' भ्रमर का ध्यान करने से भ्रमर-रूप' हो जाता है॥१४८॥

**गुरुध्यानात्तथा स्वान्ते, स्वयं ब्रह्म-भयो भवेत्।**
**पिण्डे पदे तथा रूपे, मुक्तोऽसौ नात्र संशय:॥ १४९॥**

गुरु का ध्यान करने से शिष्य स्वयं गुरु- (ब्रह्म) रूप हो जाता है। जिसकी 'कुण्डलिनी-जागृत' 'प्राण-स्थिर' और 'ज्योति प्रकट' हो गई है वह मुक्त है- इसमें संशय नहीं॥१४९॥

**श्रीपार्वत्युवाच-**

**पिण्डं किं तन्महादेव, पदं किं समुदाहृतम्।**
**रूपाऽतीतञ्च रूपं किमेतदाख्याहि शङ्कर॥ १५०॥**

श्रीपार्वती बोली:-

हे देवाधिदेव! प्राणनाथ! शंकर! कृपा करके यह मुझसे कहिए कि- 'पिण्ड' और 'पद' किसे कहते हैं? तथा -'रूपातीत' का 'रूप' क्या है?॥१५०॥

**श्रीमहादेवउवाच-**

**पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः, पदं हंसमुदाहृतम्।**
**रूपं विंदुरिति ज्ञेयं, रूपातीतं निरञ्जनम्॥ १५१॥**

श्री महादेव जी बोले:-

'पिण्ड' तो 'कुण्डलिनी शकित' जानना। क्यों कि नाभिचक्र के विषे जो कुण्डलिनी-शकित रहती है; उसी के आधार से यह स्थूल शरीर रहता है. और 'पद' को 'प्राण-हंस' कहा है। क्योंकि- प्राणप्रधान वासनालिंग का संग करके यह जीवात्मा 'हंस' की तरह अनेक देहों में फिरता है, और मोक्ष का साधन भी प्राण द्वारा ही होता है, इसी से प्राण को 'हंस' कहा है। और 'बिन्दु' को 'रूप'- कारण शरीर जानो। तथा 'रूपातीत'-निरञ्जन देव- 'ब्रह्म' को समझो॥१५१॥

**पिण्डे मुक्ताः पदे मुक्ता, रूपे मुक्ता वरानने!**
**रूपातीतेषु ये मुक्तास्ते, मुक्तो नात्र संशयः॥ १५२॥**

हे वरानने! जो प्राणि पिंड, पद, रूप को क्रम से प्राप्तकर जो रूपातीत को प्राप्त कर लेता है; वह निश्चय मुक्त हो जाता है- इसमें संशय नहीं॥१५२॥

**गुरोर्ध्यानेनेति नित्यं, देही ब्रह्ममयो भवेत्।**
**स्थितश्च यत्र कुत्रापि, मुक्तोऽसौ नात्र संशयः॥ १५३॥**

इस प्रकार गुरु के नित्य-ध्यान से प्राणी ब्रह्मरूप हो जाता है। वह चाहे जहाँ होवे तो भी उसे 'मुकत' समझना। इसमें संशय नहीं॥१५३॥

**ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं, यशः श्रीः स्वमुदाहृतम्।**
**षड्गुणैश्वर्ययुक्तःश्री, - भगवान् श्रीगुरुः प्रिये॥ १५४॥**

हे प्रिये! ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश शोभा (वा-लक्ष्मी) और द्रव्य (धर्म) ये छह ऐश्वर्य कहे हैं, और 'भगवद्-रूप श्रीगुरु' इन छह ऐश्वर्य से युकत होते हैं॥१५४॥

गुरुःशिवो गुरुर्देवो, गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम्।
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो, गुरोरन्यन्न विद्यते॥ १५५।

श्री गुरु ही शिव हैं, श्री गुरु ही देव हैं, श्रीगुरु ही बन्धु हैं, श्री गुरु ही शरीर हैं और श्रीगुरु ही आत्मा है तथा श्री गुरु ही जीव मात्र हैं। श्री गुरु के सिवा अन्य कुछ भी नहीं मालूम होता है ॥१५५॥

एकाकी निःस्पृहः शान्तश्चिन्ताऽसूया-विवर्जितः।
बाल्यभावेन यो भाति, ब्रह्मज्ञानी स उच्यते॥ १५६॥

जो अकेला, निस्पृह शान्त, चिन्ता, असूयादि रहित, बालक भाव से विचरता रहता है उसे 'ब्रह्मज्ञानी' कहते हैं ॥१५६॥

न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मन्त्रयन्त्रके।
गुरोः प्रसादादन्यत्र, सुखं वेदान्तसम्मतम्॥ १५७॥

गुरु की कृपा बिना इस पृथ्वी पर अथवा-दूसरी कोई जगह सुख नहीं हैं, वेद में और दूसरे शास्त्रों में सुख नहीं है, न यंत्र मंत्रादि ही में कोई सुख है ॥१५७॥

चार्वाकवैष्णवमते, सुखं प्राभाकरे नहि।
गुरोः पादान्तिके यद्वत्, सुखं नास्ति महीतले॥ १५८॥

श्रीगुरु की चरण-सेवा में वेदान्त-सम्मत जैसा सुख है, वैसा सुख चार्वाकमत में, वैष्णव मत में और प्रभाकर के मत में नहीं है ॥१५८॥

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य, न सुखं चक्रवर्तिनाम्।
यत्सुखं वीतरागस्य, मुनेरेकान्तवासिनः॥ १५९॥

जो सुख वीतरागी, एकान्त वासी, महात्मा को प्राप्त होता है; वैसा सुख न तो इन्द्र को है; और न चक्रवर्ती सम्राट् ही को होता है ॥१५९॥

रसं ब्रह्म पिवेद्यश्च, तृप्तोयः परमात्मनि।
इन्द्रश्च मन्यते रङ्कं, नृपाणां तत्र का कथा॥ १६०॥

जो महात्मा 'परमात्म-ब्रह्म-रस' को प्राशन कर चुके हैं उनके आगे इन्द्र दरिद्री लगता है; तो संसार के राजाओं की तो बात ही क्या है? ॥१६०॥

एक एवाद्वितीयोऽहं, गुरुवाक्येन निश्चितः।
एवमभ्यस्यता नित्यं, न सेव्यं वै वनान्तरम्॥ १६१॥
अभ्यासान्निमिषेणैव, समाधिमधि गच्छति।
आजन्मजनितं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति॥ १६२॥

गुरु वाक्य से- 'एक अद्वितीय, मैं हूं' ऐसा निश्चय करके जो नित्य अभ्यास करे; तो उसे दूसरा वन सेवन नहीं करना पड़ता। इसके-निमिष मात्र अभ्यास करने से समाधि लग जाती है और जन्म जन्मान्तर के पाप तत्क्षण नाश हो जाते हैं॥१६१-१६२॥

**किमावाहनमव्यक्ते, व्यापके किं विसर्जनम्।**
**अमूर्तौ च कथं पूजा, कथं ध्यानं निरामये॥ १६३॥**

अव्यक्त का आवाहन क्या? व्यापक का विसर्जन कैसे? मूर्ति रहित की पूजा कैसे हो? तथा- निरामय-निराकार का ध्यान कैसे किया जाय?॥१६३॥

**गुरुर्विष्णुः सत्वमयो, -राजसश्चतुराननः।**
**तामसो रुद्ररूपेण सृजत्यवतिहन्ति च॥ १६४॥**

श्री गुरु-सत्वमय-'विष्णु', राजस-'चतुरानन' (ब्रह्मा) और तामस 'रूद्र' रूप से दृष्टि को रक्षण करते हैं, उत्पन्न करते हैं, और संहार करते हैं॥१६४॥

**स्वयं ब्रह्ममयोभृत्वा, तत्परञ्चावलोकयेत्।**
**परात्परतरं नान्यत्, सर्वगं तन्निरामयम्॥ १६५॥**

उस परम तत्व के दर्शन से जीव स्वयं 'ब्रह्म-रूप' हो जाता है। उस परम तत्व के सिवाय अन्य कुछ नहीं है; वह सब में व्यापक, निराकर निरञ्जन है॥ १६५॥

**तस्यावलोकनं प्राप्य, सर्वसङ्गविवर्जितः।**
**एकाकी निःस्पृहःशान्तः, स्थाता वै तत्प्रसादतः॥ १६६॥**

उसके दर्शन प्राप्त होने से सब संग छुट जाते हैं। उस (गुरू) की कृपा-प्रसादी से वह अकेला निस्पृही-शान्त हो स्थिर हो जाता है।१६६॥

**लब्धं वाऽथ न लब्धंवा, स्वयं वा बहुलं तथा।**
**निष्कामेनैव भोक्तव्यं, सदा संतुष्टमानसम्॥ १६७॥**

प्राप्ति हो- किंवा न हो, थोड़ी प्राप्ति हो- अथवा तो बहुत हो, तो भी इच्छा रहित होकर- उपभोग कर; सदा संतुष्ट मन से जो रहते हैं- 'वे ब्रह्म रूप ही हैं'॥१६७॥

**सर्वज्ञ पदमित्याहुर्देही सर्वमयो भुवि।**
**सदानन्दः सदा शांतो, रमते यत्र कुत्रचित्॥ १६८॥**

ऐसे 'सर्वज्ञ' पद को प्राप्त हुए महात्मा देह-भाव रहित, नित्यानन्द-स्वरूप, अखंड, शान्त, लोकोपकार के लिये इधर उधर विचरते रहते हैं॥१६८॥

**यत्रैव तिष्ठते सोपि, स देशः पुण्य भाजनः।**
**मुक्तस्य लक्षणञ्चैव, तवाग्रे कथितं मया।। १६९।।**

वे जहां कहीं निवास करते हैं- वह देश 'महान् पवित्र'- पुण्य भाजन है। हे देवि! मैंने मुकत पुरुषों के लक्ष्ण तेरे आगे वर्णन किये हैं।।१६९।।

**उपदेशस्त्वयं देवि, गुरुमार्गेण मुक्तिदः।**
**गुरुभक्तिस्तथात्यन्ता, कर्तव्या वै मनीषिभिः।। १७०।।**

हे देवि! गुरु जिस मार्ग को बताकर मुकित का उपदेश देते हैं, वह यही है। इसलिये मुमुक्षु को चाहिए कि- गुरुभकित कर कर्तव्य पालन करे।।१७०।।

**नित्ययुक्ताश्रयः सर्वो, वेदकृत्सर्व-वेदकृत्।**
**स्वपरज्ञानदाता च, तम्वन्दे गुरुमीश्वरम्।। १७१।।**

जो नित्य-युकत है, सबको आश्रयदाता है, सर्व वेदों का ज्ञाता और वेदानुसारी कृति करने वाला अपना और दूसरे का ज्ञान कराने वाला है- उस ईश्वरस्वरूप गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूं।।१७१।।

**यद्यप्यधीता निगमाः, षडङ्गान्यागमाः प्रिये।**
**अध्यात्मादीनिशास्त्राणि, ज्ञानं नास्ति गुरुं बिना।। १७२।।**

हे पार्वती! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़े, वेद के षड् (छः) अङ्ग तथा-दूसरे सब शास्त्र पढ़ले और वेदान्त आदि शास्त्रों का अभ्यास करे; तो भी बिना गुरु के आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता।।१७२।।

**निरस्तसर्वसन्देहो, एकीकृत्य सुदर्शनम्।**
**रहस्यं यो दर्शयति, भजामि गुरुमीश्वरम्।। १७३।।**

सर्व सन्देहों को दूर कर; तथा-समस्त 'सत्-शास्त्र' के अभिप्राय एक करके जो 'गुप्त-बात' (ज्ञान) बताते हैं उन ईश्वर स्वरूप गुरु का मैं नित्य भजन करता हूं।।१७३।।

**ज्ञान-हीनो गुरुस्त्याज्यो, मिथ्यावादी विडम्बकः।**
**स्वविश्रान्तिं न जानाति, पर-शान्तिं करोतिकिम्।। १७४।।**
**शिलायाःकिं परं ज्ञानं, शिलासङ्घ-प्रतारणे।**
**स्वयं तर्तुं न जानाति, परं निस्तारयेत्कथम्।। १७५।।**
**न वन्दनीयास्ते कष्टं, दर्शनाद्भ्रान्तिकारकाः।**
**वर्जयेत्तान् गुरून्दूरे, धीरस्यतु समाश्रयेत्।। १७६।।**

ज्ञान से रहित मिथ्याबोलने वाले, विडंबना करने वाले गुरु का त्याग करना। क्योंकि- जो स्वयं की शांति को नहीं जानता तो दूसरे को शांति कैसे दे सकता है?

पत्थर पत्थर को नहीं तार सकता, जो स्वयं ही तिरना नहीं जानता वह दूसरे को कैसे पार कर सकता है।

धीर पुरुष को चाहिये कि ऐसे गुरु को; जिनके दर्शनों से भ्रान्ति उत्पन्न होती है, कष्ट होता है- दूर ही से त्याग दे, वे वन्दन करने योग्य नहीं है॥१७४॥१७५॥१७६॥

**पाखण्डिनः पापरता, नास्तिका भेदबुद्धयः।**
**स्त्रीलम्पटा दुराचाराः, कृतघ्ना वकवृत्तयः॥ १७७॥**
**कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टा, निन्द्यतर्कैश्च वादिनः।**
**कामिनः क्रोधिनश्चैव, हिंसाचण्डाः शठास्तथा॥ १७८॥**
**ज्ञानलुप्ता न कर्तव्या, -महापापास्तथा प्रिये।**
**एभ्योभिन्नो गुरुःसेव्य, -एकभक्त्या विचार्य च॥ १७९॥**

पाखण्डी, पाप करने में रत, नास्तिक, भेदबुद्धि उत्पन्न करने वाले, स्त्रीलंपट, दुराचारी, उपकार को न मानने वाले, वगलावृत्ति वाले।

कर्मभ्रष्ट, क्षमारहित, निंद्य, तर्कों से वृथा वाद करने वाले, कामी, क्रोधी, लोभी, हिंसक, चंड, शठ, तथा-

ज्ञान प्राप्त करने के कर्तव्य में न लगे हुए; तथा महापापी हों- ऐसों को छोड़; जो इनसे भिन्न, 'सद्गुण वाले गुरु' हैं; वे ही 'सेव्य'- सेवा करने के योग्य हैं॥१७७॥१७८॥१७९॥

**शिष्यादन्यत्र देवेशि, न वदेद्यस्य कस्यचित्।**
**नराणां च फलप्राप्तौ, भक्तिरेव हि कारणम्॥ १८०॥**

हे देवी! शिष्य के लिये गुरु के सिवा अन्यत्र कहीं देवत्व नहीं। इसलिये मनुष्य जन्म की सफलता का कारण एक गुरु-भकित ही है॥१८०॥

**गूढ़ा दृढ़ाश्च प्रीताश्च, मौनेन सुसमाहिताः।**
**सकृत्कामगता वापि, पंचधा गुरुरीरितः॥ १८१॥**

आत्म-ज्ञान-पूर्ण, अमोघ-संकल्प, दयालु, मौन द्वारा सुसमाहित, यज्ञकार्य निरत- ऐसे पंचलक्षणोंयुकत गुरु कहे गये हैं॥१८१॥

**सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं, सफलं पापनाशनम्।**
**यद्यदात्महितं वस्तु, तत्तद्द्रव्यं न वंचयेत्॥ १८२॥**

श्रीगुरु द्वारा जो प्राप्त होता है वह सब सफल होता है। पाप का नाश करने वाला होता है। इसलिये-आत्महित करने वाली-सम्पत्ति के प्राप्त करने में बंचना नहीं करना ॥१८२॥

**गुरुदेवार्पणं वस्तु, तेन तुष्टोस्मि सुब्रते।**
**श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां, मूलं मन्त्रञ्च गोपयेत्॥ १८३॥**

हे पार्वती! जो वस्तु गुरुदेव को अर्पण होती है; उससे मैं- संतोष पाता हूं! श्रीगुरु की 'पावड़ी', उनकी दी हुई 'मुद्रा' और उनके दिये 'मूलमंत्र' -इतनी वस्तुएं शिष्य को गुप्त रखना चाहिए॥१८३॥

**नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं,**
**बुद्धीन्द्रिय-प्राणामनोवचोभिः।**
**यच्चिन्त्यते भावतयात्मयुक्तौ,**
**मुमुक्षुभिः कर्ममयोपशान्तिः॥ १८४॥**

हे नाथ- गुरुदेव! मैं मनसा वाचा, कर्मणा से तथा-अन्तःकरण, इन्द्रियादि पूर्वक नमस्कार करता हूं- उन आपके चरण कमलों की कि, -जिनका आत्मभाव से चिन्तन कर मुमुक्षुजन कर्मादिक से शान्ति पाते हैं॥१८४॥

**अनेन यद्भवेत्कार्यं, तद्वदामि तव प्रिये।**
**लोकोपकारकं देवि, लौकिकं तु विवर्जयेत्॥ १८५॥**

हे प्रिये! इस गुरु गीता के पाठ करने से जो कार्य-सिद्ध होते हैं, वह कहता हूं:- इसका उपयोग लोकोपकार के लिये करना चाहिये, लौकिक कार्य के लिये नहीं॥१८५॥

**लौकिकाद्धर्मतो याति, ज्ञानहीनो भवार्णवे।**
**ज्ञानभावे च यत्सर्वं, कर्म निष्कर्म शाम्यति॥ १८६॥**

जो कोई इसका लौकिक-कार्य के लिये उपयोग करेगा, तो वह ज्ञान हीन, संसाररूपी समुद्र में पड़ेगा। ज्ञान भाव से उपयोग करने से कर्म निष्कर्म हो शान्ति की प्राप्ति होती है॥१८६॥

**इमां तु भक्तिभावेन, पठन्वै शृणुयादपि।**
**लिखित्वा यत्प्रदानेन, तत्सर्वं फलमश्नुते॥ १८७॥**

इस गुरु-गीता को भक्ति भाव से पढ़ने से, सुनने से अथवा-लिखकर सुपात्र को दान देने से जो पुण्य होता है; वह सब सुनो- ॥१८७॥

**गुरुगीतामिमां देवि, हृदि नित्यं विभावय।**
**महाव्याधि-गतैर्दुखैः, सर्वदा प्रजपेन्मुदा॥ १८८॥**

हे देवी! इस गुरु-गीता को नित्य भाव पूर्वक हृदय में धारण करने से सर्व प्रकार की महाव्याधि और दुःख दूर होकर (इसके पाठ कर्त्ता को) आनन्द प्राप्त होता है॥१८८॥

**गुरुगीताक्षरैकैकं, मंत्रराजमिदं प्रिये।**
**अन्ये च विविधा मंत्राः, कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १८९॥**

हे पार्वती! इस गुरु-गीता का एक एक अक्षर परम मंत्र है, और दूसरे विविध मंत्र इसके सोलहवें भाग के योग्य भी नहीं हैं॥१८९॥

**अगाधं फलमाप्नोति, गुरुगीता जपेन तु।**
**सर्वपापहरादेवि, सर्वदारिद्र्यंनाशिनी॥ १९०॥**

हे देवी! गुरु-गीता के जप-पाठ करने से अगाध फल की प्राप्ति होती है। यह गीता- सर्व पाप, तथा सर्व प्रकार के दारिद्र्यों की नाश करने वाली है॥१९०॥

**कालमृत्युहरा चैव, सर्वसंकटनाशिनी।**
**यक्षराक्षसभूतादि, -चोरव्याघ्रविघातिनी॥ १९१॥**

यह गुरु-गीता काल (मृत्यु) को हरने वाली, सर्व संकटों की नाशक तथा- यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि, चोर, व्याघ्रादि को घात करने वाली है॥१९१॥

**सर्वोपद्रवकुष्ठादि, -दुष्ट-दोष-निवारिणी।**
**यत्फलं गुरूसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद्भवेत्॥ १९२॥**

सर्व उपद्रव, कुष्टादि रोग और दुष्ट- दोषों को निवारण करने वाली यह गीता है। श्रीगुरु के सान्निध्य में रहने से जो पुण्य-फल मिलता है, वही इसके पाठ करने से प्राप्त होता है॥१९२॥

**महाव्याधिहरा सर्वा, विभूतिः सिद्धिदा भवेत्।**
**अथवा मोहने वश्ये, स्वयमेव जपेत्सदा॥ १९३॥**

इसके स्वयं सदा जप करने से महाव्याधि दूर हो सर्व विभूति की प्राप्ति होती है। तथा- मोहन, वशीकरण आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है॥१९३॥

**कुशदूर्वासने देवि, ह्यासने शुभ्रकम्बले।**
**उपविश्य ततो देवि, जपेदेकाग्रमानसः॥ १९४॥**

हे देवी! मनुष्य को चाहिये कि कुश, दूर्वासन, शुभ्र-कंबल पर बैठकर एकाग्र

मन से जप करे-पाठ करे॥१९४॥

**शुक्लं सर्वत्र वै प्रोक्तं, वश्ये रक्तासने प्रिये।**
**पद्मासने जपेन्नित्यं, शान्तिवश्यकरं परम्॥ १९५॥**

श्वेत आसन सब समय युक्त है। रक्तासन से वशीकरण होता है। पद्मासन से बैठकर नित्य जप करने से श्रेष्ठ शान्ति प्राप्त होती है॥१९५॥

**वस्त्रासने च दारिद्र्यं, पाषाणे रोगसंभवः।**
**मेदिन्यां दुःखमाप्नोति, काष्ठे भवति निष्फलम्॥ १९६॥**

वस्त्र के आसन से दारिद्र, पाषाण- पत्थर पर बैठने से रोग की संभावना, पृथ्वी से दुःख और काष्ठ पर बैठने से निष्फलता मिलती है॥१९६॥

**कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षः श्रीर्व्याघ्रचर्मणि।**
**कुशासने ज्ञानसिद्धिः, सर्वसिद्धिस्तु कम्बले॥ १९७॥**

मृगचर्म पर बैठने से 'ज्ञान-सिद्धि' व्याघ्रधर्म 'मोक्षदाता' 'कुशा-दर्भासन-'ज्ञानसिद्धि' तथा- कंबल आसन से तो 'सर्वसिद्धि' होती है॥१९७॥

**आग्नेय्याकर्षणञ्चैव, वायव्यां शत्रुनाशनम्।**
**नैर्ऋत्यां दर्शनञ्चैव, ईशान्यां ज्ञानमेव च॥ १९८॥**

अग्नि कोण में पाठ करने से आकर्षण, वायुकोण से- शत्रुनाश, नेर्ऋत्य कोण से दर्शन और ईशान कोण में पाठ करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है॥१९८॥

**उदङ्मुखः शान्तिजाप्ये, वश्ये पूर्वमुखस्तथा।**
**याम्येतु मारणं प्रोक्तं, पश्चिमे च धनागमः॥ १९९॥**

उत्तर दिशा की तरफ मुख करके पाठ करने से शान्ति, पूर्व दिशा की तरफ मुख रखने से वशीकरण, दक्षिण दिशा की ओर मुख रखने से मारण तथा-पश्चिम में मुख रख पाठ करने से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है॥१९९॥

**मोहनं सर्वभूतानां, वन्ध-मोक्षकरं परम्**
**देवराज्ञां प्रियकरं राजानं वशमानयेत्॥ २००॥**

इस गीता के पाठ करने वाले पर सर्वभूत मोहित हो जाते हैं। इसका पाठ कर्ता सब बन्धनों को छुड़ा; 'परममोक्ष' का दाता होता है और उसके देवाज्ञानुसारी राजा भी 'वश' में हो जाते हैं॥२००॥

**मुखस्तम्भकरञ्चैव, गुणानाञ्च विवर्द्धनम्।**
**दुष्कर्मनाशनञ्चैव, तथा सत्कर्मसिद्धिदम्॥ २०१॥**

इस गुरुगीता का पाठ प्रतिपक्षी का 'मुखस्तंभन' करने वाला, सद्‌गुणों को बढ़ाने वाला, दुष्कर्मों का नाशक और सत्कर्मों की सिद्धि को देने वाला है ॥२०१॥

**असिद्धं साधयेत् कार्यं, नवग्रहभयापहम्।**
**दुःस्वप्ननाशनञ्चेव, सुस्वप्नफलदायकम्॥ २०२॥**

इसके पाठ करने से; नहीं सिद्ध होने वाले कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं, नवग्रहों का भय दूर हो जाता है, दुःस्वप्न नाश हो जाते हैं, और फलदायक-सुस्वप्नों की प्राप्ति होती है ॥२०२॥

**सर्वशान्तिकरं नित्यं, तथा वंध्यासुपुत्रदम्।**
**अवैधव्यकरं स्त्रीणां, सौभाग्यस्यविवर्द्धनम्॥ २०३॥**

इसके पाठ से सर्व प्रकार की 'शान्ति' होती है, वन्ध्यास्त्री को 'पुत्र-प्राप्ति;' तथा-सधवास्त्री को 'अवैधव्य' प्राप्ति और 'सर्व-सौभाग्य' की वृद्धि होती है ॥२०३॥

**आयुरारोग्यमैश्वर्यं, पुत्रपौत्रविवर्द्धनम्।**
**निष्काम-जापी-विधवा, पठेन्मोक्षमनाप्नुयात्॥ २०४॥**

इसके पाठ से आयु आरोग्य, ऐश्वर्य और पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है। जो विधवा स्त्री निष्काम भाव से इसका पाठ करती है; उसे मोक्ष-प्राप्त होती है ॥२०४॥

**अवैधव्यं सकामातु, लभते चान्य-जन्मनि।**
**सर्वदुःख-भयं विघ्नं, नाशयेत्तापहारकम्॥ २०५॥**

यदि सधवा स्त्री कामना सहित पाठ करे तो उसे दूसरे जन्म में सर्व दुःख भय, विघ्न तथा- तीनों तापों रहित- 'शान्ति' प्राप्त होती है ॥२०५॥

**सर्वपाप-प्रशमनं, धर्म-कामार्थ-मोक्षदम्।**
**यं यं चिन्तयते कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥ २०६॥**

इसके पाठ करने वाले के सर्व पाप नाश हो जाते हैं। और धर्म-अर्थ, काम, मोक्षादि- जिस जिस काम की वह इच्छा करता है; वह वह इच्छा निश्चय करके पूर्ण होती है ॥२०६॥

**काम्यानां कामधेनुर्वै, कल्पिते कल्पपादपः।**
**चिन्तामणिश्चिन्तितस्य, सर्वमंगलकारकम्॥ २०७॥**

यह 'गुरु-गीता' कामियों के लिये 'काम-धेनु' कल्पना करने वालों के लिये 'कल्प-वृक्ष' तथा-चिन्तन करने वालों के लिये 'चिन्ता-मणि' रूप सर्व मंगल-आनन्द देने वाली है ॥२०७॥

**लिखित्वा पूजयेद्यस्तु, मोक्षश्रियमवाप्नुयात्।**
**गुरुभक्तिर्विशेषेण, जायते हृदि सर्वदा॥ २०८॥**

जो कोई इस 'गुरु-गीता' को लिखकर उसकी पूजा करते हैं उसे मोक्ष और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और विशेष करके उसके हृदय में 'गुरु-भक्ति की जागृति-वृद्धि' होती है॥२०८॥

**जपन्ति शाक्ताः सौराश्च, गाणपत्याश्च वैष्णवः।**
**शैवाः पशुपताः सर्वे, सत्यं सत्यं न संशयः॥ २०९॥**

शक्ति उपासक, सूर्योपासक, गाणपत्य, विष्णु उपासक, शैव या पाशुपतिक जो कोई भी इसका जप करता है- उसे निःसंशय सिद्धि होती है यह वार्ता सत्य है! सत्य है!॥२०९॥

**अथ काम्यजपस्थानं, कथयामि वरानने।**
**सागरान्ते सरित्तीरे, तीर्थे हरिहरालये॥ २१०॥**

हे वरानने! अब मैं कामना की इच्छा वालों को जप करने के स्थानों का वर्णन करता हूँ. सागर के किनारे, नदी के तटपर, तीर्थ में तथा हरिहर (शिव-विष्णु) के मन्दिर में- ॥२१०॥

**शक्तिदेवालये गोष्ठे, सर्वदेवालये शुभे।**
**वटस्य धात्र्या मूले वा मठे वृन्दावने तथा॥ २११॥**
**पवित्रे निर्मले देशे, जपानुष्ठानतोऽपिवा।**
**निवेदनेन मौनेन, जपं स्तोत्रं समारभेत्॥ २१२॥**

देवी के मन्दिर, में गो-शाला में और सब देवालयों में जप करना शुभ है। बड़ के मूल में, पृथ्वी पर, मठ में, -सन्तों के स्थान में, तुलसी के बगीचे में, पवित्र-निर्मल देश में, शान्त चित्त से मौन रखकर 'स्तोत्र-पाठ-जप' का अनुष्ठान प्रारम्भ करे॥२११॥-२१२॥

**जाप्येन जयमाप्नोति, जपसिद्धिं फलं तथा।**
**हीनकर्म त्यजेत्संर्व, गर्हितस्थानमेव च॥ २१३॥**

सर्व प्रकार के हीन-'निन्द्य-कर्म' तथा 'मलीन-स्थानों' का त्याग कर जप करने से 'जय' प्राप्त होती है और जप की सिद्धि मिलती है॥२१३॥

**श्मशान-भय-भूमौ वा, बट-मूले च कानने।**
**सिध्यन्ति कानके मूले, चूतबृक्षस्य सन्निधौ॥ २१४॥**

श्मशान में, भयवाले स्थान में, वट के मूल में, बगीचे में, धतूरे के मूल में तथा- आम्र वृक्ष के पास पाठ करने से सिद्धि होती है॥२१४॥

**पीतासनं मोहने तु, ह्यसितञ्चाभिचारिके।**
**ज्ञेयं शुक्लञ्च शान्त्यंर्थ, वश्येरक्तं प्रकीर्तितम्॥ २१५॥**
**जपं हीनासने कुर्वन्, हीनकर्माऽफलप्रदम्।**
**गुरुगीता प्रयाणे वा, संग्रामे रिपुसंकटे॥ २१६॥**

पीला आसन 'मोहन' कार्य में, 'अभिचार' में काला आसन, 'शान्ति' के लिये सफेद आसन, तथा- 'वशीकरण' के लिये रक्त (लाल) आसन कहा है॥११५॥

आसन बिना जप करने से खोटे कर्म का फल प्राप्त होता है। विदेश जाते में, संग्राम में, दुश्मन से संकट पाते हुए-॥२१६॥

**जपन् जयमवाप्नोति, मरणे मुक्ति-दायकम्।**
**सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति, गुरु-पुत्रे न संशयः॥ २१७॥**

-जो गुरु गीता का पाठ करता है उसे जय की प्राप्ति होती है और मरने पर मोक्ष मिलता है। इसके पाठ से शिष्य को सर्व कार्य में सिद्धि मिलती है- इसमें संशय नहीं॥२१७॥

**गुरुमंत्रो मुखे यस्य, तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा।**
**दीक्षया सर्वकर्माणि, सिद्धयन्ति गुरु-पुत्रके॥ २१८॥**

जिसके मुख में 'गुरु मंत्र' है उस 'गुरु-पुत्र' (शिष्य) से सिद्धि अलग नहीं रहती। उससे दीक्षादि कर्म कराने से सिद्ध ही होते हैं॥२१८॥

**भवमूल-विनाशाय, चाष्टपाशाभिबृत्तये।**
**गुरुगीताम्मसि स्नानं, तत्त्वज्ञः कुरुते सदा॥ २१९॥**
**सएव सद्गुरुः साक्षात्, सदसद्ब्रह्मवित्तमः।**
**तस्य स्थानानि सर्वाणि, पवित्राणि न संशयः॥ २२०॥**
**सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ, स्वभावाद्यत्र तिष्ठति।**
**तत्रदेवागणाः सर्वे, क्षेत्रपीठे चरन्ति च॥ २२१॥**

तत्वज्ञ पुरुष भवरूपी मूल के नाश करने के लिये तथा आठों प्रकार के बन्धनों से छूटने के लिये नित्य 'गुरु-गीता रूपी गंगा' में स्नान किया करते हैं।-

ऐसे जो 'सद्गुरु हैं;' उन्हें ही 'परब्रह्म' (सगुण-निर्गुण) के ज्ञाता समझो। वे जिन स्थानों में निवास करते हैं; वे सब 'पवित्र' हैं इसमें संशय नहीं।

वहां स्वभावत: ही सर्व प्रकार से शुद्धि और पवित्रता रहती है। वहां सर्व देवतागण और क्षेत्रपालादि निवास करते हैं॥२१९॥- ॥२२०॥- ॥२२१॥

**आसनस्थाः शयाना वा, गच्छन्तस्तिष्ठतोपिवा।**
**अश्वारूढा गजारूढ़ाः सुषुप्ता जाग्रतोऽपि वा॥ २२२॥**
**शुचिर्भूता ज्ञानवन्तो, गुरुगीतां जपन्तिये।**
**तस्य दर्शन-संस्पर्शात्, पुनर्जन्म न विद्यते॥ २२३॥**

आसन से बैठा हो, सोता हो, चलता हो, खड़ा रहा हो, घोड़े पर बैठा हो, हाथी पर सवारी किये हो, सुषुप्ति में हो, निद्रा में हो अथवा जागता हो॥-
जो प्राणी 'गुरु-गीता का पाठ' -जप करता है; वह पवित्र है, वही ज्ञानवान् है। उसके दर्शन, स्पर्शनमात्र से पुनर्जन्म नहीं होता॥२२२॥- ॥२२३॥

**समुद्रे वैयथा तोयं, क्षीरे क्षीरं जले जलम्॥**
**भिन्ने कुंभे यथाऽकाशं, तथात्मा परमात्मनि॥ २२४॥**

जैसे समुद्र में नदी मिलती है, जल में जल, दूध में दूध, घटाकाश में महाकाश मिल जाता है; उसी प्रकार ज्ञानी परमात्मा में मिल जाता है॥२२४॥

**तथैव ज्ञानवान् जीवः, परमात्मनि सर्वदा।**
**ऐक्येन रमते ज्ञानी, यत्र कुत्र दिवानिशम्॥ २२५॥**

ऐसे ही जीव परमात्मा में संलग्न-ज्ञानी-एकत्व को प्राप्त, अकेले रात्रि दिन इधर उधर विचरते रहते हैं॥२२५॥

**एवं विधो महायुक्तः, सर्वत्र वर्तते सदा।**
**तस्मात्सर्वप्रकारेण, गुरु-भक्तिं समाचरेत्॥ २२६॥**

इस विधि से 'महामुक्त' सर्वत्र सदा वर्तते रहते हैं। इस लिये सर्व प्रकार से गुरु-भक्ति आचरण करना चाहिए॥२२६॥

**गुरुसंतोषणादेव, मुक्तो भवति पार्वति!**
**अणिमादिषु भोक्तृत्वं, कृपया देवि जायते॥ २२७॥**

हे देवी पार्वती! गुरु को सन्तुष्ट करने से शिष्य मुक्त होता है और अणिमादि (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व) सिद्धियां जो- दुर्लभ हैं; वह भी शिष्य को सुलभता से प्राप्त हो- भोगती हैं॥२२७॥

**साम्येन रमते ज्ञानी, दिवा वा यदि वा निशि।**
**एवं विधोमहामौनी, त्रैलोक्येऽसमतां व्रजेत॥ २२८॥**

दिन हो या रात्रि, ज्ञानी समभाव में विचरते रहते हैं। इस प्रकार 'महामौनी' अर्थात्- 'ब्रह्मनिष्ठ महात्मा' त्रैलोक्य में समान भाव से विराजते हैं॥२२८॥

**अथ संसारिणः सर्वे, गुरु-गीताजपेन तु।**
**सर्वान् कामांस्तु भुञ्जन्ति, त्रिसत्यं ममभाषितम्॥ २२९॥**

सर्व संसारी-पुरुष 'गुरु-गीता-जप' से सर्व प्रकार की कामनाओं की सिद्धि पा सकते हैं- यह मेरा भाषण सत्य है- सत्य है; सत्य है॥२२९॥

**सत्यं सत्यं पुनः सत्यं, धर्मसाख्यं मयोदितम्।**
**गुरु-गीता समं स्तोत्रं, नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥ २३०॥**

सत्य है; सत्य है; नित्य सत्य है, कि- मैंने जो यह तुम्हें धर्मरूप साख्य (ज्ञान) कहा है। 'गुरुगीता के समान दूसरा स्तोत्र- नहीं, और गुरु से बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ तत्व नहीं है"॥२३०॥

**गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरुर्निष्ठा परं तपः।**
**गुरोः परतरं नास्ति, त्रिवारं कथयामिते॥ २३१॥**

गुरु ही 'देव' हैं, तथा- गुरु ही 'धर्म' हैं, गुरु में जो 'आस्था' है वह ही 'परम तप' है। 'गुरु से बड़ा और कोई नहीं"- यह बात मैं तीन बार तुम्हें कहता हूं॥२३१॥

**धन्या माता पिता धन्यो, गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः।**
**धन्या च वसुधा देवि, यत्र स्याद्गुरुभक्तता॥ २३२॥**

हे देवी! जिस मनुष्य में गुरु-भकित-पन होता है उसकी माता धन्य है, उसके पिता धन्य हैं, उसका गोत्र धन्य है, तथा- वह पृथ्वी भी धन्य है॥२३२॥

**आकल्पं जन्मकोटीनां, यज्ञव्रततपःक्रियाः।**
**ताः सर्वाःसफलादेवि, गुरुसंतोषमात्रतः॥ २३३॥**

हे देवी! कल्प पर्यन्त के वा करोड़ों जन्म के यज्ञ, व्रत, तप और दूसरी शास्त्रोक्त क्रिया; यह सब मात्र एक गुरु को सन्तोष प्राप्त कराने से सफल होती हैं॥२३३॥

**शरीरमिन्द्रियं प्राणमर्थं, स्वजनबंधुता।**
**मातुःकुलं पितृकुलं, गुरुमेव परं स्मरेत्॥ २३४॥**

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अर्थ, स्वयं के स्वजन कुटुम्बी, माता का कुल और पिता का कुल; यह सब रूप 'श्रेष्ठ गुरु' ही को समझना- (ऐसे सर्व श्रेष्ठ श्रीगुरु का

ही ध्यान करना) ॥२३४॥

**मन्दभाग्याह्यशक्ताश्च, ये जना नानुमन्वते।**
**गुरुसेवासु विमुखाः, पच्यन्ते नरकेऽशुचौ॥ २३५॥**

मन्द-भागी अशक्त तथा गुरु-सेवा से विमुख; जो मनुष्य इस उपदेश पर ध्यान नहीं देता- वह अपवित्र नर्क में रंधता रहता है- दुखी होता है॥२३५॥

**विद्याधनं बलञ्चैव, तेषां भाग्यं निरर्थकम्।**
**येषां गुरुकृपा नास्ति, अधो गच्छन्ति पार्वति॥ २३६॥**

हे पार्वती! जिस पर गुरु कृपा नहीं है उसके विद्या धन बल, भाग्य सर्व निरर्थक हैं। उसकी अधोगति होती है॥ २३६॥

**ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च, देवाश्च पितृकिन्नराः।**
**सिद्धचारणयक्षाश्च, अन्ये च मुनयो जनाः॥ २३७॥**
**गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।**
**सर्वतीर्थमयं देवि! श्रीगुरोश्चचरणाम्बुजम्॥ २३८॥**

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवता, पितृ, किन्नर, सिद्ध, चारण, यक्ष और अन्य जो मुनि आदि हैं (उन सब में)-

'गुरु-भाव' यह श्रेष्ठ-तीर्थ है, अन्य तीर्थ निरर्थक हैं। हे देवी! श्रीगुरु के चरण कमल 'सर्व तीर्थ मय' हैं॥२३७-३८॥

**कन्याभोगरतामन्दाः, स्वकान्तायाः पराङ्मुखाः।**
**अतः परं मया देवि, कथितन्न मम प्रिये॥ २३९॥**

हे प्रिये! मेरा यह आत्म प्रिय परमबोध, कन्या से भोग करने वाले, स्वस्त्री से विमुख तथा परस्त्रीगामी मनुष्य को कभी मत कहना॥२३९॥

**इदं रहस्यमस्पृष्टं, वक्तव्यं च वरानने।**
**सुगोप्यं च तवाग्रेतु, ममात्मप्रीतये सति॥ २४०॥**

हे सती! मैंने अपना गुप्त से गुप्त 'रहस्यमय-ज्ञान' तुझसे कहा है। क्योंकि- तू मेरी प्रियतमा है; इससे आत्म-प्रीति के अर्थ कहा है॥२४०॥

**स्वामिमुख्यगणेशाद्यान्वैष्णवादीश्च पार्वति!**
**न वक्तव्यं महामाये, पादं स्पर्शं कुरुष्वमे॥ २४१॥**

हे महामाये! स्वामी कार्तिक, गणेशादि मुख्य-गण, तथा वैष्णवादि जो हमारे चरणों में पड़ते हैं उनसे भी मैंने प्रकट नहीं किया वह गुप्त रहस्य तुमसे कहा

है।।२४१।।

**अभक्ते वञ्चके धूर्ते, पाखण्डे नास्तिकादिषु।**
**मनसाऽपि न वक्तव्या, गुरु-गीता कदाचन।। २४२।।**

अभक्त, ठग, नीच, पाखण्डी तथा नास्तिक आदि को मन से भी कोई दिन इस गुरु-गीता के कहने की इच्छा रखना नहीं।।२४२।।

**गुरवो वहवः सन्ति, शिष्यवित्तापहारकाः।**
**तमेकं दुर्लभं मन्ये, शिष्यहृत्तापहारकम्।। २४३।।**

शिष्य के द्रव्य को हरण करने वाले तो गुरु बहुत होते हैं, पर शिष्य के हृदय के ताप को हरने वाले- (वास्तविक शान्ति देने वाले) तो एकादही (दुर्लभ) होते हैं- ऐसा मैं मानता हूँ।।२४३।।

**चातुर्यवान् विवेकी च, अध्यात्मज्ञानवान् शुचिः।**
**मानसं निर्मलं यस्य, गुरुत्वं तस्य शोभते।। २४४।।**

जो चतुर हों, विवेकी हों, अध्यात्मज्ञान के ज्ञानी हों, पवित्र हों- निर्मल-चित्तवाले हों उन्हीं को गुरुत्व शोभा देता है।।२४४।।

**गुरवो निर्मलाः शांताः, साधवो मितभाषिणः।**
**कामक्रोधविनिर्मुक्ताः, सदाचाराजितेन्द्रियाः।। २४५।।**

'सद्‌गुरु'- निर्मल, शांत, दैवीसंपत्तिवाले, मितभाषी कामक्रोध से अत्यन्त रहित, सदाचारी और इन्द्रिय-जीत होते हैं।।२४५।।

**कृताया गुरुभक्तेस्तु, वेदशास्त्रानुसारतः।**
**मुच्यते पातकाद्घोराद्गुरुभक्तो विशेषतः।। २४६।।**

जिसने वेदशास्त्रानुसार गुरुभकित की हो; तो वह गुरु-भकत सब प्रकार से घोर पापों से मुकत होता है।।२४६।।

**दुःसंगं च परित्यज्य, पापकर्म परित्यजेत्।**
**चित्त-चिन्हमिदं यस्य, तस्य दीक्षा विधीयते।। २४७।।**

खोटे संग को जिन्होंने त्याग किया है, पापकर्मों को जिन्होंने छोड़ा और जिनके चित्त का चिन्तवन- 'यह गुरुगीता ज्ञान' है- वही 'दीक्षा-योग्य है'।।२४७।।

**चित्तत्याग-नियुक्तश्च, क्रोध-गर्व-विवर्जितः।**
**द्वैत-भावपरित्यागी, तस्य दीक्षा विधीयते।। २४८।।**

जिसका त्याग में चित्त नियुक्त है, जो गर्व क्रोधादि से रहित है, जो द्वैतभाव का

परित्यागी है, वही दीक्षा-योग्य है ॥२४८॥

**एतल्लक्षणयुक्तत्वं, सर्वभूतहिते रतम्।**

**निर्मलं जीवितं यस्य, तस्य दीक्षा विधीयते॥ २४९॥**

जो इन लक्षणों से युकत है, प्राणीमात्र के हित में रत है; और जिसका जीवन निर्मल है; वही दीक्षा-योग्य है ॥२४९॥

**क्रियया चान्वितं पूर्वं, दीक्षाजालं निरूपितम्।**

**मन्त्र-दीक्षाऽभिधं साङ्गोपाङ्गं सर्वं शिवोदितम्॥ २५०॥**

शास्त्रानुसार निष्काम-कर्म करके जो शुद्धचित्त हो चुका है- उसी को 'मंत्र दीक्षा' साङ्गो पाङ्ग 'कल्याणप्रद' हो सकती है ॥२५०॥

**क्रियायासादिरहितां, गुरु-सायुज्यदायिनीम्॥**

**गुरु-दीक्षां विना को वा, गुरुत्वाचार-पालकः॥ २५१॥**

यह क्रिया गुरु-सायुज्य दायिनी है। बिना गुरु-दीक्षा के गुरु के आचार को कौन पालन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं ॥२५१॥

**शक्तो न चापि शक्तो वा, दैशकाङ्घ्रिं समाश्रयेत्।**

**तस्य जन्मास्ति सफलं, भोगमोक्षफलप्रदम्॥ २५२॥**

शक्त हो अथवा अशक्त हो, तो भी जो श्रीसद्गुरु के चरणों का आश्रय करता है- उसका जन्म सफल है, इसमें तुम्हें किसी प्रकार का संशय नहीं करना ॥२५२॥

**अत्यन्तचित्तपक्वस्य, श्रद्धाभक्तियुतस्य च।**

**प्रवक्तव्यमिदं देवि, ममात्मप्रीयते सदा॥ २५३॥**

हे देवी! जिसका चित्त अत्यन्त शुद्ध हो गया है, जो श्रद्धा-भकित से युक्त है, उसको यह मेरा प्रियज्ञान- जो तुझसे कहा है- कहना ॥२५३॥

**सच्चिदानन्दरूपाय, व्यापिने परमात्मने।**

**नमः श्रीगुरुनाथाय, प्रकाशानन्द-मूर्तये॥ २५४॥**

सच्चिदानन्दरूप, व्यापक परमात्मा, प्रकाशानन्द-मूर्ति श्री गुरुनाथ को नमस्कार हो ॥२५४॥

**सत्यानन्दस्वरूपाय, बोधैकसुखकारिणे।**

**नमो वेदान्तवेद्याय, गुरवे बुद्धिसाक्षिणे॥ २५५॥**

सच्चिदानन्द-स्वरूप, तत्वज्ञानरूप, अद्वितीय रूप, सुखदाता वेदान्त द्वारा जानने

योग्य तथा- बुद्धि के साक्षी ऐसे ही गुरुदेव को नमस्कार हो॥२५५॥

**नमस्ते नाथ भगवन्, शिवाय गुरुरूपिणे।**
**विद्यावतारसंसिद्ध्यै, स्वीकृतानेकविगृह॥ २५६॥**

गुरुरूप में कल्याण कर्ता स्वामी भगवान् को नमस्कार है। जो विद्या के अवतार-ज्ञान स्वरूप, भक्तों के उद्धार करने के लिये अनेक रूप धारण करते हैं॥२५६॥

**नवाय नवरूपाय, परमार्थैक-रूपिणे।**
**सर्वाज्ञान-तमोभेद-भानवे चिद्घनाय ते॥ २५७॥**
**स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने।**
**परतन्त्राय भक्तानां, भव्यानां भव्यरूपिणे॥ २५८॥**
**विवेकिनां विवेकाय, विमर्शाय विमर्शिनाम्।**
**प्रकाशिनां प्रकाशाय, ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे॥ २५२॥**
**पुरस्तात्पार्श्वयोः पृष्ठे, नमस्कुर्यामुपर्यधः।**
**सदा मच्चित्तरूपेण, विधेहि भवदासनम्॥ २६०॥**

परमार्थ में एक रूप होते हुए भी जो अनेक रूपों में व्यापक हैं; और सर्व प्रकार के ज्ञान को प्रकट करने वाले 'सर्य रूप' तथा 'चित्-रूपी धन' के देने वाले हैं।-

कल्याण करने में जो दया करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं भक्तों के जो आधीन हैं, और तेजस्वियों के तेज हैं।-

विवेकियों में विवेक रूप हैं, विमर्शियों में 'विमर्श रूप' तथा प्रकाशियों में 'प्रकाश रूप' और ज्ञानियों में 'ज्ञान रूप' हैं-

हे गुरुदेव! आगे से, पीछे से दोनों बाजुओं से, ऊपर-नीचे सब ओर आपको नमस्कार। सदा मेरे चित्तरूप आपका आसन स्थापो, अर्थात् मेरे चित्त में आप नित्य विराजिये॥२५७॥२५८॥२५९॥२६०॥

**श्रीगुरुं परमानन्दं, वन्दे आनन्दविग्रहम्।**
**यस्य सन्निधिमात्रेण, चिदानन्दायते नमः॥ २६१॥**

परम आनन्द रूप, तथा- आनन्दरूप देह वाले श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूं, कि- जिनके केवल सान्निध्यमात्र ही से मन 'चैतन्य-रूप' तथा 'आनन्द-रूप' हो जाता है॥२६१॥

**नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं, सहजानन्दरूपिणे।**
**यस्य वागमृतं हन्ति, विषं संसारसंज्ञकम्॥ २६२॥**

जिनका वचनामृत संसार संज्ञावाले (जन्म-मरण परंपरा रूप, संसारात्मक) विष को नाश करता है ऐसे सहजानंद-स्वरूप (स्वभावसिद्ध, आनन्दस्वरूप) आप श्री गुरुदेव को नमस्कार हो॥२६२॥

**नानायुक्तोपदेशेन, तारिता शिष्य-सन्ततिः।**
**तत्कृपासारवेदेन, गुरुचित्पदमच्युतम्॥ २६३॥**

जो गुरुदेव-शिष्यगणों को नाना प्रकार से उपदेश देकर संसार से पार करते हैं; उन कृपासार श्री गुरु को वेद ने 'आनन्द प्रदअविनाशी' पद से कथन किया है॥३६३॥

**अच्युताय नमस्तस्मै, गुरवे परमात्मने।**
**स्वारामोक्तपदेच्छूनां, दत्तं येनाऽच्युतंपदम्॥ २६४॥**

'आत्मविश्रान्तिरूप' कहे-पद की इच्छा वालों ने जिन्हें 'अच्युत-अविनाशी' पद दिया है; ऐसे अविचल-तत्वरूप, परमात्मा स्वरूप, श्री गुरु को नमस्कार है॥२६४॥

**नमोऽच्युताय गुरवेऽज्ञानध्वान्तैकभानवे।**
**शिष्य-सन्मार्ग-पटवे, कृपा-पीयूष-सिन्धवे॥ २६५॥**

अच्युत- 'अविनाशी-तत्वरूप', अज्ञानरूपी अंधकार के लिये- 'एक सूर्यरूप', शिष्य को सन्मार्ग बताने में कुशल, 'कृपा रूप' 'अमृत के सागर' ऐसे श्री सद्‌गुरु को नमस्कार है॥२६५॥

**ओमच्युताय गुरवे, शिष्याऽसंसारहेतवे।**
**भक्तकार्यैकसिंहाय, नमस्ते चित्सुखात्मने॥ २६६॥**

'ॐकार स्वरूप', अविनाशी स्वरूप, शिष्यों के उद्धार कर्ता, भकत के कार्य करने में एक- 'अद्वितीय सिंह रूप' अमोघ संकल्प वाले सच्चिदानंद 'परब्रह्मस्वरूप' ऐसे श्री गुरु को नमस्कार है॥२६६॥

**गुरुनाम समं दैवं, न पिता न च बांधवाः।**
**गुरुनाम समः स्वामी, नेदृशं परमं पदम्॥ २६७॥**

श्रीगुरु के समान कोई देवत्य नहीं, उनके समान पिता तथा बांधव नहीं, गुरु के समान स्वामी नहीं, और उनके सरीखा दूसरा परम-पद नहीं है॥२६७॥

**एकाक्षरप्रदातारं, यो गुरुं नैव मन्यते।**
**श्वानयोनिशतं गत्वा, चाण्डालेष्वभिजायते॥ २६८॥**

एकाक्षर बताने वाले गुरु को जो नहीं मानता है; वह सौ मर्तबा श्वान योनि को प्राप्त होता है और फिर अन्त में भंगी के यहाँ पैदा होता है॥२६८॥

**गुरुत्यागाद्भवेन्मृत्युर्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता।**
**गुरु-मन्त्रपरित्यागी, रौरवं नरकं व्रजेत्॥ २६९॥**

गुरु के त्यागने से मृत्यु और गुरु मंत्र के त्यागने से दरिद्रता आती है। गुरु, मंत्र (दोनों) के त्याग करने वाले को रोरव नर्क में पड़ना पड़ता है॥२६९॥

**शिवक्रोधाद्गुरुस्त्राता, गुरुक्रोधाच्छिवोनहि।**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, गुरोराज्ञां न लङ्घयेत्॥ २७०॥**

शिव के क्रोध से गुरु रक्षा करते हैं, पर- गुरु के क्रोध से शिव रक्षा नहीं कर सकते, इसलिए शिष्य को चाहिये कि- सर्व यत्नों करके गुरु की आज्ञा का उल्लंघन न करे- आज्ञा का पालन करे॥२७०॥

**संसारसागर- समुद्धरणैकमन्त्रं,**
**ब्रह्मादिदेव-मुनि-पूजितसिद्धमन्त्रम्॥**
**दारिद्र्य दुःख- भवरोगविनाशमन्त्रं,**
**वन्दे महाभयहरं गुरुराजमन्त्रम्॥ २७१॥**

संसार रूपी सागर से पार करने वाला एक मंत्र है, जो सिद्ध मंत्र ब्रह्मादि देवों तथा मुनियों द्वारा पूजित है, तथा जो मंत्र; दरिद्रता दुःख-तथा संसार रोग को नाश करने वाला है; उस महाभय के हरण करने वाले 'गुरु-राज-मंत्र' को नमस्कार है॥२७१॥

**सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रंशकारकाः।**
**एक एव परो मंत्रो, गुरुरित्यक्षरद्वयम्॥ २७२॥**

संसार में सप्त कोटि महामंत्र प्रचलित हैं, पर वे सब चित्त को भ्रम उत्पन्न करने वाले हैं। सर्व से श्रेष्ठ तो यह दो अक्षर वाला 'गुरु' मंत्र ही है॥२७२॥

**यस्य प्रसादादहमेवसंर्व,**
**मय्येव सर्वं परिकल्पितञ्च।**
**इत्थं विजानामि सदात्मरूपं,**
**तस्याङ्घ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥ २७३॥**

जिसके कृपा प्रसाद से 'मैं सर्व हूं' और 'सर्व दृष्यमान मुझी में मेरी कल्पना मात्र है" -इस प्रकार जो मैंने आत्म स्वरूप जाना है; उन श्री सद्गुरुदेव के चरण कमलों में मैं नित्य नमस्कार करता हूं।।२७३ ।।

**अज्ञानतिमिरान्धस्य, विषयाक्रान्तचेतसः।**
**ज्ञानप्रभाप्रदानेन, प्रसादं कुरु मे प्रभो।। २७४।।**

'इत्योम् तत्सत्'

हे प्रभो! अज्ञानरूप अन्धकार से अन्ध; तथा विषय (शब्द स्पर्श, रूप, रस और गंध) से हार पाये हुए- दुःखित चित्त वाले मुझ पर- 'ज्ञानरूप-प्रकाश के दान द्वारा कृपा करो"!!!

**ॐ अवधूत सदानन्द, परब्रह्मस्वरूपिणे।**
**विदेहदेहरूपाय (श्री) नित्यानन्द नमोस्तु ते।।**

हे प्रणवस्वरूप श्री सद्गुरुदेव!!! आप सदा सर्वदा आनन्दित रहने वाले- 'परम-अवधूत' (महायोगेश्वर) परब्रह्म स्वरूप हैं! आप 'विदेही' होते हुए भी देह रूप में भगवान् नित्यानन्द हैं- आपको हम प्रणाम करते हैं।। ॐ तत्सत्।।

।।ॐ गुरु ॐ।।

।। तत्सत् ।।

**यद्ब्रह्मेति विनिश्चितं मुनिवरैः स्वर्ज्योतिषां कारणं,**
**सत्यं ज्ञानमनन्तमेवममृतं यत्सर्वविद्याफलम्।।**
**साकारंसवितुर्महस्त्वमसि तत्तत्त्वावबोधप्रदं,**
**नित्यानन्द! विभुं चराचरपतिं वन्दामहे श्रेयसे।।**

# ॥ अथ श्रीगुर्वष्टकं स्तोत्रम् ॥

**कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं,**
**गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम्।**
**गुरोरङ्घ्रिपद्मेमनश्चेन्न लग्नं,**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ १॥**

स्त्री, धन, पुत्र-पौत्रादिसब, गृह, बंधुवर्ग (और इसके सिवाय 'शरीरं सुरूपम'- 'सुन्दर-रूपवान्-शरीर' आदिक तमाम) प्राप्त हों; परन्तु- श्रीगुरु के चरण कमलों के विषें मन जो न लगा तो फिर, इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? (यह सब किस काम के? -अरे! कुछ भी नहीं) ॥१॥

**षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या,**
**कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।**
**गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,**
**ततःकिं ततःकिं ततःकिं ततःकिम्॥ २॥**

छः अंगो (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंदस् और ज्योतिष) सहित वेद और दूसरे शास्त्रों की विद्या कंठाग्र हो, आदि में कवित्व हो; उसका गद्य अथवा- उत्तम पद्य रचे, परन्तु- श्रीगुरु के चरण कमलों में जो मन न लगा हो, तो फिर इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या॥२॥

**विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः,**
**सदाचारनित्यः सुवृत्तिर्न चान्यः।**
**गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्नलग्नं,**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ३॥**

विदेश में मान-सन्मान पाया होय, अपने देश में धन्य- समझा जाता हो, नित्य सदाचार पालन करता हो, सुवृत्ति- (शुद्ध आजीविका वाला) हो, परन्तु- श्रीगुरु के चरण कमलों में मन न लगा हो; तो फिर इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या॥३॥

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दं,
सदा सेवते यस्य पादारविन्दम्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ४॥

पृथ्वी मंडल में बड़े-बड़े राजे रजवाड़ों के समूह जिनके चरण-कमल सदा सेवन करते हों, तो भी जो मन श्रीगुरु-चरण कमल में नहीं लगा; तो फिर इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या॥४॥

न भोगे न योगे न वा राज्यभोगे,
न कान्तासुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्नलग्नं।
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ५॥

चित्त न विषयों के उपभोग में न विषय पदार्थ की प्राप्तिरूप योग में, न राज्य के उपभोग में, न स्त्री सुख में, तैसे ही- न सम्पति आदि किसी में लगता हो। अर्थात् भारी विरक्त होवे तो भी- जो मन श्रीगुरु के चरण कमलों में नहीं लगा; तो फिर इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या॥५॥

यशोमे गतं दिक्षु दानप्रतापा-
ज्जगद्वस्तु संर्व करे यत्प्रसादात्।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ६॥

दान के प्रताप करके मेरा यश दिशाओं में फैल गया है, तथा- जिसकी कृपा से जगत् की सब वस्तुएं करतल गत हैं, ऐसे श्रीगुरु के चरण कमलों विषे मन न लगा; तो फिर इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या॥६॥

अरण्ये निवासः स्वगेहे च कार्यो
न देहे मनो वर्तते मे अनार्ये।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं।
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ७॥

मेरा मन जो- 'अनार्य' ऐसे 'देह' के विषे (देह, तथा- तत्संबन्धी- स्त्री, पुत्र, द्रव्यादि में) न ठहरे; तो फिर चाहे वन में जाऊं, या- घर ही में रहूँ सदा मुक्त ही हूँ- ऐसी मान्यता है। तो भी जो श्री गुरु के चरण कमलों में मन नहीं लगा; तो फिर

इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या॥७॥

**अनर्घ्याणि रत्नानि युकतानि सम्यक्,**
**समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु।**
**गुरोरंघ्रिपद्मं मनश्चेन्नलग्नं,**
**ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥ ८॥**

महा मूल्यवान् रत्न प्राप्त हों, रात्रियों में कामिनियों से अच्छी प्रकार आलिङ्गन किया हो- अर्थात् ऐहिक सुख- वैभव संपूर्ण तया हों, परन्तु- श्रीगुरु की चरण कमलों में मन न लगा; तो फिर इन सब से क्या? इन सब से क्या? इन सब से क्या? इन सब से क्या॥८॥

**गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही,**
**यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही,**
**लभेद्बाञ्छितांर्थ परब्रह्मसौख्यं,**
**गुरोरुक्तमार्गे मनोयस्य लग्नम्॥ ९॥**

इस गुरु अष्टक का जो पुण्यवान् मनुष्य पाठ करे, और गुरु के बताए हुए मार्ग में जिसका मन संलग्न- (लगा) हो; वह यति, भूपति, ब्रह्मचारी अथवा- गृहस्थी इच्छित अर्थ- फल, तथा- 'परब्रह्म-सुख' (परमानंद 'नित्यानन्द') पाता है॥९॥

ॐ

तत्सत्

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य-
श्रीमच्छंकराचार्य विरचितं श्रीगुरोरष्टकं

॥ समाप्तम् ॥

ॐ गुरुः ॐ

# गुरु-महिमा (पद-राग-भैरवी)

**गुरु की महिमा अपरंपार!**
**जापे कृपा करे तब वो जन, पावे रूप अपार॥**

॥ टेक ॥

जेते भूत प्राणी पुनि जग में, वे जिनके आधार।
यह अब हम निश्चय कर जानी, तुम दीनो जी मनुष अवतार॥ १ ॥

जैसे मणका बने काष्टते, भिन्न भिन्न आकार।
सूत आश्रये सबहि फिरत हैं, तैसेहि तुम किरतार॥ २ ॥

कोइक जानत मर्म तुम्हारा सो जन नाहि गवार।
भव सागर से वह तिर जावत आपहि लेवोजी उबार॥ ३ ॥

पार अपार नहीं कोउ जाको अर्ध उर्द्ध विस्तार।
ऐसो रूप लख्यो नित्यानन्द, गुरुजी मिले दिलदार॥ ४॥

- ० -

दोहा ।
गुरु कुलाल शिष कुंभ है, चुन चुन काढ़त खोट।
अन्दर हाथ सहाय दे, बाहिर मारत चोट॥ १ ॥

# श्रीगुरु-शरण (रागपद सोहिनी)

**श्री गुप्तानन्द गुरु आपकी, मैं शरण में अब आ चुका॥**

॥ टेक ॥

अब आपकी मैं ले शरण, फिर कौन की लेऊँ शरण।
बहुतेरा इत उत जगत में, पुनि तात भटका खा चुका॥ १॥

जिस वस्तु को मैं चाहता था आज उसको पा चुका।
कर दरश दिल से शोक नासे, चित्त अब सुख पाचुका॥ २॥

मोपे दयालु कर दया निज अंग से लिपटा लिया॥
वो ब्रह्म आतम वोध मुझको, युक्ति से समझा चुका॥ ३॥

अब नाहिं चिंतालेश चित्त को, चित्त निज निर्मल भया।
यह कहत नित्यानन्द, नित्यानन्द मति रस छा चुका॥ ४॥

– ० –

दोहा ।

कविता सज्जन जन पढ़ें, पढ़कर करें विचार।
रसिक बिहारी रसिक में, गयो जमारो हार॥

# सद्गुरु के प्रति शिष्य की कृतज्ञता

( पद )

सत् गुरु दीन दयाल, हमारे सत् गुरु दीन दयाल।

॥ टेक ॥

जिनकी कृपा कटाक्ष भई तब,
कलि मल दह्यो पिनसाल॥ हमारे ॥ १ ॥
गुरू तत्व को मर्म लख्यो निज,
अतुल अमोल जे माल॥ हमारे ॥ २ ॥
मात तात पत्नी सुत वांधव,
ले न सके कोउ वाल॥ हमारे ॥ ३ ॥
वन्दूं गुरु-पद दोऊ जोर कर,
मैं नित्यानन्द त्रियकाल॥ हमारे ॥ ४ ॥

– ० –

( २ )

हमारे सद्गुरु नजर निहाल,
दारिद्र म्हारो दूर कियो॥
कोटि युगन युग भरमियोरे, दुःख नहीं टरियो।
एक पलक की झलक मेरे, मोंहि निहाल दियो ॥ १ ॥
झूठे धन के कारने रे भटकि भटकि के मुयो।
साँची दौलत सतगुरुदीनी, जन्म सफल मारो हुयो॥ २ ॥
मैं निर्धन कंगाल को रे, प्रेम प्रीति से लियो।
खरचा खाया बहुत लुटाया, पानी के ज्यों पियो॥ ३ ॥

गुप्त आत्मा लाल मिला जब, सुख के साथी सोयो।
आवन जावन खेद मिट्यो सब, जीव आनन्दित हुयो॥ ४॥

– ० –

# ब्रह्मपद की प्राप्ति।

मेरो रूप मैं पायो गुरुजी शरण आपकी आके॥
॥ टेक ॥

लख चौरासी योनि भुगत के मनुष देह अब पाके।
लख चौरासी सब ही छूटी श्रीगुरु श्रीमुख फाखे॥ १॥
इस संसार में सार नहीं है पामर होय सो भटके।
हम इसकी सब जान पोल अब विषयुत विष जो फाके॥ २॥
तीन ही लोक अरु चौदाभुवन को राज करे दे डंके।
ऐसो राज दियो सत् गुरुजी, ताहि पाय हम छाके॥ ३॥
मोह ममता अरु मान बढ़ाई अंत किये निज तन के।
नित्यानन्द ब्रह्म पद पायो श्री गुप्त गुरू पद ध्याके॥ ४॥

– ० –

ॐ

ॐ नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये,
सहस्रपादाक्षिशिरोरुवाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते,
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥ १॥

ॐ असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी॥
लिखति यदि गृहीत्वाशारदा सर्वकालं।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥ २॥

ॐ त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव वन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव संर्व मम देव देवः॥ ३॥

ॐ काये न वाचा मनसेन्द्रियैर्वा,
बुध्यात्मना वा प्रकृतिस्वभावात्।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै,
नारायणयेति समर्पयामि॥ ४॥

ॐ

तत्सत्

ॐ

# श्री प्रश्णोत्तरी

ॐ

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खोवा यदि पण्डितः।
यस्तु सम्बुध्यते तत्वं, विरक्तोभवसागरात्॥

-(अवधूत गीता)

# परिचय

**स**मय-समय पर प्रेमी जिज्ञासु-भक्तजनों ने अनन्त श्री अवधूत महाप्रभु (सद्गुरुदेव श्रीनित्यानन्दजी महाराज) वापजी से जो प्रश्न किये; और उनका विनोद पूर्वक- शास्त्रीय प्रमाण- (श्लोक) देते हुवे; आपश्री (श्रीमहाप्रभु वापजी) ने जो उत्तर दिये-उन्हीं का 'प्रश्नोत्तर' रूप यह संग्रह है।

यद्यपि- 'प्रश्नोत्तरी' नाम से कई पुस्तकें प्रख्यात हैं। परन्तु- हमारे आपके हृदयों में समय-समय पर उठने वाले प्रश्नों का यथार्थ 'प्रतिरूप'; एवं उनका 'समाधान' पूर्वक 'आनन्द का मार्ग' दिखाने वाली- यह 'प्रश्नोत्तरी' कितनी उच्च श्रेणी की है? यह इसके पाठ करने से ही स्पष्ट प्रतीत हो जायेगा इसमें सन्देह नहीं। अस्तु-

-: क्षमा - याचना :-

तत्काल ही नोट कर लेने पर भी; श्री महाप्रभु के कथन का पूरा-पूरा भाव इन सङ्कीर्ण- छोटे-छोटे शीर्षकों में आ नहीं सका है; तथापि-जितना भी है; इतने से ही-

"प्रीयतां मे हरिर्गुरुः"

संग्रहकर्ता-

शिशु

ॐ

# अथ मंगल-स्तुति।

मनोमयेन कोषेणाऽविद्यायाः परमाद्भुतम्।
विज्ञानमयकोषेण, विद्यायाश्च निकेतनम्॥
सृष्ट्वाऽऽनन्दमये कोषे, "नित्यानन्दो" विराजसे।
सृष्टि-शोभादि-नैपुण्य, कुलगेह! नमोस्तु ते॥

# प्रश्णोत्तरी

## गुरु - शिष्य - संवाद

## (शब्द-गुरु, चित्त-चेला)

१ प्रश्न - संसार का बीज क्या है?

उत्तर - **मम योनिर्महद्ब्रह्म, तस्मिन्गंर्भ दधाम्यहम्।**
**संभवः सर्व भूतानां, ततो भवति भारत॥**

**अर्थ**- मेरी महत् ब्रह्मरूप 'प्रकृति' अर्थात्-त्रिगुणमयी माया; सम्पूर्ण भूतों की योनि है, अर्थात्- गर्भाधान का स्थान है, और मैं उस योनि में 'चेतनरूप बीज' को स्थापन करता हूं। उस जड़-चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

-(गीता १४-३)

२ प्रश्न - संसार का अधिष्ठान कौन है?

उत्तर - **स्वप्रकाशमधिष्ठानं, स्वयंभूय सदात्मना।**
**ब्रह्माण्डमपि पिण्डाण्डं, त्यज्यतां मलभाण्डवत्॥**

**अर्थ** - स्वयं प्रकाशरूप, जो जगत् का अधिष्ठान परब्रह्म है; तद्रूप स्वयं होकर; सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मल से भरे भांडे की तरह त्याग करे।

-(योगवाशिष्ठ)

३ प्रश्न- संसार का अधिष्ठाता कौन है?

उत्तर- **मयाध्यक्षेण प्रकृतिः, सूयते सचराचरम्।**
**हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते॥**

**अर्थ** - मुझ अधिष्ठाता के सकाश से यह मेरी माया; चराचर सहित सर्व जगत् को रचती है। और ऊपर कहे हुए हेतु से ही; यह

संसार आवागमन रूप चक्र में घूमता है।

-(गीता ९-१०)

४ प्रश्न - संसार में आकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- **महता पुण्यपुञ्जेन, क्रीतेयं कायनौस्त्वया।**
**पारं दुःखोदधेर्गन्तुं, तर यावन्न भिद्यते॥**

**अर्थ** - हे जीव! यह मानव देह रूपी 'नौका' ऐसे वैसे (साधारण) पुण्यरूपी मूल्य से नहीं मिली है; अपितु- महान् पुण्यरूपी मूल्य देने के पश्चात् ही प्राप्त हुई है। यह नौका टूट जाय, उसके पहिले, इस संसार-सागर के उस पार जाने का खंत (लगन) से प्रयत्न कर। तथा-

**यथा विशुद्ध आदर्शे, विस्पष्टं दृश्यते मुखम्।**
**अधिकारिशरीरेऽस्मिन्, बुद्धावात्मा तथैव हि॥**

**अर्थ** - शुद्ध, साफ दर्पण में जैसे मुख स्पष्ट दिखाई देता है, वैसे ही अधिकारी मुमुक्षु के शरीर में बुद्धि के विषय आत्मा दिखाई देता है।

**भावार्थ** - इस संसार सागर से तरने के लिये आत्म दर्शन करना चाहिये।

-(आत्मपुराण)

५ प्रश्न- संसार सार है, या असार?

उत्तर - **अनित्यं सर्वमेवेदं, तापत्रितयदूषितम्।**
**असारं निन्दितं हेयमिति निश्चित्य शाम्यति॥**

**अर्थ** - यह सम्पूर्ण जगत् अनित्य है, चैतन्य स्वरूप आत्मा की सत्ता से ही स्फुरित होता है- वास्तव में कल्पना मात्र है और आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक इन तीनों दुःखों से दूषित हो रहा है; अर्थात्- तुच्छ है, झूठा है, तथा असार, निन्दित और त्याज्य है, ऐसा निश्चय करके ज्ञानी पुरुष उदासीनता को प्राप्त होता है।

-(अष्टा. १-३)

६. प्रश्न- जीव ब्रह्म एक है, या -क्या?

उत्तर- **तार्किकाणांश्च जीवेशौ, वाच्यावेतौ विदुर्बुधाः।**
**लक्ष्यौचसांख्य योगाभ्यां वेदान्तैरेकता तयोः॥**

**अर्थ-** तार्किकों के 'जीव' और 'ईश्वर' यह 'वाच्य' हैं- ऐसा ज्ञानीजन जानते हैं, सांख्य और योग से यह दो 'लक्ष्य' हैं, और उपनिषदों से इन दोनों की 'एकता' है तथा-

**"जीवो ब्रह्मेव नापरः"**

**भावार्थ-** जीव और ब्रह्म एक ही हैं, दो नहीं।

-(श्रुतिः)

७ प्रश्न- मनुष्य मात्र का कर्तव्य क्या है?

उत्तर- **स्वाधीने निकटस्थितेऽपि विमलं ज्ञानामृते मानसे।**
**विख्याते मुनिसेवितेऽपि कुधियो- न स्नान्ति तीर्थे द्विजाः॥**
**यत्तत्कष्टमहो विवेकरहिता- स्तीर्थार्थिनोदुःखिताः।**
**यत्रक्वाप्यटवीमटन्ति जलधौ, मज्जंति . दुःखाकरे॥**

-(भर्तृहरि)

**अर्थ-** 'स्व स्वरूप की प्राप्ति करना मनुष्यमात्र का कर्तव्य है'। यह प्राप्ति 'ज्ञान' से होती है। ज्ञान की प्राप्ति 'सन्त समागम' के सिवा नहीं. सन्त-समागमही महान् 'तीर्थ' है। इस तीर्थ में महा विख्यात वसिष्ठ और श्री रामचन्द्र जी ने ज्ञानामृत से भरपूर 'योग वासिष्ठरूपी मानसरोवर' में बैठ कर ज्ञानामृत का पान किया। याज्ञवल्कय और गार्गी ने ज्ञानामृत से भरपूर 'उपनिषद् रूपी मानसरोवर' में बैठ कर; ज्ञानामृत का पान किया। महादेव और पार्वती जी ने, श्रीकृष्ण और अर्जुन ने, श्रीकृष्ण और उद्धव ने, वेदव्यास और शुकदेव जी ने, शुकदेव जी और जनक ने, जनक और याज्ञवल्कय ने, जनक और अष्टावक्र ने, श्री शुकदेव जी और परीक्षित ने, शौनक और सूतपुराणी ने, श्री शंकराचार्य जी और पद्मनाभादि शिष्यों ने, विद्यारण्य स्वामी और मुमुक्षुओं ने, श्रीमद्बल्लभाचार्य जी और कृष्णदास जी आदि शिष्यों ने, श्री रामानुजस्वामी, अद्वैतस्वामी और ऐसे असंख्य आचार्य महान् महात्मा, मुमुक्षु-भक्तों ने 'संत-समागम' रूपी तीर्थ में स्नान कर; (वास्तविक कर्तव्य कर) 'मोक्ष लाभ'

किया और दिया, वैसा ही करना-करना इष्ट-कर्तव्य है।

८ प्रश्न- संसार में दान कौन सा देना योग्य है?

उत्तर- **सर्वेषामेव दानानां, ब्रह्मदानं विशिष्यते।**
**वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम्॥**

**अर्थ-** जल, अन्न, गाय, भूमि, वास, तिल, सुवर्ण और घी इन सब दानों से वेद-विद्या- 'ब्रह्मविद्या का दान' श्रेष्ठ है।

९ प्रश्न- संसार में आकर कौन वस्तु की प्राप्ति करना योग्य है?

उत्तर- **आदौ मध्ये तथान्ते, जनिमृतिफलदं, कर्ममूलं विशालं,**
**ज्ञात्वा संसारवृक्षं भ्रममदमुदिता-शोकतानेकपत्रम्॥**
**कामक्रोधादिशाखं, सुतपशुवनिता-कन्यकापक्षिसंघं**
**छित्वाऽसङ्गासिनैनं, पटुमतिरभितश्चिन्तयेद्वासुदेवम्॥**

-(वेदान्तकेसरी)

**अर्थ-** आदि में, मध्य में और अन्त में असद्रूप होते हुए; जन्ममरण रूप फल को देने वाले, कर्मरूप मूल वाले, विस्तार वाले, भ्रांति, अहंकार, हर्ष, शोक आदि अनेक पत्रों वाले, काम क्रोधादि रूप शाखाओं वाले, पुत्र, पशु, स्त्री और कन्यारूप पक्षियों के समूह वाले, -संसार रूप वृक्ष को असद्रूप जान; असंग रूप तलवार से काट कर कुशल बुद्धिवाला पुरुष सदा वासुदेव का चिन्तवन करे।

१० प्रश्न- संसारी मनुष्य कौन कर्तव्य करने से कृत कृत्य होता है?

उत्तर- **सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाधीयतां।**
**शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतर कर्माशु सन्त्यज्यताम्॥**
**सद्विद्वानुपसर्पतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यतां।**
**ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरो- वाक्यं समाकर्ण्यताम्॥१॥**

**अर्थ-** 'सत्पुरुषों का संग' करना, भगवान् में 'दृढ़ भक्ति' धारण करना, 'शान्ति' आदि गुणों को 'धारण' करना, अत्यन्त दृढ़ 'कर्मों' का जल्दी 'त्याग' करना, उत्तम 'विद्वान'- (श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ) की 'शरण' में जाना; उनकी 'पादुका' का नित्य 'सेवन' करना, एक अक्षर रूप 'ॐकार' के ज्ञान की याचना करना; तथा श्रुति

मुख-'वेदान्त' वाक्यों का भली प्रकार 'श्रवण' करना।

-(श्रीशङ्कराचार्यः)

११ प्रश्न- ब्राह्मण किसको कहते हैं?

उत्तर- **शमोदमस्तपः शौचं, क्षान्तिरार्जव मेवच।**
**ज्ञानं विज्ञान मास्तिकयं, ब्रह्मकर्म स्वभाजम्॥**

**अर्थ**- अन्तःकरण का 'निग्रह', इन्द्रियों का 'दमन' बाहर भीतर की 'शुद्धि'; धर्म के लिए 'कष्ट सहन' करना और 'क्षमा' भाव, एवं-मन, इन्द्रियों और शरीर की 'सरलता' 'आस्तिक बुद्धि', शास्त्र विषयक 'ज्ञान' और 'परमात्मत्तत्व का अनुभव' ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

१२ प्रश्न- क्षत्रिय किसको कहते हैं?

उत्तर- **शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम्।**
**दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥**

**अर्थ**- जिसमें शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में से न भागने का स्वभाव एवं दान और स्वामी भाव (अर्थात् निःस्वार्थ भाव से सब का हित सोच कर; शास्त्राज्ञानुसार- शासन द्वारा, प्रेम के सहित, पुत्र के तुल्य-प्रजा को पालन करने का भाव) स्वभाव ही से हो; वह क्षत्रिय कहलाता है।

१३ प्रश्न- वैश्य किसको कहते हैं?

उत्तर- **कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं, वैश्यकर्म स्वभावजम्।**

**अर्थ**- खेती, गोपालन और क्रय-विक्रय रूप सत्य व्यवहार; ये स्वभाव ही से जिसमें होते हैं वह वैश्य है।

१४ प्रश्न- शूद्र किसको कहते हैं?

उत्तर- **परिचर्यात्मकं कर्म, शूद्रस्यापि स्वभांवजम्।**

**अर्थ**- सब वर्णों की सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

१५ प्रश्न- पुरुप किसको कहते हैं?

उत्तर- **पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे, स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।**
**समेपुमान्पुंस्त्रियौ वा, क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥**

-(मनुः ३-४९)

**अर्थ-** ऋतुदान में पुरुष का वीर्य अधिक हो; तो पुत्र और स्त्री का आर्तव (रज) अधिक होय; तो कन्या होती है, और जो स्त्री पुरुष के रज-वीर्य समान हों तो नपुंसक पुत्र अथवा बंध्या दोष वाली कन्या उत्पन्न होती है। जो पुरुष अल्प वा क्षीण-वीर्य हो; अथवा-स्त्री क्षीण, वा अशुद्ध आर्तव वाली हो; तो गर्भ रहता नहीं।

१६ प्रश्न- लड़का (पुत्र) किसको कहते हैं?

उत्तर- **एकेनापि सुवृक्षेण, पुष्पितेन सुगंधिना।**
**वासितं तद्वनं सर्व, सुपुत्रेण कुलं यथा॥**

-(चाणकय:)

**अर्थ-** जैसे- एक सुगन्धि वाला, पुष्प वाला वृक्ष सारे वन को सुगंधमय बना देता है, वैसे ही- एक ही 'सुपुत्र' सारे कुल को शोभायमान करता है।

**पुन्नाम्नो नरकाद्यस्तु, त्रात्यत: पुत्र उच्यते।**

**भावार्थ:-** 'पु' नाम नरक का है, उस (नरक) से जो 'त्र' बचाता है अत: उसको 'पुत्र' कहते हैं।

१७ प्रश्न- परमहंस किसे कहते हैं और उनके कितने प्रकार हैं?

उत्तर- **भेद: परमहंसस्य, ब्रह्मणा सह कोऽपि न।**
**अहमेवाऽस्मि ब्रह्मेति, भावस्याऽनुभवं बिना॥**
**कश्चित्परमहंसस्य, पदवीं लभते न हि।**
**द्वैतभावं दशायाश्चाप्यस्यां नैवाभिजायते।**
**सच्चिदानन्दरूपायाऽप्यद्वैतास्थितिरुत्तमा।**
**अस्यामेवदशायांसात्वन्तिमायांप्रवर्तते॥**
**तदानीं जायते चाऽऽत्मारामः सन्यासिसत्तम:।**
**आत्मारामत्वऽसम्प्राप्तावपि द्वैविध्यमूह्यताम्॥**
**परमहंसोस्य प्रारब्धकर्म वैचित्र्यदर्शनात्।**
**ईशकोटिर्ब्रह्मकोटिरिति द्वे नामनी श्रुते॥**
**परमहंसो ब्रह्मकोटेर्मूकस्तब्धो जडस्तथा।**
**उन्मत्तो बालचेष्टश्च, न जगत्तेन लाभवत्॥**
**परमहंसस्त्वीशकोटे:, पराकाष्ठां गतोऽनिशम्।**

**निष्कामस्य व्रतस्यात्र, जगज्जन्मादि शक्तिमत्॥**
**जगदीशप्रतिनिधिर्भूत्वा तत्कर्मसंरतः।**
**जगद्धितांर्थ विप्रर्षे! एनं विद्धीशरूपिणम्॥**
**परमहंसस्त्वीशकोटे ब्रह्मरूपधरोऽपि सन्।**
**देवर्षिशक्तियुक्तश्च, भवतीति विनिश्चयः॥**
**ज्ञानदाता भयत्राता, स एव जगतां मतः॥**

**अर्थ-** परमहंस का ब्रह्म के साथ कोई भेद नहीं है। 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूं इस भाव के अनुभव बिना कोई परमहंस पदवी को नहीं प्राप्त कर सकता। इस दशा में द्वैत भाव का भान ही नहीं रहता. सच्चिदानंदरूप उत्तम अद्वैत स्थिति इसी अन्तिम दशा में प्राप्त होती है। और तभी वह सन्यासी 'आत्माराम' हो जाता है। आत्माराम की प्राप्ति के दो प्रकार हैं-

प्रारब्ध कर्म के वैचित्र्य से 'ईशकोटि' और 'ब्रह्मकोटि' इस प्रकार से दो प्रकार की परमहंस दशा होती है। ब्रह्मकोटि का परमहंस मूक, स्तब्ध, जड़ उन्मत्त और बालकों की तरह चेष्टा करने वाला होता है। उससे जगत् को कोई लाभ नहीं पहुंचता।

ईशकोटि की पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ परमहंस दिन रात जगज्जन्मादि शकितशाली भगवान् का प्रतिनिधि होकर निष्काम-व्रत ग्रहण कर भगवान् के कार्यों में लगा रहता है। ऐसे ईशस्वरूप परमहंस की उत्पत्ति जगत् के कल्याणार्थ ही हुआ करती है, ऐसा समझना चाहिये। ईश कोटि का परमहंस ब्रह्मस्वरूप और देवता तथा-ऋषियों की शक्ति से युक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। वही संसार का ज्ञानदाता और भयत्राता है।

१८ प्रश्न- सन्यासी किसको कहते हैं और वे कितने प्रकार के दोते हैं?

उत्तर- (१) **वनेषु तु विहृत्यैवं, तृतीयं भागमायुषः।**
**चतुर्थमायुषोभागे, त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्॥**
**अध्यात्मरतिरासीनो, निरपेक्षोनिरामिषः।**
**आत्मनैव सहायेन, सुखार्थी विचरेदिह॥२॥**

**अर्थ-** वन में आयुष्य का तीसरा भाग व्यतीत कर आयुष्य के

चौथे भाग में सर्व संग का त्याग कर संन्यासी होवे ॥१॥ ब्रह्म-ध्यान में ही प्रीति रखे, कोई की अपेक्षा (जरूरत) न रखे, विषयों की अभिलाषा रहित रहे और स्वयं की सहायता द्वारा सुख की इच्छा कर संसार में फिरे ॥२॥

(२) **कुटीचकस्तु प्रथमो द्वितीयस्तु बहूदकः।**
**हंसः परमहंसश्च, द्वाविमावन्तिमौ स्मृतौ ॥१॥**
**सन्यासदीक्षामादाय, कामिन्यादीन् विहाय च।**
**कुटीचकः स सन्यासी, नगर प्रान्तसीमनि ॥२॥**
**कचिन्मनोरमे स्थाने, कुटीं निर्म्माय संवसेत्।**
**योगोपनिषदध्यायैः, कुर्य्यादाध्यात्मिकोन्नतिम् ॥३॥**
**बहूदकस्तु सन्यासी, न वसेदधिकं क्वचित्।**
**दिनत्रयं प्रतिस्थानं, स्थित्वाऽन्यत्र सुखं ब्रजेत् ॥४॥**
**तीर्थादिकं परिभ्रम्य, यथावत् साधनादिभिः।**
**आत्मोपलब्धौ सततं, यतेताऽयं महामनाः॥**
**सन्यासी ज्ञानवान् हंसो विधाय भ्रमणं मुदा।**
**संसारे ज्ञानविस्तारं, कुर्य्यादेव प्रयत्नतः ॥६॥**
**पूज्यः परमहंसः स, सन्यासी विगतज्वरः।**
**कुर्व्वन्नकुर्व्वन् वा किञ्चिदसौ नारायणः स्मृतः ॥७॥**

**अर्थ**- संन्यासाश्रम के चार भेद हैं-

(१) कुटीचक्र, (२)बहूदक, (३)हंस और (४)परमहंस।

(१) सन्यासी दीक्षा ग्रहण कर स्त्री पुत्रों को छोड़ नगर प्रान्त की सीमा पर कहीं मनोहर स्थान में कुटी बनाकर जो रहता है; उसे कुटीचक कहते हैं। उसे योगाभ्यास और उपनिषदादि अध्ययन द्वारा अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिये।

(२) बहूदक- सन्यासी को कहीं अधिक नहीं ठहरना चाहिये, हर एक स्थान में तीन दिन रह कर अन्य स्थान में आनन्द के साथ चले जाना चाहिये, इस उदार चेता को तीर्थादि में परिभ्रमण कर यथावत् साधनादि आत्मा की उपलब्धि के लिये निरन्तर चेष्टा करना चाहिये।

(३) ज्ञानीहंस- सन्यासी को प्रसन्नता के साथ भ्रमण कर बड़े प्रयत्न से संसार में ज्ञान का विस्तार करना चाहिये।

(४) परमहंस- जिसके सब प्रकार के ताप छूट गये हैं, ऐसा परमहंस सन्यासी कुछ करे या न करे; वह साक्षात् नारायण-स्वरूप होने के कारण पूज्य कहा गया है।

१९ प्रश्न- अवधूत किसे कहते हैं?

उत्तर- **आशापाश विनिर्मुक्त, आदिमध्यान्तनिर्मलः।**
**आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्य लक्षणम्।।१।।**
**वासना वर्ज्जिता येन, वक्तव्यश्च निरामयम्।**
**वर्तमानेषु वर्तेत, वकारं तस्य लक्षणम्।।२।।**
**धूलिधूसरगात्राणि, धूतचित्तोनिरामयः।**
**धारणाध्याननिर्मुक्तो, धूकारस्तस्य लक्षणम्।।३।।**
**तत्वचिंता धृता येन, चिन्ताचेष्ठाविवर्जितः।**
**तमोऽहंकारनिर्मुक्तस्ताकारस्तस्यलक्षणम्।।४।।**

**अर्थ**- आशारूपी पाश से जोकि- रहित है, आदि मध्य और अन्य तीनों कालों में जो कि- निर्मल है, तथा- ब्रह्मानन्द में ही नित्य वर्तता है; उसका 'अ' कार लक्षण है।।१।।

जिस पुरुष ने वासना का त्याग कर दिया है तथा वकतव्य जिसका रोग रहित है, और जो वर्तमान में ही वर्तता है; उसका ललण 'व' कार है।।२।।

धूलि करके धूसर हैं अङ्ग जिसके, धोया गया है पापों से चित्त जिसका, रोग से रहित, जो धारणा और ध्यान से मुक्त है उसका लक्षण 'धू' कार है।।३।।

जिसने आत्मतत्व के चिन्तन को ही धारण किया है, संसार की चिंता और चेष्टा से जो कि- रहित है, तथा- धारणा और अहंकार से जो कि- रहित है, उसके 'त' कार का यह अर्थ है।।४।।

-(अवधूत गीता)

२० प्रश्न- ब्रह्मचारी किसको कहते हैं?

उत्तर- (१) **"ब्रह्मणे-वेदविद्यायै, चर्यते तद्ब्रह्मचर्यम्"।।**

**भावार्थ**- ब्रह्मः अर्थात्- वेद विद्या प्राप्त करने के लिये, जो 'व्रत' आचरण करने में आते हैं; वह ब्रह्मचर्य कहाता है॥

-(श्रुतिः)

(२) **कर्मणा सतताचारात्सर्वावस्थासु सर्वदा।**
**सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्षते॥**

-(योगी याज्ञवल्क्यः)

**भावार्थ**- सर्व कार्यों में, सर्व अवस्थाओं में नित्य, निरन्तर, सब जगह 'मैथुन' का त्याग करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं.

(३) **स्मरणं कीर्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।**
**संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिष्पत्ति रेवच॥**
**एतन्मैथुनमष्टाङ्गम्प्रवदन्ति मनीषिणः॥**

-(दक्ष स्मृतिः)

**भावार्थ**- (१)विषय का (स्त्री का) स्मरण करना, (२)स्त्री की प्रशंसा करना, (३)उसके साथ रमत गमत करना, (४)विषय की दृष्टि से स्त्री के प्रति देखना, (५)एकान्त में- बातें करना, (६)मन में विषय के संकल्प करना, (७)स्त्री प्राप्ति के लिये- उत्साहित होना, (८)और स्त्री समागम करना। यह आठ प्रकार का मैथुन कहलाता है; जो इनसे रहित है- वह ब्रह्मचारी है।

२१ प्रश्न- गृहस्थ किसको कहते हैं?

उत्तर- **सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः, कान्ता मधुरभाषिणी,**
**सन्मित्रं सुधनं स्वयोषितिरतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।**
**आतिथ्यं प्रभुकीर्तनं प्रतिदिनं, मिष्टान्नपानंगृहे,**
**साधोःसंगमुपासते हि सततं, धन्योगृहस्थाश्रमः॥१॥**

**भावार्थ**- जिस घर में सदा आनन्द होता हो, बुद्धि शाली पुत्र हों, स्त्री मीठा बोलने वाली हो, मित्र लोग सदाचारी हों, पति-पत्नी में परस्पर प्रेम हो, नौकर चाकर आज्ञा पालक हों, तथा जिस घर में हमेशा अतिथि का सत्कार, प्रभु की भक्ति, और मीठा मीठा भोजन होता हो, एवं बारम्बार साधु पुरुषों का 'सत्समागम' होता हो ऐसे 'गृहस्थाश्रम' को धन्य है।

**यत्रनास्ति दधिमन्थनघोषो, यत्र नो लघुलघूनि शिशूनि।**
**यत्रनास्ति गुरुगौरवपूजा, -तानि किं वत! गृहाणि बनानि॥**

**भावार्थ-** जहां- दहीं बिलोवने की ध्वनि होती न हो, जहां छोटे-छोटे बालक न हों और जहां- गुरु महिमा का पूजन न होता हो; क्या, वह घर; 'घर कहाता है?' ऐसे घर को तो 'वन' सरीखा समझना।

-(सुभाषितम्)

२२ प्रश्न- बाणप्रस्थ किसको कहते हैं?

उत्तर- **गृहस्थस्तु यदा पश्येद्, बलीपलितमात्मनः।**
**अपत्यस्यैवचापत्यं, तदारण्यं समाश्रयेत्॥१॥**
**स्वाध्याये नित्ययुक्तःस्याद्, दान्तोमैत्रः समाहितः**
**दाता नित्यमनादाता, सर्वभूतानुकम्पकः॥२॥**

**भावार्थ-** गृहस्थाश्रमी मनुष्य जब अपने बाल सफेद हुए देखे; तथा अपने पुत्र के यहां भी सन्तानोत्पत्ति हुई देखे, तब उसे वन का आश्रय लेना- अर्थात् गाम बाहर निवास करना॥१॥ वहां एकान्त में स्वाध्याय में लगे रहना, इन्द्रियों का दमन करना, सब के साथ मित्रभाव रखना, और स्वाधीन मन रख दाता बनना, पर किसी का दान लेना नहीं; तथा- सब प्राणियों पर दया रखना; इत्यादि नियमों का पालक बाणप्रस्थ है॥२॥

२३ प्रश्न- गृहस्थ का धर्म क्या है?

उत्तर- १ **देय मार्तस्य शयनं, स्थितश्रान्तस्य चासनम्।**
**तृषितस्य च पानीयं, क्षुधितस्य च भोजनम्॥**

**भावार्थ-** गृहस्थ को चाहिये कि- पीड़ित मनुष्य को 'सोने का', थके हुये को 'आसन', प्यासे को पानी और भूखे को 'भोजन' देवे।

२ **अराब्यप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।**
**छेत्तुः पार्श्वगतां छायां, नोपसंहरते तरुः॥**

**भावार्थ-** अपने को काटने को आने वाले की ऊपर से वृक्ष अपनी छाया को पीछे नहीं खींच लेता; वैसे ही- शत्रु भी अतिथि होकर घर आवे; तो उसका भी भली प्रकार आतिथ्य सत्कार करना चाहिये।

२४ प्रश्न- पाप का पिता कौन है?

उत्तर- **काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः।**
**महाशनोमहापाप्मा, विद्धयेनमिह बैरिणम्॥**

**भावार्थ-** रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह ही महा अशन, अर्थात्- अग्नि के सदृश भोगों से न तृप्त होने वाला और बड़ा भारी पापी- पाप का पिता है। इस विषय में इसको ही तू बैरी जान।

-(गीता)

२५ प्रश्न- धर्म की उत्पत्ति किससे होती है?

उत्तर- **"सत्यादुत्पद्यते धर्मः"**

**भावार्थ-** "सत्य भाषण से धर्म की उत्पत्ति होती है"।

'उपजे धर्म वाक्य सत करि अति'

२६ प्रश्न- धर्म की स्थिति किससे होती है?

उत्तर- **'क्षमया तिष्ठते धर्मः'।**

**अर्थात्-** 'क्षमा' से धर्म की स्थिति होती है।

'इस्थिति धर्म क्षमा के संगा'

२७ प्रश्न- धर्म की वृद्धि किससे होती है?

उत्तर- **'दयादानाद्धि वर्द्धते।'**

**अर्थात्-** दया, दान से धर्म की वृद्धि होती है।

'दया दान करि धर्म बढ़ै निति'

२८ प्रश्न- धर्म का क्षय किससे होता है?

उत्तर- **'क्रोधाद्धर्मोविनश्यतिं।'**

**अर्थात्-** क्रोध करने से धर्म का नाश होता है।

'धर्म क्रोध करि होत विभंगा'

२९ प्रश्न- धर्म के लिंग कितने हैं?

उत्तर- **धर्मस्य तस्य लिङ्गानि, दया क्षान्तिरहिंसनम्।**
**तपो दानं च शीलं च, सत्यं शौचं वितृष्णता॥**

**अर्थात्-** दया, मृदुता, क्षमा, अहिंसा, सत्य वचन, तप, दान, शील, शौच (पवित्रता), निर्लोभता ये धर्म के दस लिंग (चिन्ह) हैं॥१॥

३० प्रश्न- पूर्ण मंत्र किसको कहते हैं?

उत्तर- **सगुणो ब्रह्ममंत्रश्च, द्वौ भेदौ समुदीरितौ।**
**मंत्रस्य मंत्रयोगज्ञैर्विद्वद्भिः परमार्षिभिः।।**
**सगुणेऽऽनाप्यते पूर्णं, समाधिः सविकल्पकः।**
**ब्रह्ममन्त्रेण च तथा, निर्विकल्पो हि साधकैः।।**
**ब्रह्ममन्त्रेहि प्रणवः, सर्वश्रेष्ठतया मतः।**
**अन्येभारमया ब्रह्ममन्त्रा योगविशारदैः।।**
**महावाक्यतया प्रोक्ताश्चत्वारस्तत्र मुख्यकाः।**
**चतुर्वेदानुसारेण, चैतेनिर्णेयतां गताः।।**
**प्रधानानि भवन्त्येव, महावाक्यानि द्वादश।**
**वेदशाखाऽनुसारेण, महावाक्यप्रधानता।।**
**कल्पे सहस्त्रैकशताऽशीति मन्त्रा गता इह।**
**ब्रह्ममन्त्रेषु मुख्यो हि, गायत्रीमन्त्र ईरितः।।**
**स्वरूपद्योतका मन्त्राश्चाऽऽत्मज्ञानप्रकाशकाः।**
**ब्रह्ममन्त्रो हि विहितः, केवलं राजयोगिने।।**

-(म.यो.सं)

उत्तर- 'सगुण-मंत्र' और 'ब्रह्म-मंत्र' के भेद से दो भेद मन्त्र के योग तत्वज्ञ महर्षियों ने किये हैं। सगुण मंत्र द्वारा 'सविकल्प-समाधि' और ब्रह्म मन्त्र के द्वारा 'निर्विकल्प-समाधि' की प्राप्ति होती है। ब्रह्म मंत्र में 'प्रणव' ही सर्व्वप्रधान-पूर्ण मंत्र' है। और और भाव मय अन्य ब्रह्म मंत्रों को 'महावाक्य' भी कहते हैं। प्रधान महा वाक्य चार हैं। ये चार वेद के अनुसार निर्णीत हुएं हैं। प्रधान महावाक्य द्वादश भी हैं। और पुनः - प्रत्येक शाखा के अनुसार इस कल्प में- एक हजार एक सौ अस्सी (११८०) ब्रह्म मंत्र की संख्या राजयोगियों ने वर्णन की है। गायत्री मंत्र इन सब ब्रह्म मंत्रों से श्रेष्ठ और वह इन संख्याओं से अतिरिक्त है। यह सब ब्रह्म मंत्र स्वरूप-द्योतक और आत्मज्ञान-प्रकाशक हैं। केवल राजयोगियों ही के लिये ब्रह्म मंत्र की विधि है।

३१ प्रश्न- तारक मंत्र किसको कहते हैं?

उत्तर- (क) श्रुतं ब्राह्मं वाक्यं श्रुत इह जनैर्यैश्च प्रणवो-
गतं ब्राह्मं धाम प्रणव इह यैः शब्दित इव।
पदं ब्राह्मं दृष्टं नयनपथगो यस्य प्रणवः,
इतं ब्राह्मं रूपं मनसि सततं यस्य प्रणवः॥१॥
शास्त्राणां प्रणवः सेतुर्मंत्राणां प्रणवः स्मृतः।
स्रवत्यनोङ्कृतः पूर्व्वं- परस्ताच्च विशीर्यते॥२॥
निःसेतु सलिलं यद्वत्, क्षणान्निम्नं प्रगच्छति।
मंत्रस्तथैव निःसेतुः, क्षणात् क्षरति यज्विनाम्॥३॥
माङ्गल्यं पावनं धर्म्यं, सर्वकाम प्रसाधनम्।
ओंकारं परमं ब्रह्म, सर्वमन्त्रेषु नायकम्॥४॥
यथा पर्णं पलाशस्य, शङ्कुनैकेन धार्य्यते।
तथा जगदिदंसर्वमोङ्कारेणैव धार्य्यते॥५॥
सिद्धानां चैव सर्व्वेषां, वेदवेदान्तयोस्तथा।
अन्येषामपि शास्त्राणां, निष्ठार्थोङ्कार उच्यते॥६॥
आद्यमंत्राक्षरं ब्रह्म, त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता।
सर्व्वमंत्रप्रयोगेषु, ओमित्यादौ प्रयुज्यते॥७॥
तेन सम्परिपूर्णानि, यथोक्तानि भवन्ति हि।
सर्वमंत्राऽधियज्ञेन, ओंकारेण न संशयः।
तत्तदोंकारयुक्तेन, मंत्रेण सफलं भवेत्॥८॥

-(मं.यो.सं.)

**अर्थ**- ॐ का श्रवण; 'ब्रह्म वाक्य'- श्रवण के सदृश है, ॐ का उच्चारण 'ब्रह्म धाम' में जाने के सदृश है, ॐ का दर्शन 'स्वरूप दर्शन' के सदृश है, और ॐ का चिन्तन 'ब्रह्म रूप प्राप्ति' सदृश है। शास्त्र और मंत्रों का प्रणव- 'सेतु रूप' है। मंत्र के- पूर्व वह न रहने से मंत्र पतित' और पीछे न लगने से मंत्र 'विशीर्ण' हुआ करता है। जैसे- बिना बन्ध के जल क्षण भर में नीची भूमि को प्राप्त होकर निकल जाता है उसी प्रकार बिना प्रणव; अर्थात्- ॐ रहित मन्त्र क्षण भर में जापक को नाश कर देता है। ॐकार मंगलकारी, पवित्र धर्म्म-रक्षक और सम्पूर्ण प्रकाश की कामनाओं

को सिद्ध करने वाला है। ॐकार 'पर ब्रह्म' स्वरूप है, और सम्पूर्ण मंत्रों का 'स्वामी' है। जैसे पलाश वृक्ष के पत्तों को एक ही डंठल धारण करता है। उसी प्रकार इस सम्पूर्ण जगत् को ॐकार ही धारण कर रहा है। संपूर्ण सिद्धि के अर्थ एवं वेद और वेदान्त तथा- अन्यान्य शास्त्रों में भी निष्ठास्थापन के अर्थ ॐकार उच्चारण किया जाता है। आदि मन्त्र रूप प्रणव वेदत्रय द्वारा स्थिर निश्चय किया गया है; सर्व मंत्रों के प्रयोग में 'ॐ' इस प्रणव को आदि में संयोजित किया जाता है। उन सब मंत्रों को सिद्धि के अर्थ ही ॐकार कहा गया है। इससे ॐकार ही सर्व मंत्रों का 'अधिपति' है; इसमें सन्देह नहीं।

(ख) **ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।**
**स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं, पुरस्ताच्च विशीर्यति॥**

**अर्थात्**- वेद पाठ के आदि और अन्त में सदा ओंकार का उच्चारण करे। क्योंकि- पूर्व में ओंकार न कहने से धीरे धीरे, और पीछे न कहने से उसी समय पाठ विस्मरण हो जाता है।

-(मनु २।७४)

३२ प्रश्न- अजपा मंत्र किसको कहते हैं?

उत्तर- **हकारेण वहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः।**
**हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा॥**
**षट्शतानि त्वहो रात्रे, सहस्त्राण्येकविंशतिः।**
**एतत्संख्यान्वितं मन्त्र, जीवो जपति सर्वदा॥**
**अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदायिनी।**
**अस्याः संकल्पमात्रेण, सर्वपापैः प्रमुच्यते॥**

**अर्थ**- शरीर में का वायु 'ह'कार से बाहर आता है और 'स'कार से पुनः शरीर में प्रवेश करता है। ऐसी क्रिया द्वारा 'हंस, हंस' इस रीति का मंत्र यह जीव सर्वदा जपता है। रात्रि दिन में २१६०० स्वास के साथ-साथ जपता है। 'हंस' का रूप ही 'सोऽहं' है। इसमें से सकार हकार को बिलग करने पर ॐ ही अवशेष रहता है। इसका नाम 'अजपा गायत्री' है; जो- योगियों को मोक्ष की देने वाली

है, इसके संकल्प मात्र करने से मनुष्य सर्व पापों से मुक्त हो जाता है।

३३ प्रश्न- प्रणव का जाप किस प्रकार किया जाय?

उत्तर- (१) **"यस्य शब्दस्योच्चारणे यद्वस्तु स्फुरति तत्तस्य वाच्यमिति प्रसिद्धम्। समाहितचित्तस्योंकारोच्चारणे यत्साक्षिचैतन्यं स्फुरति, तदोंकारमवलम्ब्य; तद्वाच्यं ब्रह्माह-मस्मीतिध्यायेत्। तत्राप्यसमर्थं ॐशब्द एव ब्रह्मदृष्टिं कुर्य्यात्॥"**

**अर्थ-** जिस शब्द का उच्चारण होते जो वस्तु स्फुरती है; वह वस्तु उस शब्द की वाच्य कहाती है, यह प्रसिद्ध है।

अविक्षिप्त (शान्त-एकाग्र) चित्त वाले को ॐकार का उच्चारण करते; जो- 'साक्षी चैतन्य' स्फुरता है; उस ॐकार का अवलम्बन कर उसका वाच्य 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा जापक को ध्यान करना चाहिये।

(२) **जपन्तु सर्वधर्मेभ्यः, परमोधर्म उच्यते।**
**अहिंसया च भूतानां, जपयज्ञःप्रवर्तते॥**

**अर्थ-** सब धर्मों में 'जप' को परमधर्म कहा है; क्योंकि अहिंसादि सबों से 'जप यज्ञ' सुलभ और विघ्नों से रहित है।

३४ प्रश्न- प्रणव का स्वरूप क्या है?

उत्तर- (क) **ॐकारः सर्ववेदानां, सारस्तत्वप्रकाशकः।**
**तेनचित्तसमाधानं, मुमुक्षूणां प्रकाश्यते॥**

**अर्थ-** ॐकार सर्व वेदों का सार और तत्व का प्रकाशक है। इसके द्वारा मुमुक्षुओं के चित्त का समाधान होता है....।

-(सुरेश्वराचार्यः)

(ख) **'ॐकारनिर्णय आत्मतत्वप्रतिपत्त्युपायत्वं प्रतिपाद्यते'**

-(गौड़पादीय कारिका)

**अर्थ-** ॐकार का निर्णय आत्मतत्व की प्राप्ति के उपाय-रूप प्रतिपादन करने में आता है।

३५ प्रश्न- प्रणव उपासना किस प्रकार होती है?

उत्तर- **ॐकारध्वनिनादेन, वायोः संहरणान्तिकम्।**
**निरालम्बं समुद्दिश्य, यत्रनादो लयं गतः॥**

**अर्थात्**- प्रथम पवित्र और निर्जन प्रदेश में स्थिर तथा सुखासन से स्थित हो; 'ॐ' का लम्बे स्वर से उच्चारण कर वेदान्त विचार-ब्रह्मविचार-स्वरूपानुसंधान करते 'अहं ब्रह्मास्मि' वृत्ति स्फुर्ती है; और उसके साथ ही "आत्मा परमात्मा है, देह आदि आत्मा नहीं है"- ऐसा भाव स्थिर होता है, जिस करके देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि सब का बाध-लय उसी क्षण होता है। और ऐसा होने पर- अवशिष्ट जो रहता है, वह परब्रह्म है। उस समय (वहां) "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी वृत्ति का भी लोप हो जाता है, -यह ही समाधि है। ऐसी स्थिति जितने क्षण रहती है; उतनी देर साक्षात्कार समझना। और ऐसी वृत्ति की स्थिरता को पुनः पुनः अभ्यास कर के बढ़ाते जाना। अभ्यास की दृढ़ता बढ़ने पर स्वआत्मा में परमात्मा तादृश होंगे।

-(उत्तरगीता)

(ख) **शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि, यो जपेत्प्रणवं सदा।**
**न स लिप्यति पापेन, पद्मपत्रमिवाम्भसा॥**

-(योगचूड़ामणिः)

**अर्थ**- पवित्र हो; अथवा- अपवित्र हो; तो भी जो- हमेशा प्रणव ॐ का जप करता है; वह मनुष्य पाप से लेपायमान नहीं होता; जैसे कि- कमल-पत्र जल में रहते हुये भी जल से नहीं लिपाता।

**यस्तु द्वादश साहस्त्रं, नित्यं प्रणवमभ्यसेत्।**
**तस्य द्वादशभिर्मासैः परब्रह्म प्रकाश्यते॥**

-(यतिधर्मप्रकास)

**अर्थ**- जो अधिकारी नित्य बारह हजार प्रणव का जप करता है; उसे बारह महीने में 'परब्रह्म का साक्षात्' होता है।

३६ प्रश्न- भकित किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार की है?

उत्तर- **मोक्षकारणसामग्र्यां, भक्तिरेव गरीयसी।**
**स्वस्वरूपानुसन्धानं, भक्तिरित्यभिधीयते॥**

**अर्थ**- मोक्ष के कारणों में जो सामग्रियां हैं; उनमें भक्ति सबसे श्रेष्ठ है। जीव के 'निजी रूप के अनुसन्धान को भक्ति' कहते हैं। जीव का निजी जो 'ब्रह्म रूप' है; उसका ही अविच्छिन्न श्रवण, मनन, निदिध्यासन, या-धारणा, ध्यान, समाधि हैं; उसका नाम भक्ति है। यानी-जीव को अविद्या परि कल्पित मान कर उसे परमात्म-रूप से निरन्तर याद करने का नाम भक्ति है।

(ख) ईश्वर में अत्यन्त प्रेम करने का नाम भक्ति है-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः, स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम्॥

-(श्रीमद्भागवत ७।५।३३)

**अर्थात्**- श्रवण, कीर्तन, स्मरणनित, पदसेवन भगवान्।
पूजन, वन्दन, दास्य-रति, सख्य, समर्पण जान॥

१ **श्रवण**- भगवान् के चरित्र, लीला, महिमा, गुण नाम तथा उनके प्रेम- एवं प्रभाव की बातों को श्रद्धापूर्वक सदा सुनना और उसी के अनुसार आचरण करने की चेष्टा करना, श्रवण-भक्ति है। श्रीमद्भागवत के श्रवण मात्र से धुन्धकारी सरीखा पापी तर गया था। राजा परीक्षित आदि इसी श्रेणी के भक्त माने जाते हैं।

२ **कीर्तन**- भगवान् की लीला, कीर्ति, शक्ति, महिमा, चरित्र, गुण, नाम आदि का प्रेमपूर्वक कीर्तन करना कीर्तन-भक्ति है। श्री नारद, व्यास- वाल्मीकि, शुकदेव, चैतन्य आदि इसी श्रेणी के भक्त माने जाते हैं।

३ **स्मरण**- सदा अनन्य भाव से भगवान् के गुण प्रभाव- सहित उनके स्वरूप का चिन्तन करना और बारंबार उन पर मुग्ध होना स्मरण-भक्ति है। श्री प्रह्लादजी, श्री ध्रुवजी, श्री भरतजी, भीष्मजी, गोपियां आदि इसी श्रेणी के भक्त हैं।

४ **पादसेवक**- भगवान् के जिस रूप की उपासना हो; उसी का चरण-सेवन करना, या भूतमात्र में परमात्मा को समझ कर सबका

चरण-सेवन करना पाद सेवन भक्ति है। श्री लक्ष्मीजी, श्री रुक्मिणीजी, श्री भरतजी इस श्रेणी के भक्त हैं।

५ **पूजन**- अपनी रुचि के अनुसार भगवान् की किसी मूर्ति विशेष का, या मानसिक स्वरूप का नित्य भक्तिपूर्वक पूजन करना। विश्व भर में सभी प्राणियों को परमात्मा का स्वरूप समझ कर उनकी सेवा करना भी अव्यक्त भगवान् की पूजा है। राजा पृथु, अम्बरीष आदि इसी श्रेणी के भक्त हैं।

६ **वन्दन**- भगवान् की मूर्ति को या विश्वभर को भगवान् की मूर्ति समझ कर प्राणीमात्र को नित्य प्रणाम करना वन्दन भक्ति है। श्री अक्रूर आदि वन्दन-भक्त गिने जाते हैं।

७ **दास्य**- श्री परमात्मा को ही अपना एकमात्र स्वामी और अपने को नित्य उनका दास समझ कर किसी भी प्रकार की कामना न रखते हुए श्रद्धाभक्ति के साथ नित्य नये उत्साह से भगवान् की सेवा करना और उस सेवा के सामने मोक्ष सुख को भी तुच्छ समझना दास्य भक्ति है। श्री हनुमानजी, श्री लक्ष्मणजी आदि इसी श्रेणी के भक्त हैं।

८ **सख्य**- श्री भगवान् को ही अपना परमहितकारी परम सखा मानकर दिल खोलकर उनसे प्रेम करना। भगवान् अपने सखा-मित्र का छोटे से छोटा काम बड़े हर्ष के साथ करते हैं। श्री अर्जुन, उद्धव, सुदामा, श्रीदामा आदि इस सख्य भक्ति श्रेणी के भक्त हैं।

९ **आत्म निवेदन या समर्पण**- अहंकार रहित होकर अपना सर्वस्व श्री भगवान् के अर्पण कर देना। महाराजा बलि, श्रीगोपियां आदि इस श्रेणी के भक्त हैं।

३७ प्रश्न- भक्त कै प्रकार के होते हैं?

उत्तर- **चतुर्विधा भजन्ते मां, जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।**
**आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ॥**

**अर्थ**- हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी, अर्थात्- निष्कामी ऐसे चार प्रकार के भक्त जन मेरे को भजते हैं॥ -(गीता ७-१६)

३८ प्रश्न- ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कौन साधनों करके होती है?

उत्तर- **साधनान्यत्र चत्वारि, कथितानि मनीषिभिः।**
**येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा, यदभावे न सिध्यति।।**

**अर्थ**- बुद्धिमान् पुरुषों ने ब्रह्म जिज्ञासा में चार साधन बताये हैं, उन साधनों के होने पर ही; ब्रह्मनिष्ठ हो सकता है, उनके बिना ब्रह्म जिज्ञासा नहीं हो सकती। -

**आदौ नित्यानित्यवस्तु-विवेकः परिगण्यते।**
**इहामुत्र फलभोग-विरागस्तदनन्तरम्।।**
**शमादिषट् सम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमितिस्फुट्म।।**

**अर्थ**- 'नित्य और अनित्य वस्तु का ज्ञान' पहिला हेतु गिना है, इसके पीछे 'इस लोक और परलोक के फलों के भोगों से परिपूर्ण वैराग्य होना' दूसरा हेतु माना है। 'शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान' इन छओं की भली भांति प्राप्ति होना; तीसरा हेतु है। तथा- 'मुकत होने की उत्कट इच्छा' चौथा हेतु है। ब्रह्मसूत्र शांकर-भाष्य में भी ये दिखाये गये हैं।

३९ प्रश्न- मुक्ति क्या है और किस प्रकार होती है?

उत्तर- **देहं धियं चित्प्रति विश्वमेव, विसृज्य बुद्धयै निहितं गुहायाम्।**
**द्रष्टारमात्मानम, खण्डबोधं, सर्वप्रकाशं सदसद्विलक्षणम्।।**
**नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्ममन्तर्बहिः शून्य मनन्यमात्मनः।।**
**विज्ञाय सम्यङ् निजरूपमेतत्पुमान्विपाप्मा विरजो विमृत्युः।।**

अर्थ- देह और बुद्धि तथा बुद्धिरूप-गुहा में पड़े हुए चैतन्य के प्रतिबिम्ब को छोड़ कर सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सबके प्रकाशक, स्थूल, सूक्ष्म जगत् से विलक्षण, नित्य, व्यापक, सब के अंतर्गत, सूक्ष्म-रूप, अन्तर बाह्य से रहित, "अपनी आत्मा से अभिन्न" ऐसे आत्म स्वरूप को अच्छी तरह जान कर मनुष्य पाप से रहित निर्मल होकर जन्म मरण से छूट, मृत्यु रहित मुक्त हो जाता है।

४० प्रश्न- बन्धन किस प्रकार होता है?

उत्तर- **अत्रानात्मन्यहमिति मतिर्वन्ध एषोऽस्य पुंसः,**
**प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरणक्लेशसंतापहेतुः।**

**येनैवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या,**
**पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभिःकोशकृद्वत्॥**

**अर्थ-** आत्मा से भिन्न इस शरीर को अपने अज्ञान से आत्मा समझना ही बन्ध है। जिस पुरुष को अज्ञान के कारण यह बन्ध प्राप्त है; उस पुरुष के लिये यह जनन मरण आदि क्लेश समूहों को बन्ध ही सदा प्राप्त कराता रहता है, जिस बन्ध के होने से मनुष्य 'अनित्य' इस स्थूल शरीर को आत्म बुद्धि से 'सत्य' समझ के विषयों से पुष्ट करता, सींचता और पालता है। जैसे कि- रेशम का कीड़ा अपने रेशमी डोरों से 'कोश' बनाता हुआ; उसी में फंस जाता है। उसी तरह जीव शरीर में बद्ध है।

४१ प्रश्न- सद्गुरु किसको कहते हैं?

उत्तर- **सर्व शास्त्रपरोदक्षः, सर्वशास्त्रर्थवित्सदा।**
**सुवचाः सुन्दरः स्वङ्गः, कुलीनः शुभदर्शनः॥**
**जितेन्द्रियः सत्यवादी, ब्राह्मणः शान्तमानसः।**
**पितृमातृहिते युक्तः, सर्वकर्मपरायणः।**
**आश्रमी देशवासी च, गुरुरेवं विधीयते॥**
**आचार्य गुरु शब्दौ द्वौ, सदा पर्यायवाचकौ।**
**कश्चिदर्थगतो भेदो, भवत्येवं तयोः क्वचित्॥**
**औपपत्तिकमंशं तु, धर्मशास्त्रस्य पण्डितः।**
**व्याचष्टे धर्ममिच्छूनां, स आचार्यः प्रकीर्तितः।**
**सर्वदर्शी तु यः साधुर्मुमुक्षूणां हिताय वै॥**
**व्याख्याय धर्म-शास्त्रांशं, क्रियासिद्धिप्रबोधकम्॥**
**उपासनाविधेः सम्यगीश्वरस्य परात्मनः।**
**भेदान्प्रशास्ति धर्मज्ञः, स गुरुः समुदाहृतः॥**
**सप्तानां ज्ञानभूमीनां, शास्त्रोक्तानां विशेषतः।**
**प्रभेदान्योविजानाति, निगमस्यागमस्य च॥**
**ज्ञानस्य चाधिकारांस्त्रीन्भावतात्पर्यलक्षतः।**
**तन्त्रेषु च पुराणेषु, भाषायास्त्रिविधां सृतिम्॥**
**सम्यग्भेदैर्विजानाति, भाषातत्वविशारदः।**

निपुणो लोकशिक्षायां, श्रेष्ठाचार्यः स कथ्यते॥
पञ्चतत्वविभेदज्ञः, पञ्चभेदान्विशेषतः।
सगुणोपासनां यस्तु, सम्यग्जानाति कोविद॥
चतुष्टयेन भेदेन, ब्रह्मणः समुपासनाम्।
गभीरार्थां विजानीते, बुधो निर्मलमानस॥
सर्वकार्येषु निपुणो, जीवन्मुक्तस्त्रितापहृत्।
करोति जीवकल्याणं, गुरु श्रेष्ठः स कथ्यते॥

-(मन्त्रयोग संहिता)

**अर्थ**- सर्व शास्त्रों में पारङ्गत, चतुर, सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्व-वेत्ता, और मधुरवाक्य भाषण करने वाले हों, सब अङ्ग जिनके पूर्ण और सुन्दर हों, कुलीन हों, दर्शन करने में मङ्गल मूर्ति हों, इन्द्रियां जिनकी वशीभूत हों, सर्वदा सत्यभाषण करने वाले हों, उत्तम वर्ण, ब्रह्मवेत्ता हों, शान्त मानस अर्थात् जिनका मन कभी चञ्चल नहीं होता हो, माता-पिता के समान हित करने वाले हों, सम्पूर्ण कर्मों में अनुष्ठान-शील हों, और गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और सन्यासी इन आश्रमों में से किसी आश्रम के हों, एवं- भारतवर्ष निवासी हों; इस प्रकार के सर्व गुण सम्पन्न महात्मा 'गुरु' करने के योग्य कहे गये हैं॥

'आचार्य' और 'गुरु' ये दोनों पर्यायवाचक शब्द हैं, तथापि कार्य के बेलक्षण्य से आचार्य और गुरु इनमें भेद भी है। सम्पूर्ण 'वेद' और 'शास्त्र' आदि में सुपण्डित हों और उनका औपपत्तिक ज्ञान; शिष्य को करावें वे 'आचार्य' कहाते हैं। जो सर्वदर्शी साधु; मुमुक्षुओं के हितार्थ वेद शास्त्रोक्त क्रियासिद्धांश और परमेश्वर की उपासना व भेदों को; यथाधिकार- शिष्यों को बतलावें; उनको 'गुरु' कहते हैं। दर्शनशास्त्र की सात भूमिका के अनुसार जो वेद और शास्त्र के सकल भेदों को जानते हों, अध्यात्म, अधिदैव, एवं अधिभूत नाम भावत्रय को भली भांति समझते हों, और तन्त्र और पुराणों की- समाधि भाषा, लौकिक भाषा, परकीय भाषा इनसे भली भांति परिचित रहकर, लोकशिक्षा में निपुण हों; वे ही श्रेष्ठ 'आचार्य' कहे

जाते हैं। पञ्चतत्व के अनुसार जो महापुरुष विष्णूपासना, सूर्योपासना, शक्तुपासना, गणेशोपासना और शिवोपासना रूप पञ्चच सगुण उपासना के पूर्ण रहस्यों को समझते हों, और जो योगिराज मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग इन चारों के अनुसार चतुर्विध निर्गुणोपासना को जानते हों; ऐसे ज्ञानी, निर्मल-मानस, सर्वकार्य में निपुण, त्रितापरहित, जीवों का कल्याण करने वाले, जीवन्मुक्त महात्मा श्रेष्ठ 'गुरु' कहलाते हैं।

४२ प्रश्न- गुरु की सेवा किस प्रकार होती है?

उत्तर- **यादृगस्तीह सम्बन्धो ब्रह्मांण्डस्येश्वरेण वै।**
**तथा क्रियाख्ययोगस्य, सम्बन्धोगुरुणा सह।।**
**दीक्षाविधावीश्वरो वै, कारणस्थलमुच्यते।**
**गुरुः कार्यस्थलं चाऽतो गुरुर्ब्रह्म प्रगीयते।।**
**गुरौ मानुषबुद्धि तु, मन्त्रे चाक्षरभावनाम्।**
**प्रतिमासु शिलाबुद्धिं, कुर्वाणो नरकं ब्रजेत्।।**
**जन्महेतू हि पितरौ, पूजनीयौ प्रयत्नतः।**
**गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माऽधर्मप्रदर्शकः।।**
**गुरुःपिता गुरुर्माता, गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।**
**शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन।।**

-(म.स.)

**अर्थ**- ईश्वर के साथ जैसा ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध है; उसी प्रकार गुरु के साथ क्रिया योग का सम्बन्ध है। दीक्षा विधि में ईश्वर कारण-स्थल और गुरु कार्य-स्थल कहे गये हैं, इन कारण- 'गुरु ब्रह्मरूप' हैं। जो लोग गुरु के सम्बन्ध में- विषय में 'मनुष्य बुद्धि' और मंत्र के विषय में 'अक्षर बुद्धि' और देव प्रतिमा में 'पाषाण बुद्धि' रखते हैं; वे नरकगामीं होते हैं। माता और पिता जन्म देने के कारण पूजनीय हैं; किन्तु- गुरु धर्म और अधर्म का ज्ञान कराने वाले हैं; इस कारण- उनका पूजन पितृगणों से भी अधिक यत्न करके करना उचित है।

गुरु ही पिता हैं, गुरु ही माता है, गुरु ही देवता हैं, और गुरु ही

सद्‌गति रूप हैं। परमेश्वर के रुष्ट होने पर तो गुरु बचाने वाले हैं; परन्तु गुरु के अप्रसन्न होने पर कोई भी त्राण दाता नहीं है।

४३ प्रश्न- सद्‌गुरु की पहिचान कौन चक्षु करके होती है?

उत्तर- **श्रीगुरोः परमं रूपं, विवेकचक्षुरग्रतः।**
**मन्दभाग्या न पश्यन्ति, अन्धाः सूर्योदयं यथा॥**

अर्थ- जैसे सूर्योदय को अन्धे मनुष्य नहीं देखते, वैसे ही श्रीगुरु का परमरूप (वास्तव स्वरूप) मंदभाग्य वाले विवेक चक्षु के अग्रभाग से देखते नहीं।

**यस्मात्परतरं नास्ति, नेति नेतीति वै श्रुतिः।**
**मनसा वचसा चैव, सत्यमाराधयेद् गुरुम्॥**

**अर्थ-** जिन्हों से श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है; श्रुति 'नेति-नेति' ऐसा कहती है, ऐसे सत्यस्वरूप श्रीगुरु को ही मन, वाणी द्वारा आराधना चाहिये। उनकी कृपा से ही उनके असली स्वरूप की पहिचान हो सकती है।

४४ प्रश्न- सद्‌गुरु का ज्ञान किसको फलीभूत होता है?

उत्तर- **यथा खनन्खनित्रेण, नरो वार्यधिगच्छति।**
**तथा गुरुगतां विद्यां, शुश्रूषुरधिगच्छति॥**

**अर्थ-** जिस प्रकार कुदाल से जमीन खोदते-खोदते मनुष्य जल प्राप्त कर लेता है; उसी प्रकार गुरुकी सेवा करते-करते गुरु में रही विद्या- ज्ञान, प्राप्त होता है।

(२) **अधिकारिणामाशास्ते, फलसिद्धिर्विशेषतः।**
**उपाया देशकालाद्याः, सन्त्यस्मिन् सहकारिणः॥**

**अर्थ-** ब्रह्मज्ञानरूप फल की सिद्धि; अधिकारी-पुरुष की आशा रखती है। देश आदिक उपाय तो- इसके सहायक होते हैं।

४५ प्रश्न- गुरु-भक्त किसको कहते हैं?

उत्तर- **अलुब्धः स्थिरगात्रश्च, आज्ञाकारी जितेन्द्रियः।**
**आस्तिकोदृढभक्तश्च, गुरौ मन्त्रे च दैवते॥**
**एवंविधोभवेच्छिष्य, इतरोदुःखकृद् गुरोः॥**

**अर्थ-** लोभ रहित, स्थिरगात्र (अर्थात् जिसका अङ्ग चञ्चल, न हो)

गुरु का आज्ञाकारी, जितेन्द्रिय, आस्तिक, और गुरुमन्त्र एवं देवता में जिसकी दृढ़भक्ति हो; ऐसा शिष्य (गुरु-भक्त) दीक्षा का अधिकारी है। और इन गुणों से विरुद्ध गुण रखने वाला शिष्य; गुरु के दुःख देने वाला जानना चाहिये।

४६ प्रश्न- पण्डित किसको कहते हैं?

उत्तर- **धनोपयोगः सत्पात्रे, यस्यैवास्ति स पण्डितः।**
**गुरुशुश्रूषया जन्म, चित्तं सद्ध्यानचिन्तया।।१।।**

द्रव्य खर्च सत्पात्र में, जन्म जाय गुरु सेव।
हरि सुमिरण महँ चित्त जेहि, वह पण्डित श्रुति भेव।।

**अर्थात्-** जिसका द्रव्य सत्पात्रों को दान देने में खर्च होता हो, आयुष्य गुरुदेव की सेवा में लगता हो और चित्त जिसका हरि-परमात्मा के स्मरण चिंतन में लगा हो; वह मनुष्य श्रुति के भेद को जानने वाला पण्डित है।

**न पण्डितः क्रुद्ध्यति नाभिपद्यते, नचापि संसीदति न प्रहृष्यति।।**
**न चातिकृच्छ्रव्यसनेषु शोचते, स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः।।१।।**

**अर्थात्-** पण्डित वह है; जो क्रोध नहीं करता, न कभी विषयों में पड़ता, न दुःख में कभी दुःखी और न सुख में हर्षित, किम्बहुना- भारी से भारी आपत्ति आने पर भी जो सोच नहीं करके प्रकृत्या हिमाचल की तरह स्थिर रहता है।

४७ प्रश्न- मूर्ख किसको कहते हैं?

उत्तर- **व्यालं वालमृणालतन्तुभिरसौ, रोद्धुं समुज्जृम्भते,**
**छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुम- प्रांतेन संनह्यते।।**
**माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं, क्षारांबुधेरीहते।**
**नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां, सूक्तैः**
**सुधास्यन्दिभिः।। ६।।**

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

**शक्योवारयितं जलेन हुतभुक्, छत्रेण सूर्यातपो-**
**नागेंद्रोनिशितांकुशेन समदो, दंडेन गोगर्दभौ॥**
**व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मंत्रप्रयोगैर्विषम्,**
**सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं, मूर्खस्यनास्त्यौषधम्॥**

**अर्थ**- कोई साधक- प्रयत्नशील पुरुष- कोमल कमख के तन्तु से सर्प अथवा-मदोन्मत्त हाथी को 'बांध सके', सरसड़ा के पुष्पों के सिरे से 'हीरे में छेद' कर सके, और शहद की बंदों से खारे समुद्र को कदाचित् 'मीठा' बना सके, (अशकय को शकय कदाचित् कर सके) परन्तु- अमृत जैसे सुन्दर वचनों से वह साधक खल पुरुषों को सन्मार्ग पर नहीं ला सकता। (अमृत के समान सुन्दर वचन भी उसको खारे जहर के समान लगते हैं)।

जल से अग्नि का निवारण हो सकता है, छत्र से धूप का निवारण हो सकता है, तीक्ष्ण अंकुश द्वारा हाथी को नियम में लाया जा सके, डंडे से गाय-गधे को सीधा बना दिया जाय, औषधि के सेवन से असाध्य रोग भी मिट सकें, नाना प्रकार के मंत्रों के प्रयोग से सर्पादि का जहर भी निवृत्त किया जा सके, शास्त्रों में इस प्रकार सबों के उपाय बताये हैं; परन्तु- मूर्ख- हठीला- अकल चंडा- के लिये कोई उपाय नहीं है।

**इतःकोन्वस्ति मूढात्मा, यस्तुस्वार्थे प्रमाद्यति।**
**दुर्लभं मानुषं देहं, प्राप्य तत्रापि पौरुषम्॥**

-(विवेकचूड़ामणिः)

**अर्थ**- इससे अधिक अधिक कौन मूढ़ 'मूर्ख' होगा! जो दुर्लभ मनुष्य शरीर और उसमें भी पुरुषार्थ पाकर अपना प्रयोजन सम्पादन करने में प्रमाद करता हो?

४८ प्रश्न- सन्त किसको कहते हैं?

उत्तर- **शान्तोमहान्तोनिवसन्ति सन्तो,**
**वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।**
**तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनान-**
**हेतुनान्यानपि तारयन्तः॥**

**अर्थ**- शान्त स्वभाव सन्त महात्मा लोग बड़े भयानक संसारसमुद्र से स्वयं उत्तीर्ण होकर, बिना कारण- दयाभाव से ही प्रेरित हो; संसार-समुद्र में फंसे हुए जीवों के उद्धार करने के लिये; बसन्त की तरह लोक का 'कल्याण' करते हुए संसार में निवास करते हैं।

४९ प्रश्न- सन्तों का धर्म क्या है?

उत्तर- **अयं स्वभावः स्वत एव यत्पर-**
**श्रमापनादप्रवणं महात्मनाम्।**
**सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश-**
**प्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल॥१॥**

**अर्थ**- महात्मा लोगों का यह स्वतः स्वभाव ही है जो कि- दूसरे का दुःख दूर करने में तत्पर होते हैं। जैसे- सूर्य्य के प्रचण्ड-किरणों से तपी हुई पृथ्वी को चन्द्रमा अपने सुधा-संयुक्त किरणों से सींच कर उसकी रक्षा करता है।

५० प्रश्न- पतिव्रत धर्म किसको कहते हैं?

उत्तर- **परुषागयपि चोक्ता या, दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा।**
**सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता॥**

**अर्थ**- पति ने कभी कटु वचन कहे होंय; अथवा क्रोध दृष्टि से देखा तो, तो भी- उसके प्रति जो स्त्री प्रसन्नमुख रहती है- वह पतिव्रता कहाती है॥१॥

**कार्येषु मंत्री करणेषुदासी, भोज्येषु माता शयनेषु रंभा।**
**धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, षाड्गुण्यमेतद्धि पतिव्रतानाम्**

**अर्थ**- कार्य करने- सलाह देने- में 'मंत्री' के समान, सुपुर्द किया काम करने में 'दासी' के समान, भोजन समय प्रीति रखने वाली 'माता' के समान, शयन के विषे प्रीति उपजाने वाली 'रम्भा' के समान, धर्म कार्यों में 'अनुकूल' और क्षमा करने में 'पृथ्वी' के समान; यह छहः गुण जिसमें होते हैं; वह पतिव्रता कहाती है।

५१ प्रश्न- स्वामी किसको कहते हैं?

उत्तर- (१) **छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा- न्यायेन दूरीकृतं।**
**स्वान्दोषान्कथयन्ति नाधिकरणे, रागाभिभूताः स्वयम्।**
**तैः पक्षापरपक्षवर्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते,**
**संक्षेपादपवाद एव सुलभो, द्रष्टुर्गुणोदूरतः॥**

**अर्थः** -न्याय विरुद्ध होने पर भी पराये छिपे कार्यो को उखाड़ करके आक्षेप करना, जिन दोषों में आप स्वयं पड़े हुये हैं, उनको छिपाकर दूसरे के शिर पर दोष लगाना आदि पक्षा-पक्ष की नीति वाले समीपवर्ती लोगों के दोषों से राजा (स्वामी) घिरा रहता है। संक्षेप यह कि- गुणों की अपेक्षा अवगुण अधिक शीघ्र आते हैं। परन्तु- इनसे जो बचा हुआ है, वही सच्चा स्वामी है।

(२) **दाता क्षमी गुणग्राही, स्वामी दुःखेन लभ्यते।**

**अर्थ-** प्रसंगोपात्त कुछ इनाम देने वाला, क्षमावान् और केवल गुण को ही देखने वाला स्वामी भाग्य ही से मिलता है।

५२ प्रश्न- सेवक किसको कहते हैं?

उत्तर- (क) **राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्।**
**व्याघ्रीगात्र परिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम्।**

**अर्थ-** राजाओं की सेवा करना मनुष्यों के लिये तलवार की धार को चाटना, सिंहनी के साथ में भेंट करना, वा सर्पिणी के मुख को चुम्बन करने के समान है- अर्थात् अत्यन्त कठिन है।

(ख) **शुचिर्दक्षोऽनुरक्तश्च, जाने भृत्योऽपि दुर्लभः।**

पवित्र आचरणवाला, व्यवहार चतुर और स्वामी के प्रति भक्ति भाव रखने वाला सेवक भाग्य ही से मिलता है।

५३ प्रश्न- गुरु-द्रोही किसको कहते हैं?

उत्तर- **दुर्भगोविकलो मूर्खो, निर्विवेको नपुंसकः।**
**नीचकर्मकरो नीचो, गुरुदूषणकारकः॥**

**अर्थात्-** जो मनुष्य गुरु-देव की निन्दा में राग रखता है; वह गुरु-द्रोही है। वह नीच कर्म का करने वाला, मन्दभागी, विकलचित्त, मूर्ख और नपुंसक होगा।

५४ प्रश्न- कृतघ्न किसको कहते हैं?

उत्तर- **उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते।**
**पयःपानं भुजङ्गानां, केवलं विषवर्धनम्॥**
**अर्थ**- नीच-कृतघ्न-मनुष्य पर किया हुआ उपकार; अपकार सरीखा फल देता है। जैसे- सर्प को दूध पिलाओ; तो वह केवल विष की ही वृद्धि करता है।

**शोकं मा कुरु कुक्कुर सत्वेष्वहमधम इति मुधा साधो।**
**कष्टादपि कष्टतरं द्रष्ट्वा श्वानं कृतघ्ननामानम्॥**
**भावार्थ**- हे कुकुर! तुम व्यर्थ ही यह देखकर शोक मत करो कि- "प्राणियों में मैं अधम (कुत्ता) हूं" क्योंकि- अधम से भी अधिक अधम (सच्चा कुत्ता) तो कृतघ्न है। (जो दूसरे के कृत-किये हुये उपकार को नहीं मानता वह कृतघ्न)

५५ प्रश्न- आत्मा किसको कहते हैं?

उत्तर- **आत्मा: क:? स्थूल-सूक्ष्म-कारण-शरीराद्व्यतिरिक्त: पंचकोशातीत: सन् अवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानंदस्वरूप:सन् यस्तिष्ठति स आत्मा।**
**अर्थ**- आत्मा क्या है? स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारणशरीर से भिन्न:, पंचकोशों से पर होकर तीनों अवस्थाओं का साक्षी और सच्चिदानन्द-स्वरूप वाला होकर जो रहता है; वह आत्मा है।

५६ प्रश्न- परमात्मा किसको कहते हैं?

उत्तर- **प्रकृतिविकृतिभिन्न: शुद्धसत्वस्वभाव:,**
**सदसदिदमशेषं भासयन्निर्विशेष:।**
**विलसित परमात्मा जाग्रदादिष्ववस्था-**
**स्वहमहमिति साक्षात्साक्षिरूपेण बुद्धे:॥**
**अर्थ**- परमात्मा अव्यकत- माया और उसके कार्यों से भिन्न है, शुद्ध-सत्व स्वभाव है, जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में 'मैं सोया, मैंने देखा', ऐसा 'अहं' इस ज्ञान का विषय होने से साक्षात् बुद्धि का साक्षी होकर सारे स्थूल सूक्ष्म जगत् को वो निर्विशेष रूप से प्रकाश करता हुआ स्वयं प्रकाशित हो रहा है।

५७ प्रश्न- जीव किसको कहते हैं?

उत्तर- **चिदाभास युक्त अन्तःकरण सहित कूटस्थ चैतन्य सो जीव है।**
**स्थूलशरीराभिमानी जीवनामकं ब्रह्म प्रतिबिंबंभवति।**
**स एव जीवः प्रकृत्या स्वस्मात् ईश्वरं भिन्नत्वेन जानाति।**
**"अविद्योपाधिः सन् आत्मा जीव" इत्युच्यते॥**

**अर्थ-** स्थूल शरीर में 'हूं' पन का अभिमान रखने वाला जीव नाम का ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होता है। वही जीव अविद्या के कारण ईश्वर को अपने से भिन्न जानता है। अविद्या रूप उपाधि वाला होने से आत्मा जीव ऐसा कहाता है।

५८ प्रश्न- साक्षी किसको कहते हैं?

उत्तर- **विज्ञाते साक्षिपुरुषे, परमात्मनि चेश्वरे।**
**नैराश्यै बन्धमोक्षे च, न चिन्ता मुक्तये मम॥**

**अर्थ-** देह इन्द्रियऔर अन्तःकरण के साक्षी, सर्व शकितमान् परमात्मा का ज्ञान होने पर पुरुष को बन्ध तथा- मोक्ष की आशा नहीं होती है और मुकित के लिये भी चिन्ता नहीं होती है।

५९ प्रश्न- कूटस्थ किसको कहते हैं?

उत्तर- **घटं जलं तद्गतमर्क बिम्बं, विहाय सर्व विनिरीक्ष्यतेऽर्कः।**
**कूटस्थ एतत्त्रितयावभासकः, स्वयं प्रकाशोविदुषा यथातथा॥**

**अर्थ-** जैसे घट, जल और जल में पड़ा हुआ सूर्य्य का प्रतिबिम्ब- इन सबों को छोड़ देने से; इन तीनों के प्रकाशक, एवं- इन तीनों से निर्लेप, स्वयं प्रकाश- स्वरूप सूर्य्य को विद्वान् लोग पृथक देख लेते हैं। इसी तरह 'कूटस्थ-सच्चिदानन्द' चिदाभास जीव, देहद्वय और बुद्धि इन तीनों का अबभासक 'स्वयं प्रकाश' है।

६० प्रश्न- प्रत्यग् आत्मा किसको कहते हैं।

उत्तर- **अहं पदार्थस्त्वहमादिसाक्षी,**
**नित्यं सुषुप्तावपि भावदर्शनात्।**
**ब्रूतेह्यजोनित्य इति श्रुतिः स्वयं,**
**तत्प्रत्यगात्मा सदसद्विलक्षणः॥**

**अर्थ-** अहंकार आदि का 'साक्षी' व 'नित्य' जो सुषुप्ति काल में भी वर्तमान रहता है; वह स्वयं जीवात्मा-सत् असत् से विलक्षण,

सर्वव्यापी, 'प्रत्यगात्मा' है। क्योंकि- कठ २।३।१८ की श्रुतिः- 'अजो नित्यः शाश्वतः' -जीवात्मा को अजन्मा, अमर और उत्पादकता से रहित कह रही है।

६१ प्रश्न- सच्चिदानन्द किसको कहते हैं?

उत्तर- **सत्किम्? कालत्रयेऽपि तिष्ठति इति सत्।**
**चित्किम्? ज्ञानस्वरूप।**
**आनंदः कः? सुखस्वरूपः।**

**अर्थ-** सत् क्या? ........तीनों कालों में जो एक समान रहता है वह 'सत्'
चित् क्या? ............ज्ञान स्वरूप है- वह 'चित्'।
आनंद क्या? ...........सुख स्वरूप है- वह 'आनन्द'।

-(वि.चू.)

६२ प्रश्न- चैतन्य किसको कहते हैं?

उत्तर- **स वेत्ति वेद्यं तत्सर्वं, नान्यस्तस्यास्ति वेदिता।**
**विदिता विदिताभ्यां तत्पृथग्बोध स्वरूपकम्॥**

**अर्थ-** जो ज्ञान रूप है और सर्व घटादिक प्रपंच को जानता है; और जिसको अन्य मन इन्द्रिय आदिक कोई जान सकते नहीं सो चैतन्य है।

-(पं. दं.)

६३ प्रश्न- शिव किसको कहते हैं?

उत्तर- **लक्ष्यालक्ष्य गतिं त्यक्त्वा, यस्तिष्ठेत्केवलात्मना।**
**शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः॥**

**अर्थ-** जो लक्ष्य अलक्ष्य वस्तुओं की गति को त्याग कर केवल एक आत्म स्वरूप से सदा स्थिर होते हैं, वे साक्षात् 'शिव स्वरूप हैं' वे ही ब्रह्मज्ञानियों में उत्तम हैं।

६४ प्रश्न- जड़ किसको कहते हैं?

उत्तर- जो आपको न जाने और दूसरे को भी न जाने, ऐसा-अज्ञान ('नहीं जानता हूं' ऐसे व्यवहार का हेतु, आवरण विक्षेप-शक्तिवाला, अनादि भावरूप, अज्ञान पदार्थ है) और उसके- कार्य 'भूत'

(आकाशादिक पांचभूत) 'भौतिक' (भूतों के कार्य-पिंड ब्रह्माण्डादिक) 'पदार्थ जड़ हैं।"

६५ प्रश्न- मैं कौन हूं?

उत्तर- **निर्विकल्पकमनल्पमक्षरं,**
**यत् क्षराक्षरविलक्षणं परम्।**
नित्यमव्ययसुखं निरञ्जनं,
ब्रह्म तत्वमसि भावयात्मनि॥

**अर्थ**- नाम रूप के विकल्प से रहित, सर्व व्यापक, नाश-रहित, देह और माया से परम विलक्षण, नित्य, अव्यय, सुख-स्वरूप, निर्मल जो पर-ब्रह्म हैं; वो तुम्हीं हो।

६६ प्रश्न- आप कौन हैं?

उत्तर- **सर्वाधारं सर्ववस्तुप्रकाशं,**
**सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम्।**
**नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं,**
**ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि॥**

**अर्थ**- सबका आधार, सब वस्तुओं का प्रकाशक, सबका आकार, सबमें रहने वाला, सबसे शून्य, शुद्ध, निश्चल, विकल्प से रहित, अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ।

६७ प्रश्न- यह सब क्या है?

उत्तर- **सदिदं परमाद्वैतं स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात्।**
**न ह्यन्यदस्ति किञ्चित्सम्यक् परमार्थ-तत्वबोधदशायाम्॥**

**अर्थ**- आत्मतत्व बोध की दशा में ब्रह्म से भिन्न सब वस्तुओं के अभाव होने के बाद अद्वितीय पर-ब्रह्म ही सम्यक दीखता है। ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं दीखता क्योंकि, -जैसे सृष्टि के पहिले नहीं, अन्त में नहीं, तब अबही कैसे होगा? आदि अन्त की तरह "यह सब ब्रह्म ही है"।

६८ प्रश्न- मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर- **पामरो विषयी चैव, जिज्ञासुर्मुक्त एव च।**
**चतुर्विधा नरा लोके, विद्वद्भिः सम्प्रकीर्तिताः॥**

पुरुष चतुर्विध होत जग, पामर विषयी जान।
त्रतिय जिज्ञासु चतुर्थ को, मुक्त सुखद पहिचान॥

**अर्थ**- संसार में ४ प्रकार के पुरुष होते हैं- १ पामर, २ विषयी, ३ जिज्ञासु ४ मुक्त।

६९ प्रश्न- विषयी किसको कहते हैं?

उत्तर- **इन्द्रियार्थेष्वभिरतस्तत्प्राप्त्यै चायुषोव्ययः।**
**अहोरात्रम्प्रकुरुते, विषयी स प्रकीर्तितः॥**

रूप रसादि विषय मद, तिनमें रहे लपटाय।
आयु बिगोवत ताहि में, सो नर विषयी कहाय॥

**अर्थ**- शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये जो पांच इन्द्रियों के विषय हैं इनमें जो मनुष्य रात्रि दिन लिपटा रहता है और इन्हीं की प्राप्ति और सेवन के उद्यम में आयु को खर्चता रहता है वह पुरुष विषयी कहाता है।

(२) **शास्त्रमाश्रित्यविषयान्भुञ्जानः कर्मलौकिकान्।**
**आयुष्मिकांश्चाचरते, विषयी स प्रकीर्तितः॥**

**भावार्थ**- जो पुरुष शास्त्र विहीन विषयों को भोगता हुआ इस लोक के तथा- स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति के लिये कर्म करता है; वह विषयी कहाता है।

७० प्रश्न- पामर किसको कहते हैं।

उत्तर- **पापपुण्ये न जानाति, धर्माधर्मो तथैव च।**
**स नरः पामरो लोके, सच्छास्त्रैः कथितःस्फुटम्॥**

पाप पुन्य जाने नहीं, नहिं धर्माधर्म विचार।
सो नर पामर जगत् में, कहते शास्त्र पुकार॥

**अर्थ**- जो मनुष्य पाप और पुण्य को नहीं जानता तथा धर्म क्या है और अधर्म क्या है इसका विचार जिसमें नहीं है वह मनुष्य पामर है ऐसा शास्त्र पुकार करके कहते हैं।

(२) निषिद्धेष्विहभोगेषु, लौकिकेषु हि ये रताः।
शास्त्रसंस्कार रहिताः, पामरास्ते प्रकीर्तिताः॥

**अर्थ**- जो मनुष्य इस लोक के निषिद्ध भोगों में आशक्त शास्त्रीय संस्कारों से रहित हैं वे पामर कहे जाते हैं।

७१ प्रश्न- जिज्ञासु किसे कहते हैं?

उत्तर- **चतुर्भिःसाधनैर्युक्तः, श्रद्धालुर्गुरुसेवकः।**
**अकुतर्कोह्यात्मरुचिर्जिज्ञासुः सप्रकीर्तिः॥**

विवेकादि् साधन-चतुर, गुरु- सेवक श्रद्धालु।
करे कुतर्क न नेक जो, इष्ट-निष्ट जिज्ञासु॥

**अर्थ**- विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति और मुमुक्षुता; इन चारों साधन सहित हो, ब्रह्म वित्-गुरु और वेदान्त-शास्त्र के वचनों में परमविश्वासी हो, कुतर्क कदाचित् करे नहीं; ऐसा जो- स्वस्वरूप के जानने की तीव्र इच्छा वाला अधिकारी सो उत्तम जिज्ञासु है।

७२ प्रश्न- मुमुक्षु किसको कहते हैं?

उत्तर- **आत्माभधेस्तरङ्गोऽस्म्यहमिति गमने, भावयन्नासनस्थः,**
**संवित्सूत्रानुविद्धोमणिरहमितिवास्मीन्द्रियार्थप्रतीतौ।**
**हृष्टोऽस्म्यात्मावलोकादिति शयन विधौ, मग्न आनन्दसिन्धो-**
**वन्तर्निष्ठो मुमुक्षुः स खलु तनुभृतां, यो नयत्येवमायुः॥**

-(शतश्लोकी १२)

**अर्थ**- जो मनुष्य चलते समय ऐसी भावना करता है कि- "मैं आत्मारूपी समुद्र की ही एक तरंग हूँ" आसन पर स्थित होते समय सोचता है कि- "मैं ज्ञानरूपी धागे में पिरोया हुआ एक मनका हूँ", तथा- इन्द्रियों के विषयों की प्रतीति होने पर; अकस्मात् यह समझने लगता है कि- "अहा! मैं तो आत्मा का ही दर्शन करके आनन्दित हो रहा हूँ" और जब सो जाता है; तो अपने को "आनन्द समुद्र में ही डूबा हुआ" जानता है। देह धारियों में जो पुरुष इस प्रकार अपनी जीवन यात्रा को निर्वाह करता है वह निश्चय ही एक अन्यर्निष्ठ 'मुमुक्षु' है।

७३ प्रश्न- मुक्त किसको कहते हैं?

उत्तर- **अन्तर्बहिः स्वं स्थिरजङ्गमेषु,**
**ज्ञात्वात्मनाधारतया विलोक्य।**
**त्यक्ताऽखिलोपाधिरखण्डरूपः,**
**पूर्णात्मना यः स्थित एव मुक्तः॥**

**अर्थ**- वृक्ष आदि जितने स्थावर जीव हैं और मनुष्य आदि जितने जंगम हैं; उन सब में बाहर और भीतर अपने आत्मा को जान, एवं-सबकी कल्पना का आधार भूत अपने आत्मा को देखकर; सम्पूर्ण उपाधियों को छोड़कर; अखण्ड रूप से परिपूर्ण होकर- जो मनुष्य स्थित है; वही मनुष्य 'मुक्त' कहा जा सकता है।

-(वि. चू. ३३९)

७४ प्रश्न- वाचाल किसको कहते हैं?

उत्तर- **विचारितमलं शास्त्रं, चिरमुदग्राहितं मिथः।**
**संत्यक्त वासनान् मौना दृते नास्त्युत्तमं पदम्॥**

**अर्थात्**- शास्त्र बहुत विचारे, परस्पर में उसका बोध भी भली प्रकार किया- कराया; परन्तु-वासना से अत्यन्त मुक्त ऐसे 'मौन' बिना- उत्तमपद की प्राप्ति कहाँ?

-(यो. वा.)

(२) **वाग्वैखरी शब्दझरी, शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।**
**वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये॥**

**अर्थ**- विद्वानों की शब्द की झड़ी, एवम्-शास्त्र के व्याख्यान की कुशलता; विद्वत्ता मात्र है। यह सब पहिलों की तरह भुक्ति के लिये ही है, मुक्ति का सामान नहीं है।

-(वि. चू. ६०)

७५ प्रश्न- वाचक ज्ञानी किसको कहते हैं?

उत्तर- **सर्वं ब्रह्म वदिष्यन्ति, संप्राप्ते तु कलौयुगे।**
**नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय, शिश्नोदर परायणाः॥**

**अर्थ**- योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि- हे मैत्रेय! कलियुग में सर्व लोग 'ब्रह्म-ब्रह्म' बोलेंगे; परन्तु- उनकी वृत्तियां मैथुन और खानपान

में आसक्त होने से वे ब्रह्मरूप बनने को तो चाहते; परन्तु साधनों के लिए परिश्रम करने के नहीं!

(२) **कुशला ब्रह्मवार्तायां, वृत्तिहीनाः सुरागिणः।**
**तेऽप्यज्ञानितयानूनं, पुनरा यांति यांति च॥**

-(अपरोक्षानुभूति)

**अर्थ**- ब्रह्मज्ञान की बातें करने में कुशल वाचाल परन्तु- उसमें वृत्ति नहीं करके विषयों में राग रखने वाले अज्ञानी पुरुष निश्चय आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं।

(३) **अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम्।**
**राजाहमिति शब्दान्नो, राजा भवितुमर्हति॥**

**अर्थ**- जैसे कि- सब शत्रुओं के नाश किये बिना और अखिल भूमण्डल की श्री को पाये बिना "हम राजा हैं" ऐसा कहने मात्र से कोई राजा नहीं हो सकता। तैसे ही- आत्म तत्व के बिना जाने "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा कहने से ब्रह्म नहीं होता।

-(वि. चू. ६६)

७६ प्रश्न- संसार का पराजय किस प्रकार होता है?

उत्तर- **हरो यद्युपदेष्टा ते, हरिः कमलजोऽपि वा।**
**तथापि न तव स्वास्थ्यं, सर्व विस्मरणादृते॥**

**अर्थ**- हे शिष्य! साक्षात् सदाशिव तथा- विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी ये तीनों महासमर्थ भी तुझे उपदेश करें; तो भी संपूर्ण प्राकृत, अनित्य-वस्तुओं की विस्मृति बिना; तेरा चित्त शान्ति को प्राप्त नहीं होगा, और जीवन्मुक्त दशा का सुख प्राप्त नहीं होगा। जीवन्मुक्ति होने ही से संसार का पराजय हो सकता है।

७७ प्रश्न- इस संसार से आज तक कोई हाथ धो चुका है या नहीं?

उत्तर- तमाराजेवा (आप सरीखे)

**अर्थ**- संसार में जीव प्रायः आत्म विमुख ही देखे जाते हैं, उनमें "विरले ही जीवन्मुक्त ज्ञानवान् होते हैं" सो हे शिष्य! (राम जी!) श्रवण करो, ऐसा कह वशिष्ठ जी कहते हैं- देवता विषे ब्रह्मा,

विष्णु, रुद्र, सदा आत्मानन्द में मग्न हैं। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्मराजा, वरुण, कुबेर, बृहस्पति, शुक्र, नारद, कचते आदि लेकर जीवन्मुक्त पुरुष हैं। सप्तऋषि और दक्षप्रजापति से आदि लेकर जीवन्मुक्त हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार चारों जीवन्मुक्त हैं। अपर भी बहुत मुक्त हैं। सिद्धों में- कपिलमुनि आदिक जीवन्मुक्त हैं। यक्षों में, विद्याधारों में योगिनी में विषे जीवन्मुक्त हैं। और दैत्यों में हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, बलि, विभीषण, इन्द्रजित, सारमेय, चित्रासुर, नमुचि आदिक जीवन्मुक्त हैं। मनुष्य विषे-राजर्षि, ब्रह्मर्षि। नाग विषे शेषनाग, बासुकि आदिक जीवन्मुक्त हैं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक हैं। कोई-कोई विरले जीवन्मुक्त हैं। हे राम जी! जाति-जाति विषे संक्षेप से जीवन्मुक्त हुये हैं; सो कहे हैं और जहां-जहां देखा है; वहां-वहां अज्ञानी बहुत हैं, ज्ञानवान् कोइक विरला दृष्टि आता है। जैसे- जहां-जहां दूसरे वृक्ष बहुत हैं; परन्तुः- कल्पवृक्ष कोई विरला होता है। तैसे ही- संसार विषे अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं; ज्ञानी कोई विरला है। हे रामजी! शूरमा दूसरा कोई नहीं जिसको आत्मपद विषे स्थिति हुई है सोई शूरमें हैं और संसार-समुद्र तरणा तिनही को सुगम है।

-(यो. वा. नि. प्र. २२७)

७८ प्रश्न- सत् शास्त्र क्या है?

उत्तर- **या वेदवाह्याः स्मृतयो, याश्चकाश्च कुदृष्टयः।**
**सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य, तमोनिष्टाहिताःस्मृताः॥**

**अर्थ**- जो वेद-मत से विरुद्ध मत दर्शाने वाली स्मृतियां तथा- कुदृष्टियां (कुविचार) हों; उन सब पुस्तकों को वृथा जानना, क्योंकि- वे अज्ञानरूप अंधकार में ले जाती हैं।

-(मनु १२-९५)

(२) **शास्त्राण्यधीत्य मेधावी, अभ्यस्य च पुनः पुनः।**
**परमं ब्रह्म विज्ञान, उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत्॥**

**अर्थात्**- जिन ग्रन्थों में आत्मा-परमात्मा का विवेक हो, जिसमें स्वस्वरूप की प्राप्ति का मार्ग बताया गया हो वे ही सत्शास्त्र हैं-

धारणा बुद्धि वाले अधिकारी पुरुष को चाहिये कि- स्वात्मकल्याण के लिये ऐसे ही शास्त्रों को पढ़कर और उनका बारंबार अभ्यास करके परब्रह्म को जान लेने के पश्चात्- उल्का अर्थात् जले हुए काष्ठ की तरह उनका त्याग कर दे।

-(पं. द. ४-४५)

७९ प्रश्न- सत्-शास्त्र के अध्ययन करने वाले अधिकारी का लक्षण क्या?

उत्तर- **मेधावी पुरुषो विद्वानूहापोहविचक्षणः।**
**अधिकार्य्यात्म-विद्यायामुक्तलक्षणलक्षितः॥**

**अर्थ**- आत्म-विद्या का अधिकारी वही है; जिसकी बुद्धि धारणा वाली है, तर्क में चतुर है, गुरु के उपदेश में और वेद वेदान्त में विश्वास तथा- बाह्य विषयों में वैराग्ययुक्त और लोभ रहित है। अर्थात्- विषयाभिलाषी लोभी पुरुष आत्मविद्या के कभी अधिकारी नहीं होते।

८० प्रश्न- माया किसे कहते हैं और उसके दूसरे दूसरे नाम क्या हैं?

उत्तर- **अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति-**
**रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।**
**कार्य्यानुमेया सुधियैव माया,**
**यया जगत्सर्व मिदं प्रसूयते॥**

**अर्थ**- ईश्वर की जो 'अव्यकत' नाम की शकित है; उसी को 'माया' कहते हैं। यह 'अनादि' है, इसी को 'अविद्या' कहते हैं। यह 'त्रिगुणात्मिका' यानी- रज, तम, और सत्वमय है। माया का अनुमान कार्य्य से होता है। इसी से सम्पूर्ण दृश्य जगत् उत्पन्न हुआ है।

माया, अविद्या, प्रकृति, शकित, अव्यकत, अव्याकृत, अजा, अज्ञान, तम, तुच्छा, अनिवर्चनीया, सत्या, मूला, तूला और योनि ये सब माया के नाम है।

८१ प्रश्न- अन्वय व्यतिरेक किसे कहते हैं?

उत्तर- **अन्वय-व्यक्तिरेकाभ्यां, पंचकोश-विवेकतः।**
**स्वात्मानं तत उद्धृत्य, परं ब्रह्म प्रपद्यते॥**

**अर्थ**- 'अन्वय' और 'व्यतिरेक' करके पंचकोष के विवेक से इनसे (पंचकोषों से) स्वात्मा का उद्धार कर (अधिकारी जीव) परब्रह्म को प्राप्त होता है।

-(पं. द. ३०)

**"यत्सत्वे यत्सत्वमन्वयः, यदसत्वे यदसत्वं व्यतिरेकः"**

सर्व में अनुवृत्ति होना यह 'अन्वय' और व्यावृति होना यह 'व्यतिरेक' कहाता है। इस अन्वय-व्यतिरेक करके "अन्न मयादिक पंचकोषों से प्रत्यगात्मा भिन्न है", ऐसा जानकर मुमुक्षु-पुरुष अन्नमयादि-कोषों से आत्मा को अलग निकालते हैं। अर्थात्- 'आत्मा इन कोषों से भिन्न है' ऐसा जानते हैं, ऐसा ज्ञान होने के पश्चात् ही; वे सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

८२ प्रश्न- पंचकोष किसे कहते हैं?

उत्तर- **देहादभ्यंतरः प्राणः, प्राणादभ्यंतरं मनः।**
**ततः कर्ता ततो भोक्ता, गुहा सेयं परंपरा॥**

**अर्थ**- देह से (अन्न से) अभ्यन्तर (दुर्ज्ञेय) प्राण, प्राण से अभ्यन्तर मन, उस (मन) से अभ्यन्तर-कर्ता (विज्ञान), विज्ञान से अभ्यन्तर भोकता (आनंद) है वे इस परम्परा गुहा के नाम से कहे जाते हैं। अन्नमय-कोष, प्राणमय-कोष, मनोमय-कोष, विज्ञानमय-कोष, और पांचवा आनन्दमय-कोष है।

८३ प्रश्न- बाबा बनने ही से क्या कल्याण होता है या गृहस्थ भी कल्याण पा सकता है?

उत्तर- **हातुमिच्छति संसारं, रागी दुःखजिहासया।**
**बीतरागो हि निर्मुक्तस्तस्मिन्नपि न खिद्यति॥**

**अर्थ**- जो विषयासकत पुरुष है; वह अत्यन्त दुःख भोगने के अनन्तर दुःखों के दूर होने की इच्छा करके संसार को त्याग करने की इच्छा करता है और जो वैराग्यवान् पुरुष है वह दुःखों से रहित हुआ संसार (गृहस्थी) में रह कर भी खेद को नहीं प्राप्त होता है।

८४ प्रश्न- कल्याण भीख मांग कर खाने से है या कमा कर खाने से?

उत्तर- **अशक्तोभैक्ष्यमादद्या च्छक्तश्च पौरुषं चरेत्।**
**श्रेयस्तु श्रीशभजना च्छ्रीगुरोश्च प्रसादतः॥**

**अर्थ**- असमर्थ भीख मांग कर और समर्थ पुरुषार्थ द्वारा जीवन निर्वाह करे। परन्तु- 'कल्याण' तो भगवद्-भजन और श्रीगुरु की कृपा से ही होता है।

८५ प्रश्न- कर्म करने से कल्याण होता है या उपासना करने या ज्ञान प्राप्त करने से?

उत्तर- **वदन्तु शस्त्राणि यजन्तुदेवान्,**
**कुर्वन्तुकर्माणि भजन्तुदेवताः।**
**आत्मकयबोधेन विनापि मुक्ति-**
**र्न सिद्ध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि॥**

**अर्थ**- भले ही शास्त्रों को पढ़ो-पढ़ाओ, यज्ञ करो-कराओ, देवताओं को पूजो, चाहे और भी अनेकों काम्य-कर्म करो; इस तरह करने से सैकड़ों ब्रह्माओं के बीतने पर भी आत्म-ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती, किन्तु- "आत्म-ज्ञान होने ही से मोक्ष होता है"।

चित्तस्य शुद्धये कर्म, न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण, न किञ्चित्कर्मकोटिभिः॥

**अर्थ**- मोक्षकामी को केवल चित्त शुद्ध होने के लिये ही कर्मों का विधान है, यही उन कर्मों का फल है। और आत्म-साक्षात्कार तो केवल ज्ञान ही से होता है, सिवा इसके करोड़ों कर्मों से भी नहीं हो सकता।

८६ प्रश्न- हनुमान, देवी आदि की उपासना करने का क्या फल है?

उत्तर- **येऽप्यन्यदेवताभक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।**
**तेऽपि मामेव कौन्तेय, यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥**
**यान्ति देवव्रतादेवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।**
**भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपिमाम्।**

**अर्थ**- यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुये जो सकामी भक्त, दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरे को ही पूजते हैं, किन्तु- उनका वह पूजना अविधि-पूर्वक है, अर्थात्- अज्ञान पूर्वक है। कारण, यह नियम है

कि- "देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं" इसलिये मेरे भक्त का पुनर्जन्म नहीं होता।

-(गीता ६-२३-२५)

८७ प्रश्न- हे कृपालो! मुझे कौन कर्तव्य करना योग्य है? समय बहुत अल्प रह गया है, प्रश्न करते करते मुँह का थूक सूख गया है, आप कृपा करके ऐसी सरल रीति से कहिये जो मेरी बुद्धि में अनायास ठस जाय।

उत्तर- **पश्य भूतविकारांस्त्वं, भूतमात्रान्यथार्थतः।**
**तत्क्षणाद्बन्धनिर्मुक्तः, स्वरूपस्थोभविष्यसि॥**

**अर्थ-** हे शिष्य! भूत विकार; अर्थात- देह, इन्द्रिय आदि को वास्तव में- 'जड़' जो पंच महाभूत; उनका 'विकार' जान, आत्मस्वरूप मत जान। यदि 'गुरु', श्रुति और 'अनुभव' से ऐसा निश्चय कर लेगा! तो तत्काल ही संसार बन्धन से मुक्त होकर शरीर आदि से विलक्षण जो आत्मा; उस आत्मस्वरूप के विषे स्थिति को प्राप्त होगा। क्योंकि- शरीर आदि के विषे आत्मभिन्न 'जड़त्व' आदि का ज्ञान होने पर; इन शरीर आदि का 'साक्षी' जो 'आत्मा' सो शीघ्र ही जाना जाता है।

८८ प्रश्न- पंच ज्ञानेन्द्रिय किसको कहते हैं?

उत्तर- **बुद्धीन्द्रियाणिश्रवणं त्वगक्षि,**
**घ्राणं च जिह्वा विषयावबोधनात्।**

**अर्थ-** श्रोत्र, त्वग्, अक्षि, जिह्वा, घ्राण ये पांच इन्द्रियां शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध इन पांचों विषयों के अवबोध कराने वाली होने के कारण ज्ञानेन्द्रिय कहाती हैं।

८९ प्रश्न- पंच कर्मेन्द्रिय किसको कहते हैं?

उत्तर- **वाकपाणि पादा गुदमप्युपस्थः,**
**कर्म्मेन्द्रियाणि प्रवणेन कर्मसु॥**

**अर्थ-** वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ इन पांचों को, वचन, आहरण, गमन, विसर्ग, आनन्द आदि कर्मों में प्रवृत्त होने के

कारण- कर्मेन्द्रिय कहते हैं।

९० प्रश्न- अन्त:करण किसको कहते हैं?

उत्तर- निगद्यतेऽन्त:करणं मनोधीरहं-
कृतिश्चित्तमितिश्ववृत्तिभि:।
मनस्तु संकल्पविकल्पनादिभि-
र्बुद्धि: पदार्थाध्यवसायधर्मत:॥
अत्राभिमानादहमित्यहंकृति:,
स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम्॥

अर्थ- अन्त:करण के वृत्ति भेद से मन, बुद्धि, अहंकार चित्त ये चार भेद होते हैं। संकल्प विकल्प करना; मन की वृत्ति हैं।' पदार्थों का निश्चय करना; 'बुद्धि का धर्म है।' अभिमान होना; यह 'अहंकार का धर्म है।' विषयों पर अनुधावन करना; यानी-जाना; 'चित्त का धर्म है।'

९१ प्रश्न- इनके देवं, कार्य और उत्पत्ति स्थान क्या है?

उत्तर- **बुद्धिश्चास्य विनिर्भिन्नां, वागीशोधिष्ण्यमाविशत्**
**बोधेनांशेनबोद्धव्यं, प्रतिपत्तिर्यतोभवेत्॥१॥**
**हृदयश्चास्य निर्भिन्नं, चन्द्रमाधिष्ण्य माविशत्।**
**मनसांशेनयेनासौ, विक्रियां प्रतिपद्यते॥२॥**
**आत्मानं चास्य निर्भिन्नंमभिमानोऽपिशन्पदम्।**
**कर्मणाशेन येनासौ, कर्तव्य प्रतिपद्यते॥३॥**
**सत्वं चास्य विनिर्भिन्नं, महाधिष्ण्यमुपाविशत्।**
**चित्तेनांशेन येनासौ, विज्ञानं प्रतिपद्यते॥४॥**

-(भा.स्क. ३ अ. ६ श्लो. २३, २४, २५, २६)

**१ बुद्धि**- धारे हुये काम का निश्चय करना यह बुद्धि इसके देवता ब्रह्मा।

**२ मन**- जो काम करने का स्फुरण हुआ है, वह काम निश्चय करके करना अथवा नहीं करना, ऐसा जो संकल्प विकल्प होता है वह मन इसके देवता चन्द्रमा।

**३ अहंकार**- यह काम मैं करूंगा ऐसा जो अभिमान वह अहंकार

इसके देवता रुद्र।

**४ चित्त**- किसी कांम को कैसे करें तो अच्छा होवे ऐसा जो चिन्तन करता है चित्त इसके देवता नारायण।

९२ प्रश्न- पंच प्राण किसको कहते हैं?

उत्तर- **प्राणापान व्यानोदान-समाना भवत्यसौ प्राणः।**
**स्वयमेव वृत्तिभेदाद्विकृतिभेदात्सुवर्ण सलिलवत्॥**

**अर्थ**- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, इन पाँच भेदों से पाँच प्रकार का होता है। यद्यपि- प्राण रूप एक ही है; तथापि- हृदय, गुदा, नाभि, कंठ, सर्व देह इन स्थानों पर रहने रूप वृत्तिभेद होने से पांच भेद हो जाते हैं। जैसे कि- विकार के भेद से सुवर्ण-कटक, कुंडल आदि अनेक संज्ञाओं को प्राप्त होता है- जैसे कि- एक ही पानी भिन्न भिन्न स्थलों के संयोग से कड़ुआ, मीठा हो जाता है।

९३ प्रश्न- 'पंच उपप्राण' किसको कहते हैं?

उत्तर- **नागः कूर्मोऽथ कृकलो, देवदत्तो धनञ्जयः॥**

**अर्थ**- नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय यह पांच उपप्राण है।

'नाग' से उद्गार- (ओड़कार) होता है।

'कूर्म' से आँख मिचती है और खुलती है।

'कृकल' से छींक होती है।

'देवदत्त' से बगासी आती है।

'धनंजय'- वायु सारे शरीर में रहकर शरीर को पुष्ट करता है।

९४- प्रश्न- पंच महाभृत किसको कहते हैं?

उत्तर- **ब्रह्माश्रया सत्वरजस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति**
**तत् आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायो-**
**स्तेजः। तेजस आपः। अद्भ्यः पृथिवी।**

**अर्थ**- ब्रह्म के आश्रय से ही सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण रूप 'माया' है इससे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु- से तेज, तेज से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई है; यह पंचभूत कहाते हैं। तथा

तमः प्रधानप्रकृतेस्तद्भोगायेश्वराज्ञया।
वियत्पवनतेजोऽम्बुभुवो भूतानि जज्ञिरे॥

**अर्थ**- तमप्रधाना प्रकृति से उसी के भोग के लिये ईश्वराज्ञा से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये पंचभूत उत्पन्न हुये हैं।

९५- प्रश्न- सत्रह तत्व किसको कहते हैं?

उत्तर- **बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राण-पंचैकैर्मनसा धिया।**
**शरीरं सप्तदशभिः, सूक्ष्मं तल्लिंगमुच्यते॥**

**अर्थ**- अपंचीकृत पंचमहाभूत के सत्तरह तत्व का सूक्ष्म देह है। पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन और बुद्धि ये सत्रह तत्व हैं। यह लिंग शरीर कहाता है।

-(पंच दशी)

९६ प्रश्न- पच्चीस तत्व और उनके कार्य क्या हैं?

उत्तर- **तद्भोगाय पुनर्भोग्य-भोगाय तनुजन्मने।**
**पंचीकरोति भगवान्, प्रत्येकं वियदादिकम्॥**
**द्विधा विधाय चैकेकं, चतुर्धा प्रथमं पुनः।**
**स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पंच पंच ते॥**

**अर्थ**- पंचीकृत पंच महाभूत के पच्चीस तत्व का स्थूल देह है। १ आकाश, २ वायु, ३ तेज, ४ जल और ५ पृथ्वी ये पंच महाभूत हैं। पंच महाभूत के २५ तत्व नीचे लिखे अनुसार हैं।

१ आकाश के पांच तत्व- काम, क्रोध, शोक, मोह और भय।
२ तेज के पांच तत्व- क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा और कान्ति।
३ वायु के पांच तत्व- चलन, बलन, धाबन, प्रसारण और आकुंचन।
४ जल के पांच तत्व- वीर्य, रुधिर, लाल, मूत्र और पसीना।
५ पृथ्वी के पांच तत्व- हाड़, मांस, नाड़ी, त्वचा और रोम।

-(पं. द.)

९७ प्रश्न- मल की निवृत्ति किस करके होती है?

उत्तर- **उद्दिष्टमिन्द्रियाणां हि, सत्यसम्भाषणादिकम्।**
**कर्मकाण्डमथैतेन, मलदोषो निवार्यते॥**

**यज्ञोदानं जपो होमः, सन्ध्यादि देहसत्क्रियाः।**
**कर्मकाण्डमिदंज्ञेयं, पावनं मलनाशनम्॥**

**भावार्थ**- मल नाम पाप का है। मल दोष के दूर करने वास्ते सर्व शास्त्रों में 'सत् संभाषण' आदि वाक्यादि इन्द्रियों का कर्तव्यरूप कर्मकाण्ड लिखा है।

यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, जप, तप, होम, तड़ाग आदि बनाने तथा संध्या तर्पणादिक यावन्मात्र शारीरिक शुभ क्रिया हैं; सो सर्व कर्मकांड कोटि में हैं।

९८ प्रश्न- विक्षेप निवृत्ति काहे से होती है?

उत्तर- **उपासना बहुविधा-ध्यानयोगादिकाक्रियाः।**
**जिज्ञासुभिरनुष्ठेया-विक्षेपस्य निवृत्तये॥**

**भावार्थ**- विक्षेप (मन की चंचलता के) दूर करने के वास्ते, अनेक प्रकार की सगुण वा-निर्गुण सच्चिदानन्दरूप परमेश्वर की प्राप्ति के वास्ते सर्व शास्त्रों में उपासना लिखी है। वा, चित्त का किसी सूक्ष्म, वा- स्थूल वा त्रिपुटी में वा हृदय विषे ज्योति इत्यादि वस्तु में, बाहर वा अंतर जोड़ना रूपी ध्यान लिखा है- ध्यान योगादि यावन्मात्र मानसी क्रिया है; सो उपासनाकांड कोटि में हैं।

९९ प्रश्न- आवरण की निवृत्ति क्या करने से होती है?

उत्तर- **एकमेवमतं ज्ञानं, तदावरणछित्तये।**

**अर्थ**- अज्ञान-आवरण की निवृत्ति वास्ते सर्व शास्त्रों विषे ज्ञान कांड ही लिखा है। जिस अन्तःकरण में पूर्व जन्म के प्रयत्न से वा इस जन्म के प्रयत्न से पूर्वोक्त दोष नहीं; तिस पर शास्त्र का उपदेश भी नहीं, जिसमें मल विक्षेप दो दोष नहीं केवल अपने स्वरूप का न जानना- रूपी आवरण ही दोष है; तिसको केवल ज्ञानकांड का ही अधिकार है।

-केवल आत्मा को ब्रह्म रूप कथन करने वाले शास्त्र ज्ञानकांड हैं। ऐसे शास्त्रों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना कर्त्तव्य है।

१०० प्रश्न- तत्वं पदार्थ- शोधन क्या है?

उत्तर- **तत्वंपदाभ्यामनधीयमानयो--**
**र्ब्रह्मात्मनोः शोधितयोर्यदीत्थम्।**
**श्रुत्वा तयोस्तत्वमसीति सम्य-**
**गेकत्वमेव प्रतिपाद्यते मुहुः॥**

**अर्थात्**- "जीव ब्रह्म की एकता" तथा 'तत्वमसि' का विवेचन- छान्दोग्य छठे प्रपाठक में आठवें खण्ड से लेकर सोलहवें खण्ड तक ९ जगह 'तत्वमसि' यह आया है। इस वाक्य को वेदोपनिषदों के चार महावाक्यों में सर्वप्रधान मानकर रखा है। इन श्लोकों में श्री शंकराचार्यजी भी इसे- कहते हैं। इसमें तीन पद हैं एक 'तत्' दूसरा 'त्वम्' और तीसरा 'असि'। तत्- जो तामसी- 'माया' को उपाधिरूप से स्वीकार करके निमित्त कारण बना है, यह तत् पद का अर्थ है। त्वम्- "काम कर्म आदि से दूषित, मलिन- सत्व वाली 'अविद्या' को उपाधिरूप से स्वीकार करने वाला ब्रह्म" यह इस 'त्वम्' पद का अर्थ है। असि- "दोनों की एकता का ग्रहण कराने वाला है," क्योंकि- बिना एकता के त्वम् पद वाच्य जीव; तत् पद वाच्य ब्रह्म; नहीं बन सकता। इस कारण इन दोनों की एकता होनी अवश्य है; वो बिना 'भाग त्याग लक्षणा' के नहीं हो सकती।

यानी-'तामसी' 'शुद्ध-सत्वा' और 'मलिन-सत्वा' इन तीनों प्रकारों की माया के त्याग कर देने पर दोनों ही एक हैं। दोनों का एक ही स्वरूप है। अर्थात्- 'परब्रह्म' और 'जीव' दोनों की माया और अविद्यारूप उपाधि को छोड़ने पर अखण्ड, सच्चिदानन्द ही लक्षित होता है। जैसे वो सृष्टि से पहिले पीछे एक दीखता है; उसी तरह सृष्टि दशा में भी वो एक है। अतः जीव और ब्रह्म दोनों एक हैं। ऐसा विचार करते रहने का नाम तत्व शोधन है।

श्लोकार्थ- तत् और त्वम् पदसे वाच्य रूप से नहीं कहे गये जो शोधित जीव और परमेश्वर हैं; उन दोनों का अभी दिखाई गई रीति के अनुसार भाग त्याग लक्षणा से 'तत्वमसि' इस श्रुति से भली भांति बारम्बार एकत्व प्रतिपादन किया गया है।

१०१ प्रश्न- महावाक्य की प्राप्ति का अधिकार किस प्रकार प्राप्त होता है? और उसकी प्राप्ति से क्या होता है?

उत्तर- **विवेकिनोविरक्तस्य, शमादिगुणाशालिनः।**
**मुमुक्षोरेव हि ब्रह्म-जिज्ञासा योग्यता मता॥**

**अर्थ**- आत्म-अनात्म के विचार करने वाले विरक्त, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा इन छः गुणों से संयुक्त और मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष को ही; ब्रह्म जानने की इच्छा से विचार करने की योग्यता होती है, या ऐसा ही पुरुष ब्रह्म की उपासना कर सकता है।

(२) **साधनान्यत्र चत्वारि, कथितानि मनीषिभिः।**
**येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा, यद्भावे न सिध्यति॥**

**अर्थ**- बुद्धिमान पुरुषों ने ब्रह्म-जिज्ञासा में चार साधन बताये हैं उन साधनों के होने पर ब्रह्म-निष्ठ हो सकता है, उसके बिना ब्रह्म-जिज्ञासा नहीं हो सकती, साधन सम्पन्न पुरुष को ही महावाक्य की प्राप्ति का अधिकार प्राप्त होता है और महावाक्य की प्राप्ति से अपरोक्ष ज्ञान होता है जो मोक्ष का कारण है।

(३) **आत्मानं सततं ब्रह्म, संभाव्य विहरेत्सुखम्।**
**संसारे गतसारे यस्तस्य दुखं न जायते॥**

**अर्थ**- जो पुरुष आत्मा को निरन्तर ब्रह्मरूप निश्चय करके; सुखपूर्वक विचरता है, उसे असार-संसार में दुःख उत्पन्न होता नहीं।

१०२ प्रश्न- श्रवण मनन निदिध्यासन क्या है?

उत्तर- **श्रुते शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि।**
**निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम्॥**

**अर्थ**- सब कर्मों को त्याग करके गुरु-मुख से 'आत्मवस्तु का श्रवण' करना अत्यन्त उत्तम है। श्रवण से भी सौगुना अधिक मनन, अर्थात्- गुरु-मुख से सुनकर 'अपने मन में विचार करना' उत्तम है। मनन से भी लाखगुना निदिध्यासन, अर्थात्- आत्म-वस्तु का विचार करके सदा चित्त में स्थिर करना उत्तम है। निदिध्यासन से भी अनन्तगुण 'निर्विकल्पक' उत्तम है।

(२) निर्विकल्प समाधिना स्फुटं, ब्रह्मतत्वमवगम्यतेध्रुवम्।
नान्यथा चलतया मनोगते, प्रत्ययान्तरविमिश्रतंभवेत्।।

**अर्थ**- निर्विकल्प समाधि सिद्ध होने से निश्चय ही ब्रह्मतत्व का 'स्पष्ट-बोध होता है। जब तक निर्विल्प न हो, तब तक मन की गति के चंचल होने से बाह्य-वस्तुओं की प्रतीति से मिला हुआ ही आत्मतत्व रहेगा।

१०३ प्रश्न- योगाभ्यास क्या है? और उससे क्या प्राप्त होता है?

उत्तर- **श्रद्धाभक्तिज्ञानयोगान्मुमुक्षो-**
**र्मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः।**
**यो वा एतेष्ववतिष्ठत्यमुष्य,**
**मोक्षोऽविद्याकल्पितादेहवन्धात्।।**

**अर्थ**- (श्रुति के कहे हुए मोक्ष के चार कारण)- मोक्ष के विषय में साक्षात् श्रुति कंहती है कि, श्रद्धा, भकित ज्ञान और 'योग' ये सब मोक्ष के कारण हैं। जो मनुष्य इन सब का अनुष्ठान करता हैं; वह अज्ञान कल्पित देह-बन्धन से मुकत होकर 'मोक्ष पद' को पा जाता है।

-(वि. चू. ४८)

(२) **सर्वात्म सिद्धये भिक्षोः, कृतश्रवणकर्मणः।**
**समाधिं विदधात्येषा, शान्तो दान्त इतिश्रुतिः।।**

(समाधि में श्रुति प्रमाण)- श्रोत्रिय, ब्रह्म-निष्ठ गुरु से आत्म अनात्म के विवेक आदि के श्रवण किये हुए के लिये- सर्वात्म सिद्धि के लिये- श्रुति कहती है कि, "एवं विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽआत्मन्येवात्मानं पश्यति" शास्त्र का श्रवण किया हुआ, इन्द्रिय और अन्तःकरण की वृयियों को रोके हुये, विरकत और तितिक्षा से युकत हो निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर इसी शरीर में अपने आत्मा को देख देता है तथा सबको अपना आत्मा देखता है।

(३) **आरूढ़-शक्तेरहमो विनाशः,**
**कर्तुं न शक्यः सहसापि पण्डितैः।**
**ये निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चला-**
**स्तानन्तरानन्तभवा हि वासनाः॥**

अहंकार की पूर्वोक्त शक्ति जब तक बढ़ी रहती है; तब तक उसका बलपूर्वक नाश करने में कोई भी पण्डित नहीं समर्थ हो सकते। जो विद्वान् 'निर्विकल्प समाधि' से चित्त को स्थिर करते हैं; उन्हें किसी जन्म की भी अनन्तानन्त वासनाएं आत्मलाभ होने में प्रतिबन्धक नहीं होतीं।

(निर्विकल्प समाधि, तथा- उसका उपयोग)

'समाधि' सम, आङ्, उपसर्गपूर्वक 'धा' (धातु) से 'कि' प्रत्यय होकर 'समाधि' शब्द बनता है, जिसका अर्थ- 'योग' है। इसका विधान 'श्वेताश्वर उपनिषद् के द्वितीयाध्याय में विस्तार के साथ आता है, जिसमें कि- कई एक यजुर्वेद के मंत्र दिये हुये हैं। 'अमृतनादोपनिषद्' में इसका विधान विस्तार के साथ मिलता है। तथा-'ध्यानबिन्दु' आदि कई उपनिषदों में इसका विधान है। वेदांत पंचदशीकार ने १-५५ में कहा है कि 'निदिध्यासन की परिपाक दशा ही समाधि है"। निदिध्यासन में ध्याता, ध्यान और ध्येय ये तीन पदार्थ रहते हैं। जब चित्त अभ्यास के बलसे ध्याता और ध्यान इन दोनों को छोड़कर केवल एक 'ध्येय' को ही अपना अखण्ड विषय बनाये रहता है, इस प्रकार की उसकी धारा बनी रहती है, जैसे कि, 'हवा में तेल की अखण्डधार' बनी रहती है। इसके प्रतिपादन करने वाला योगशास्त्र अलग ही है।

(४) **समाहृता ये प्रविलाप्य वाह्यं,**
**श्रोत्रादिचेतः स्वमहं चिदात्मनि।**
**त एव मुक्ता भवपाशबन्धै-**
**र्नान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधायिनः॥**

**अर्थ**- जो मनुष्य चित्त वृत्ति का निरोध करके बाह्य वस्तुओं की ओर गये श्रोत्र आदि इन्द्रियों और चित्त को चैतन्य, आत्मा में लय

कर देते हैं; वे ही मनुष्य संसार रूप-पाश से मुक्त होते हैं। दूसरे केवल परोक्ष ब्रह्म की कथा के अभिधान करने वाले कभी मुक्त नहीं होते।

(५) **क्रियान्तराऽऽशक्तिमपास्य कीटको,**
**ध्यायन्नलित्वंह्यलिभावमृच्छति।**
**तथैव योगी परमात्मतत्त्वं,**
**ध्यात्वा समायाति तदैकनिष्ठया॥**

*अर्थ*- जैसे दूसरी क्रियाओं की आसक्ति छोड़कर केवल भ्रमर का ध्यान करने से कीड़ा भ्रमर के रूप को प्राप्त हो जाता है; तैसे ही एकचित्त करके केवल परमात्मतत्व का ध्यान करने से योगी ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

-(विवेकचूड़ामणि)

१०४ प्रश्न- ब्रह्मविद्या के पढ़ने से क्या होता है?

उत्तर- वेदान्तार्थविचारेण, जायते ज्ञानमुत्तमम्।
तेनात्यन्तिकसंसार-दु:खनाशोभवत्यनु॥

**अर्थ**- वेदान्त-शास्त्र का अर्थ विचार करने से; उत्तम आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। इसी ज्ञान से दु:ख, सदा के लिये नष्ट होता है, यही एक दु:ख नाश होने का परम उपाय है।

-(वि. चू. ४०)

१०५ प्रश्न- जीव ब्रह्म के एकत्व के दृढ़ निश्चय करने का क्या फल है?

उत्तर- अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद, परोक्षज्ञानमेवतत्।
अहं ब्रह्मेति चेद्वेद, साक्षात्कार: स उच्यते॥

**अर्थ**-ब्रह्मज्ञान (अर्थात् ब्रह्म का एकत्व बोध) 'परोक्ष' और 'अपरोक्ष' भेद से दो प्रकार का है। 'सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म है' ऐसा जानना 'परोक्ष ब्रह्मज्ञान है'। इससे असत्वा पादक? आवरण की निवृत्ति होती है। परोक्षज्ञान-गुरु और शास्त्र (वेदान्त) के अनुसार ब्रह्मस्वरूप के निर्धार करने से पूर्ण होता है।

'सच्चदानन्दरूप ब्रह्म मैं हूं', ऐसा जानना 'अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान है'। यह ज्ञान गुरुमुख से 'तत्वमसि' आदिक महावाक्य के श्रवण से

होता है। यह अपरोक्ष-ब्रह्मज्ञान 'अदृढ़' और 'दृढ़' इस भेद से दो प्रकार का है।

असम्भावना और विपरीत भावना सहित जो होवे सो- "अदृढ़ अपरोक्ष ब्रहज्ञान है।" इस ज्ञान से उत्तम लोक की प्राप्ति और पवित्र श्रीमान् कुल में अथवा ज्ञानी पुरुष के कुल में जन्म होता है। असम्भावना और विपरीत भावना से रहित जो होवे सो 'दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान' यह ज्ञान गुरुमुख से महावाक्य- (जीव-ब्रह्म की एकता के बोधक वाक्य)के अर्थ का श्रवण, मनन और निदिध्यासन रूप विचार के किये से होता है। इस ज्ञान से अभाना पादक २ आवरण और विक्षेप रूप कार्य सहित 'अविद्या' की निवृत्ति होय कर, ब्रह्म की प्राप्ति रूप 'मोक्ष' होवे हैं। देह विषे अहं पने के ज्ञान की न्याईं इस ज्ञान का बाध करके ब्रह्म से अभिन्न-आत्मा-विषे जब ज्ञान होवे; तब दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान पूर्ण होता है।

१०६ प्रश्न- विचार क्या है? कैसे होता है? और उसके किये का फल क्या?

उत्तर- आत्मा और अनात्मा को भिन्न करके जानना, विचार है। यह विचार ईश्वर, वेद, गुरु और अपना अन्तःकरण इन चारों की कृपा से होता है। इस विचार से दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान होता है।

"मैं कौन हूं, ब्रह्म कौन है, और प्रपंच क्या है?" -इन तीन वस्तु की वास्तविकता जानने का नाम विचार है।

१०७ प्रश्न- कुछ मेहनत करना न पड़े और झट 'ब्रह्मज्ञान' हो जावे; ऐसी कौन सी युकित है?

उत्तर- अनेनैव प्रकारेण बुद्धि भेदो न सर्वगः।
दाता च धीरतामेति गीयते नाम कोटिभिः॥

उत्तर- इसके लिये तो बस एक ही मार्ग है और वह है-
'गुरुकृपाहि केवलं' अर्थात्- 'केवल गुरु कृपा'

क्योंकि- भगवान् दत्तात्रेय महाराज ने भी स्वामी कार्तिकेय को यही आज्ञा की है कि-

**गुरुप्रज्ञाप्रसादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः।**
**यस्तु संबुध्यते तत्वं, विरक्तो भवसागरात्॥**

सार यही कि "मूर्ख हो; वा-पण्डित जिस पर श्री गुरु-महाराज कृपा कर दें उसका बेड़ा पार ही है"।

१०८ प्रश्न- 'ब्रह्म विचार' करने का क्या फल है?

उत्तर- **स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्तापि सर्वावनि-**
**र्यज्ञानाञ्च कृतं सहस्तमखिला देवाश्च संपूजिताः।**
**संसाराच्च समुद्धृताः स्वपतिरस्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ**
**यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्य मनः प्राप्नुयात्॥**

अर्थ- ब्रह्म विचार के विषे जिस पुरुष का मन क्षणमात्र भी स्थिरता को प्राप्त होता है; तो उस पुरुष ने 'गंगादि समस्त तीर्थ के जल में स्नान किया' ऐसा जानना। और 'समग्र पृथ्वी का दान किया' तथा- 'हजारों यज्ञ किये' और 'जितने देवता हैं उन सबों की पूजा करी' तथा- "अपने समस्त पुरखाओं का उद्धार किया", ऐसा जानना, और वह "स्वयं भी त्रैलोकय में पूज्य होता है।"

◆ हरिः ॐ तत्सत् ◆

॥ श्री सद्गुरुदेवार्पणमस्तु ॥

# प्रार्थना

ॐ

ॐ विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखो-
विश्वतोवाहुरुत विश्वतस्पात्।
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥१॥

॥ ॐ ॥

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये,
सहस्रपादाक्षिशिवरोरुवाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते,
सहस्रकोटीयुगधारिणेनमः॥२॥

॥ ॐ ॥

सत्यं मानविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं,
व्याप्तं-स्थावरजङ्गमं मुनिवरैर्ध्यातं निरुद्धेन्द्रियै।
अर्काग्नीन्दुमयं शताक्षरवपुस्तारात्मकं सन्ततं,
नित्यानन्दगुणालयं गुणपरं वन्दामहे तन्महः॥३॥

॥ ॐ ॥

# श्री सद्गुरुदेव की आरती

(१)

ॐ भज शिव गुप्तानन्दे, ॐ हर शिव गुप्तानन्दे।
(नित्यानन्दे)

जो कोई भजन करे मनलाके, कटिजाय यमफन्दे।
ॐभज शिव गुप्तानन्दे, ॐहर शिव नित्यानन्दे ॥ टेक॥
आरत जन की सुनो आरती, हे किरपासिन्धे।
मोह जाल की फांसी मांही, जीव फिरे बन्धे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ १॥
सभी कहो समझाय कौन मैं, को यह जग बन्धे।
अब करो अविद्या-नाश, तभी हम होवें आनन्दे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ २॥
को ईश्वर को जीव, कौन रहता तिनके सन्धे।
क्या माया का रूप, कहो अब सत चित आनन्दे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ ३॥
आरति कैसे करूं तुम्हारी, तुम व्यापक जिन्दे।
तो कोई तुमरी करे आरती, वह बुद्धि के अन्धे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ ४॥

**(आरती का उत्तर)**

'मैं' 'मेरा' यहि मोह हुआ, अर्जुन को रण मध्ये।
उड़ा, ज्ञान-गीता का, सुन लख समधानी सन्धे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ ५॥
तुह चेतन भरपूर, दृश्य मन जगत जाल बन्धे।
जब होय अविद्यानाश खिलें तब विद्या के चन्दे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ ६॥

करै शुभाशुभ कर्म, भोगता फल सुख-दुख द्वन्दे।
शिव को कहते जीव, शीव कछु करे नहीं धन्दे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ ७॥
'तत्वं' पद में 'असि' जो चेतन, दोनों का सन्धे।
त्रिगुणात्मक मिथ्या माया, गुप्तातम सत चित आनन्दे॥
ॐभज शिव. ॥ ॐहर शिव. ॥ ८॥

**दोहा**

पढ़े जो अष्टक आरती, सांझ समय चित लाय।
कोई काल अभ्यास ते, समुझे सहज सुभाय॥ ९॥

**(२)**

वन्दे गुरुदेवं।
ॐ वन्दे गुरुदेवं, बोधमयं गुरुदेवं;
बोधमयं गुरुदेवं, श्री नित्यानन्दम्॥
ॐ जय जय गुरुदेव।टेक॥
विद्वद्वृन्द-विवन्द्य-सुवन्दित-मब्जपदद्वन्द्वम्;
ओमब्ज पदद्वन्द्वम्॥ स्वच्छन्दं, निर्द्वन्द्वम्;
स्वच्छन्दं, निर्द्वन्द्वं द्वैताद्वैतपरम्,
ॐ जय जय जय गुरुदेव।वन्दे.॥ १॥
अद्वय-ममित-ममेय-मनादिं, ननु जगतामादिम्;
ॐ ननु जगतामादिम्॥ सर्वाद्यन्त विहीनं,
सर्वाद्यन्तविहीनं, पीनं प्रभवादिम्॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ वन्दे ॥ २॥
दान्तं मृदुमनिकेतमगेयं, कामैरहतधियम;
ॐ कामैरहतधियं॥ करुणासागरमाकर,
करुणासागरमाकर, -मगदस्याप्यभियम्॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ वन्दे ॥ ३॥
आशापाशविमुक्तं विमलं वासनया रहितम्;

ॐ वासनया रहितम्। धूल्या धूसरगात्रम्;
धूल्या धूसरगात्रं, विमतैरवधूतम्॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ वन्दे ॥ ४॥
(एक गुरु भक्त)

## सद्गुरुदेव अवधूत महाप्रभु

श्री १०८ श्रीनित्यानन्द जी महाराज की
आरती

(३)

ओं विमलं गुरुदेवं।
ॐ विमलं गुरुदेवं, अखिल सच्चिदानन्दं;
अखिल सच्चिदानन्दं, श्री नित्यानन्दम्॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ टेक॥
ॐ सत्य त्रिकालाबाध, चित्त अलुप्त प्रकाशं:
ओं चित्त अलुप्त प्रकाशं। आनंदघन निज आतम;
ओं आनंदघन निजआतम, श्री नित्यानन्दम्॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ १॥
ओं अखण्ड एकरस आप, निकट नहीं दूरं;
ओं निकट नहीं दूरं। रूप चराचर विभुवर,
ओं रूप चराचर विभुवर, श्री नित्यानन्दम्॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ २॥
ओं गुरु-दर्शन-गुरु-भक्त, अनायास करता;
ओं अनायास करता। जय विश्वनाथ अविनाशी,
ओं जय विश्वनाथ अविनाशी, श्री नित्यानन्दम्॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ ३॥
ओं त्रिलोकी के नाथ, गुरु कूटस्थ स्वामी;
ओं गुरु कूटस्थ स्वामी। गुणतीत चेतन अज;
ओं गुणातीत चेतन अज, श्री नित्यानन्दम्॥

ओं जय जय जय गुरुदेव॥ ४॥

**दोहा**

चार वेद सन्तत करे, श्री गुरु का गुणगान
अधिष्ठान द्रष्टा अचल, नर नारायण जान॥

(४)

ओं अचलं गुरुदेवं।
ओं अचलं गुरुदेवं, गुप्त प्रगट परिपूरण।
गुप्त प्रगट परिपूरण, श्री नित्यानन्द॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ टेक ॥
ओं मुनि वसिष्ठ सनकादिक, याज्ञवलक आदि,
ओं याज्ञवलक आदि, श्रेयपद लख निज गूढ़।
ओं श्रेयपद लख निज गूढ़, शिरोमणि हुये ज्ञानी॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ १॥
ओं गुरु से बढ़कर शिष्य, नहिं कोई जगमाहीं,
ओं नहिं कोई जगमाहीं। गुरु बिन मोक्ष न होय,
ओं गुरु बिन मोक्ष न होय, निगमागम गाई॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ २॥
ओं गुरु कीरति अप्रोक्ष, मुमुक्षुजन करता,
ओं मुमुक्षुजन करता। नुगरा कुतृक करके,
ओं नुगरा कुतृक करके, शून्य मोक्षते होता॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ ३॥
ओं गुरु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ, लक्षण श्रुति कहती;
ओं लक्षण श्रुति कहती। अभयदान के दाता,
ओं अभयदान के दाता, गुरु सम नहिं कोई॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ ४॥

(५)

## ओं केवल गुरुदेवं।

ओं केवल गुरुदेवं, भवसागर से कर ग्रहि।
भवसागर से कर ग्रहि, करे परलो पारं॥
ओं जय जय जय गुरुदेव।टेक॥

ओं गुरु गुरु में शिष भेद, अल्पमति तोरी;
ओं अल्प मति तोरी। चारों वर्ण समान;
ओं चारों वर्ण समान, सम पर उपकारी॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ १॥

ओं वेद व्यास खुद आप, गुण गुरु का गावे,
ओं गुण गुरु का गावे। ब्रह्म-विद्या ब्रह्म-ज्ञान,
ओं ब्रह्म-विद्या ब्रह्म-ज्ञान, गुरु बिन नहिं आवे॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ २॥

ओं विषय दृष्टि होय अङ्ग, शून्य गुरु गुरु पद से,
ओं शून्य गुरु गुरु पद से। दम्भि सकामी जान,
ओं दम्भि सकामी जान, तजकर दृढ़ सत्-संग,
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ ३॥

ओं गुरु देवन के देव, हैं राजनपति राजा,
ओं हैं राजन पति राजा। अधिकारी जनों बोध,
ओं अधिकारी जनों बोध, खरो निज मति धारो॥
ओं जय जय जय गुरुदेव॥ ४ ॥

॥ ॐ ॥

## अथ सद्गुरुदेव स्तुति।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्मा, तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ १॥
अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदंदर्शितो (तं) येन, तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ २॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन: तस्मै श्रीगुरवेनम:॥ ३॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं, केवलं ज्ञानमूर्तिम्।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं, तत्वमस्यादिलक्ष्यम्॥
एकं नित्यं विमलमचलं, सर्वधीसाक्षिभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं, सद्‌गुरुत्वां नमामि॥ ४॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति:, पूजामूलं गुरो: पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरो: कृपा॥ ५॥
नित्यशुद्धं निराभासं, निराकारं निरञ्जनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं, तस्मै श्री गुरवेनम:॥ ६॥
ॐ अवधूत सदानन्द, परब्रह्मस्वरूपिणे।
विदेहदेहरूपाय, श्रीनित्यानन्द ननोऽस्तुते॥ ७॥
(गुरुचरण सेवक)

ॐ

स्तोत्राष्टक।

मनुष्यो न देवो नहीं दैत्ययक्ष।
पण्डित न मूर्खो कवियो न दक्ष॥
जाता न आता खोया न पाया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ १॥
आश्रम न वर्णा न कुल जाति धर्मा।
नहीं नाम गोत्रं शर्मा न वर्मा॥
जाग्रत स्वप्न नहीं प्राण काया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ २॥
देशो न कालो वृद्धो न बालो।
तुरिया वितुरिया नहिं काल जालो॥
जन्म्या न मूया जाता न आया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ ३॥

जीवो न शीवो न अज्ञान मूलं।
सुखं न दु:खं नहिं पाप शूलं॥
कर्ता अकर्ता नहीं बिम्ब छाया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ ४॥
मौनी न वक्ता बन्धो न मुक्ता।
रागं विरागं नहिं लक्ष लखता॥
सब वाच्य अवाच्य का महल ढाया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ ५॥
सादी अनादी न चमे समादी।
स्वास्ता न शास्त्रं नहिं वाद वादी॥
नहीं पक्षपातं जन्मी न जाया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ ६॥
योगं वियोगं नचमे समाधी।
माया अविद्या नच मे उपाधी॥
शुद्धो स्वरूपं निरञ्जनं राया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ ७॥
गुप्ता न मुक्ता लिपता न छिपता।
लोका न वेदा तपता अतपता॥
एको चिदातम् सब में समाया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ ८॥
पढ़ै प्रातकाले कटे यम जाले।
तजै आश तृष्णा सन्तोष पाले॥
अष्ट स्तोत्रं में मन लगाया।
शिव: केवलोऽहं निरमैल माया॥ ९॥

ॐ

## अथ केशवाष्टकम्।

गुरु सत्यं अखिल चित्तं, अति आनन्दकन्दनम्।
आदि मध्ये ध्रुवं अन्तं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ १॥

गुरुदेवं अजं अचलं, शुद्ध बुद्ध निरञ्जनम्।
निराकारं निराभासं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ २॥
गुरु अवयं वासुदेवं, निष्कलो गगनोपमम्।
एक अखिलं गुणातीतं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ ३॥
गुरु विमलं अति शान्तं, नित्यानन्दं माधवम्।
द्वन्द्वातीतं मति अतीतं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ ४॥
गुरु आतम परब्रह्म, आदि ईश सनातनम्।
कलातीतं अति अनूपं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ ५॥
गुरु गुप्तं कवि मुक्तं, भूमानन्दं जनार्दनम्।
विश्वनाथं शान्त रूपं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ ६॥
गुरु तूर्यं ज्ञान दीपं, महाकालं महीपतिम्।
जगन्निवासं स्वप्रकाशं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ ७॥
गुरु नित्यं निजानन्द, देश काल प्रच्छेदतम्।
भजं चित्तं सत्यरूपं, नित्य केशव नमाम्यहम्॥ ८॥

ॐ तत्सत्

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

# सन्ध्या आरती

**दोहा।**

जेती सन्ध्या आरती, लिखते सबका सार।
साांझ समय याकों पढ़े, समुझे सार असार॥ १॥
पढ़ै सुनैअति प्रीतियुत, अरु पुनि करै विचार।
ज्ञान भानु छिन छिन उदय, है आतम दीदार॥ २॥

**चौपाई**

ऐसी आरती तोहि सुनाऊँ।
जन्म मरण को धोय बहाऊँ॥
ऐसी आरती कीजे हँसा।
छूटे जाति वरण कुल वंशा॥ १॥
काया माहिं देव है ऐसा।
दूजा और नहीं कोई तैसा
काया देवल आतम देवा,
बिन सत्गुरु नहिं पावे भेवा॥ २॥
पहिले गुरु-सेवा चितलावे,
ता से सकल विधि को पावे।
जो युक्ति गुरुदेव बतावे,
तामे अपना मन ठहरावे॥ ३॥
माया का सब झूठ पसारा,
सत है चेतन रूप तुम्हारा।
पांच अंश सब ही में जानों,
अस्ति, भाति, प्रिय, सत्य बखानों॥ ४॥

नाम रूप झूंठे व्यभिचारी,
तिन से भूल न कीजे यारी।
तीन सच्चिदानन्द पिछानों,
तिनको ब्रह्मरूप करि मानों॥ ५॥
सोहै ब्रह्म आपना रूपा,
ऐसे वेद कहत मुनि भूपा।
दो झूंठे मायाकृत देखे,
तिनको सत्य कबहुं नहिं पेखे॥ ६॥
माया नाम कहत मुनि उसका,
परमारथ से रूप न जिसका॥
अचिन्त्यशक्ति कर ताहि बतावे,
युक्ति आगे रहन न पावे॥ ७॥
सो युक्ति अब कहूँ बताई,
जाते माया रहन न पाई।
सत्य असत्य नहीं कछु भाई,
नहिं दोनों पद मिलिकर गाई॥८॥
नहिं वह कहिये भिन्न विभिन्न,
नहिं दोनों पद मिलि उत्पन्न।
नहिं सावेव नहीं निरवेवा,
दोनों मिलि नहिं होय अवेवा॥९॥
यह नवयुक्ति जिसने जानी,
तिनके माया भरती पानी।
यह सब युक्ति गुरु से जाने,
फिर कीजे निज आतम ध्याने॥१०॥
आतम पूजा बहु विधि कीजे,
जाते सकल अविद्या छीजे।
सोऽहं थाल बहुत विधि साजे,
श्वास श्वास पर घण्टी बाजे॥११॥

संयम ओट करे दिन राती,
ज्ञान दीप वाले बिन बाती।
जस दीपक का होय उजाला,
अन्धकार नसिजा तत्काला॥ १२॥
झांझ झनक चेतन की झनकी,
मूल अविद्या सारी छिनकी।
मन मिरदङ्ग तानकर कूटा,
धृक धृक कहन लगा मैं झूंठा॥ १३॥
चित का चन्दन घिसकर लाया,
तब ही देव निरञ्जन पाया।
बुद्धि ताल बजावन लागी,
क्रोड़ जन्म की सूती जागी॥ १४॥
अहंकार का बाजा घण्टा,
बहुत काल का टूटा टंटा।
चिदाभासने शङ्ख बजाया,
अपना रूप हमें अब पाया॥ १५॥
चिदाभास का कीना त्याग,
कूटस्थ रूप में कीना राग।
आभास रूप को त्यागा जबही,
रूप अक्रिय पाया तब ही॥ १६॥
ता साक्षी कर सदा अभेदा,
ब्रह्मरूप यह गावत वेदा।
जिमि जलाकाश अरु घटाकाशा,
महाकाश में सब का वासा॥ १७॥
यह दृष्टान्त विचारे मन में,
ब्रह्मरूप पावे या तन में।
ऐसी कीजे आतम सन्ध्या,
याते जीव छुटे यह बन्ध्या॥ १८॥

ऐसी सन्ध्या आरती कीजे,
जाते देव निरञ्जन रीझे।
इन्द्रिय अरु तिनके सब देवा,
करन लगे हैं आतम सेवा॥ १९॥
भये मुदित सब करें विचारा,
आतम अपना रूप निहारा।
कोई नाचे कोई गावे,
कोई मौन गहे रहिजावे॥ २०॥
कोई ताल बजावन लागे,
आतम माहिं हुये अनुरागे।
प्रीतिपुष्प चढ़ावन लागे,
ध्यानधूप को लावन लागे॥ २१॥
वृत्ति करे ब्रह्म का गाना,
और नहीं कछु भाखत आना।
ऐसे कहिके ब्रह्म समाई,
भेद भरम सब दिया उड़ाई॥ २२॥
लौन पूतरी जावे नीरा,
उलट बात कुछ कहे न वीरा।
आप रूप सब दिया गँवाई,
होय उदक दक माहिं समाई॥ २३॥
जो कुछ सूक्ष्म या स्थूला,
औ कारण था तिनका मूला।
सब ही चेतन ह्वै परकाशा,
द्वैत अद्वैत सभी जहँ नाशा॥ २४॥
सन्ध्या आरती करो विचारा,
छूटे भरम करम संसारा।
लोक वेद की छाँड़ो आशा,
तब देखोगे ब्रह्म तमासा॥ २५॥

ऐसी सन्ध्या आरती गावे,

बहुर यो जगत जन्म नहिं पावे।

टूटे बन्धन होय खलासा,

जन्म मरण का मिटिजा सासा॥ २६॥

बन्धमुक्त याते सब जाने,

दोनों भ्रम कर मिथ्या माने।

बन्धविहीन एके नहिं दोई,

ताकी मुक्तिकौन विधि होई॥ २७॥

बन्ध मुक्त मायाकृत जाने,

आतम शुद्ध रूप पहिचाने।

ध्यान अरु ज्ञान नहीं कोई जामें,

साधन साध्य नहीं कोई तामें॥ २८॥

द्वैत अद्वैत नहीं कुछ झगड़ा,

ना कछु बन्या नहीं कुछ बिगड़ा।

अजर अमर आतम अविनाशी,

चेतन शुद्ध रूप परकाशी॥ २९॥

सजाती विजाती न ता में कोई,

स्वगत भेद फिर कैसे होई।

नहिं वह वृद्ध नहीं वह बाला,

स्वेत पीत हरता नहिं काला॥ ३०॥

नहिं वह पुरुष नहीं वह नारी,

नहिं सन्यासीं नहिं ब्रह्मचारी।

लक्ष अलक्ष नहीं कछु ता में;

वाच्य अवाच्य बने नहिं जा में॥ ३१॥

सब कुछ है अरु कुछ भी नाहिं,

तन विकार कुछ परसत नाहिं।

नहिं वह हलका नहिं वह भारा,

ना कछु मधुर नहीं कछु खारा॥ ३२॥

रूप रङ्ग जा में कुछ नाहीं,

ऐसा आतम सबके माहीं।

समरस रहे गगन की नाईं,

काल कर्म की पड़े न छाईं॥ ३३॥

सदा अक्रिय निर्भय देवा,

कहा कहे को तिसकी सेवा।

ना कछु मौन नहीं कुछ बोले,

ना कहिं स्थिर ना कहिं डोले॥ ३४॥

निश्चल सदा अक्रिय देवा,

बिन सत्गुरु नहिं पावे भेवा।

नहिं परिच्छेद तासु में कोई,

देशकाल वस्तु नहिं होई॥ ३५॥

सन्ध्या आरती की लिखी चौपाई,

जग को मिथ्या कहै जनाई।

आतम ब्रह्मरूप क़रि भासै,

सतचित् आनन्द एक परकासै॥ ३६॥

जैसे गुन में भासत भोगी,

त्यों आतम में जग प्रति योगी।

शुक्ती में रूपा भ्रम होई,

त्यों आतम में जब है सोई॥ ३७॥

स्थाणु माहिं पुरुष कहै जैसे,

रवि किरनन में नीर कहै तैसे।

आकाश महिं ज्यों गन्धर्व गामा,

त्यों आतम में जगत अभिरामा॥ ३८॥

मिरची में तीक्षणता जैसे,

जल के माहिं क्षारता तैसे।

फूलन माहिं गन्ध जिमि होई,

आतम में ऐसे जग सोई॥ ३९॥

## दोहा।

सभी भरम कर भासता, करता क्रिया कर्म।
आत्मा सदा असङ्ग है, कोई जानता विरला मर्म ॥१॥

## छन्द

सतगुरु बिना नहिं भेद पावे, कहत वेद पुकारिके।
लाचार नहिं चारा चला, हम चारों बैठे हारिके॥

पट मान जेती सिमरती, वस्तु अनातम को कहै।
कौन शक्ती तासु की, जो आतमा को वह लहै॥

निरवेव चेतन शुद्ध निरमल, एक दो की गम नहीं।
ऐसे शब्द करके वेद कहता, और कछु जाने नहीं॥

दैशिक कही यह शिष्य को, तुहिं ब्रह्म व्यापक रूप है।
जो समझता इस रमज को, पड़ता नहीं भवकूप है॥

मत खाय भटको भरम में, तुहि आप चेतन है सही।
टुक समझ अपने जेहन में, यह बात हम तोसों कही॥

तत्त्वमसि आदि महावाक्य, कीजे ताहि विचार को।
मन फँसे किरिया कींच में, सब छांड़ि जग आचार को॥

यह पढ़े सन्ध्या आरती, चारों पदारथ जो लहै।
जो धारे इसके अर्थ को, फिर बात उसकी को कहे॥

चाहै अमोलक रतन को, बैठे गुप्त दरियाव में।
यह वक्त बीता जात है, फिर रोउगे इस दाव में॥

**दोहा।**

तम नाशत परकाश तें, कहों तोहि समुछाय।
और न काहू से नशै, चहै लाखों करो उपाय॥

अज्ञान विरोधी ज्ञान है, लीजे बात विचार।
नाश न होवे और ते, चहे धारे वृत्त हजार॥

कीट भिरंगी होत है, पुनः पुनः अभ्यास।
सुनि भृङ्गा के शब्द को, भृङ्ग होय उड़जात॥

ॐ

## धार्मिक सूचना।

१) हे गृहस्थो! साधू सन्यासियों की तन, मन, धन से सेवा करना तुम्हारा परम धर्म है।

२) सन्त वृद्ध हो, रोगी हो, अथवा- कारणविशेष होने पर- प्रेम से स्नान कराना, वस्त्रादि धोना, पादचम्पी करना, भार उठाना शारीरिक सेवा है।

३) सन्त के प्रति कुभाव न रखना, उनके दिये हुए उपदेश को धारण करना, ग्वानि न लाना मन की सेवा है।

४) घर पर आये हुए किसी भी सन्त को भूखा प्यासा न जाने देना। आप भूखा प्यासा रह जावे; पर सन्त को विमुख न जाने देवे। यदि सन्त को व्याधि हो अथवा- न आ सकते हों तो- उनके स्थान पर भोजनादि पहुंचाना, औषध उपचार में खर्च करना, आवश्यक वस्त्र पुस्तकादि लाकर देना, तथा- एक स्थान से दूसरे स्थान पर (जो निकट हो) स्ववाहन द्वारा; अथवा- किराया भाड़ा देकर पहुंचा देना यह धन की सेवा है।

५) यदि धर्मलाभ न कर सको तो न सही; पर कम से कम अधर्म तो मत कमाना।

### अधर्म यह है-

(क) किसी महात्मा को शारीरिक कष्ट पहुंचाना, स्थान को नष्ट भ्रष्ट करना शारीरिक अधर्म है।

(ख) कुचेष्टा करना, निन्दा करना, कुभाव फैलाना, मन का अधर्म है।

(ग) साधु सन्यासियों को 'कनक कान्ता का त्याग' धर्म में लिखा है, अतः उन्हें इन दो बातों से ही अपना कर्त्तव्य है। कदाचित्- अपनी परीक्षा निमित्त

अथवा- प्रमाद-वश कोई ऐसी याचना करे तो, हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर दो- "महात्मा इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं"।

(घ) महापुरुषों के पास जाकर तुम भी उन से वही लेने की इच्छा करना जिसमें तुम्हारा 'श्रेय' वास्तविक कल्याण होवे, क्योंकि- यदि तुम उनसे 'हेय' मांगने जाओगे तो वे तुम्हें अनधिकारी, क्षुद्र जान कर कहीं बिचर जावेंगे और तुम हाथ मलते रह जाओगे। फिर कौन जाने मौका हाथ लगे या न लगे सत्य ही कहा है-

सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी के भी होय॥१॥

(और भी सुनो)

तुलसी जग में आयके, कर लीजे दो काम।
देवे को टुकड़ो भलो, लेवे को हरिनाम॥२॥

'Know thyself'
स्वस्वरूप को जान।

ॐ तत्सत्

ॐ

# नित्यानन्द-विलास

( १ )

## मङ्गलाचरण।

शिवः केवलोऽहम्।

शिवः केवलोऽहम्॥

शिवः केवलोऽहम्।

शिवः केवलोऽहम्॥

**दोहा।**

गुप्त प्रगट निज रूप में, मंगल दश दिशि होय।
तथापि मैं मंगल करूं, मैं मेरा तज होय॥ १॥
मंगल के सन्मुख सदा, पेख अमंगल राज।
कर विवेक मंगल करूं, जड़ से सरे न काज॥ २॥
मंगल मूर्ति आप तूं, तजहु पराई आश।
वह मंगल मंगल नहीं, मंगल स्वयं प्रकाश॥ ३॥
आतम पूरण ब्रह्म खिल, मंगल मूरति चीन्ह।
मंगलाचरण अभेद में, आदि कविजन कीन्ह॥ ४॥

**चौपाई।**

भरयो वेद-सिद्धान्तज-नीरा।
अति-गंभीर जामें महा वीरा॥
नित्यानन्द-विलास सत-हीरा।
मुदित होय पेखिय जन-धीरा॥

# परमात्मा की महिमा।

## १. परमात्मा की स्तुति।

**दोहा।**

हरि हर विधि शक्ति रवि, गुरु धनेश गणेश।
विघन हरो केवल करो, मंगल अति हमेश॥ १॥
शुभबुद्धि दीजे मुझे, हरो कुबुद्धि देव।
धरूं तुमारो ध्यान मैं, करूं प्रेम से सेव॥ २॥
कृपा तुमारी होय तब, जड़मति होय सुजाण(न)।
महन्त सन्त गुरु वेद निज, कहे सत्य वे गान॥ ३॥
नमो नमो भगवान कूं, नमो नमो गुरु मोर।
नमो नमो निज आत्मा, गुप्त प्रगट सब ठौर॥ ४॥

(श्री) मंगल-मय निज आतमा, मंगल-मय सुखधाम।
मंगल-मय मोहन प्रभु, मंगल करो सब काम॥ ५॥

## २. गणेश स्तुति।

### राग भैरवी

गणपति विघन हरोजी; मोरे दाता।
मैं नित्य उठके; प्रेम प्रीति युत, तुमको शीष नमाता॥ टेक॥
तुम गणपति; ऋद्धि सिद्धि के दाता, ये मेरे मन भाता।
पाप ताप को; मूल नसावो, संत वेद यश गाता॥ १॥ गण.
जो कोइ कार्य; करे जगत में, प्रथम आप को ध्याता।
फिर पीछे बो; कार्य संभाले, मन वांछित फल पाता॥ २॥ गण.
एक समय मिलि; सबहि देवता, तुम को पूजे त्राता।
शास्त्र मांहिं; ऐसी है गाथा, तब तिन मति सुख छाता॥ ३।गण.
दोऊ कर जोड़; कहे नित्यानंद, तुमको शीश नमाता।
मेरे हृदये; वाणी विराजो, भक्ति मुक्ति वर चाता॥ ४॥ गण.

### दोहा।

विघन हरण शुभ गुण सदन, वन्दौं श्री गणराज।
जाकी कृपा कटाक्ष से, सिद्ध होत सब काज॥

## ३. ईश स्तुति।

### राग कव्वाली

ओ ईश्वर! तेरी कृपा से आनन्द हो रहा है।टेक॥
ॐ होकर असंग संग में, प्राणीमात्र के तू रहता।
कोइ मोह जीत हंस रहा है, वो विषयानंद मोह रहा है॥ १॥
दिन-रैन दरपे तेरे, सदावर्त लग रहा है।
तदपि अज्ञानी प्राणी, वृथाहि रो रहा है॥ २॥
दिलभर के भक्त-साधु, तेरा ध्यान धर रहा है।
वो तज कर के दर दुनी के, तेरे दरपे सो रहा है॥ ३॥

अति सुन्दर दरबार तेरा, जहां भंडार अटल भरा है।
है माया अखण्ड तेरी, कोई योगीराज जो रहा है॥ ४॥

**दोहा।**

ईश भजन सबसे बड़ा, तासे बड़ा न कोय।
भजन करे जो प्रेम से, मनो काम सिध होय॥

## ४. ईश–अष्टक।

**हरिगीत छन्द**

हर का असंख्य जाप जप, निर्मल भई वाणी मती।
अविनाशी नामी नाम से, न्यारा नहीं श्रीगुरु कथी॥ १॥
देखी अचल हरि की छबी, दृष्टि से निज मोरी मती।
केवल अक्रिय देव पूरण, ब्रह्म तुही योगी यती॥ २॥
गुरुदेव के परसाद से, मोरी विमल दृष्टी हुई
प्रचण्ड आतम देव, जा दिन से मुझे दीखा तुही॥ ३॥
अद्भुत अकथ हर की छबि, मुझ को लगी प्यारी अति।
ज्योति अखंड अलेख लख, निश्चल भई वाणी मति॥ ४॥
रड़ना झगड़ना वो करे, जो ज्ञानी अज्ञानी बने।
सम्यक् सच्चिदानन्दघन, श्रीईश श्रीमुख से भणे॥ ५॥
मज्जन करें कर्दम से वे, कर्दम से कर्दम धोवते।
सच्चे मिले नहिं सद्गुरू, हठयोग में फंस रोवते॥ ६॥
निर्मल कुँ निर्मल को करे, मल सहित निर्मल होय नहिं।
सर्वज्ञ गुप्त स्वरूप अन्तर्यामि इष्ट मेरा तुहिं॥ ७॥
लीला अलौकिक ईश की, देखूं वही जैसी सुणी।
गिरिजापती भगवान् नित्यानन्द नहिं निर्गुण गुणी॥ ८॥

**दोहा।**

दया दयालू ने करी, दिखलाया निजरूप।
शिष्य कृतकृत्य हो गया, लीला लखी अनूप॥

## ५. गोपालअष्टकम् ।

### हरिगीत छन्द

प्रत्यक्ष देव गोपाल तेरो, ध्यान मैं कैसे धरूं?
गुरु वेद गुण गावें तेरो, याते मैं भी तोसे डरूं॥ १॥
मैं जीव हूं तुम शीव हो, मन वाणी से तुम हो परे।
फिर ध्यान सन्ध्या आरती, गोपाल हम कैसे करें॥ २॥
युक्ती बता भगवान अब, व्याकुल भई मोरी मती।
गुरुदेव बहु समझा चुके, समझा चुके जोगी जती॥ ३॥
निर्गुण निरंजन आत्मा, गोपाल सब तोको कहे।
हमने सुन्या देखा नहीं, खुद तू मेरे संग में रहे॥ ४॥
तदपि नहिं प्रत्यक्ष तेरा, देख्या असली रूप कूं।
बिन देखे हम कैसे कहें, हम देखी छायाधूप कूं॥ ५॥
तेरी अखंड ज्योति को मैं, किस ज्योति से देखूं अब।
चैतन्य पूरण-ब्रह्म खिल, जिंदगी मेरी सुधरे तब॥ ६॥
कर गौर दीनानाथ मैं, तेरी शरण में आपड़ा।
मुझको सच्चिदानन्द तेरा, धाम असली ना जड़ा॥ ७॥
जड़ बुद्धि वा आभास जड़, दोनों से तूं जड़ता नहीं।
गोपाल गुप्तानन्द नित्यानन्द, रति रड़ता नहीं॥ ८॥

### दोहा।

मौज करे संग संग फिरे, सब कुछ करते काम।
दिल का मेद देते नहीं, जगत्-गुरु-वर-श्याम॥

## ६. हरि अष्टकम् ।

### हरिगीत छन्द

हरि की कठिन से अति कठिन, भक्ति व सेवा होत है।
बन कर प्रभू का भक्त निश दिन, पैसे पैसे को रोत है॥ १॥
जिनको शरम आती नहीं, विपरीत सब किरिया करें।
प्रभु का करें अपमान मूरख, महाघोर नरकों में पड़ें॥ २॥

भक्तों की पदवी प्राप्त करना, कछु सहज की नहीं बात है।
निष्कपटी भक्तों की कथा, इस विश्व में विख्यात है॥ ३॥
तन मन वो धन वाणी प्रभू के, प्रेम से अर्पण करें।
केवल प्रभू का प्रेम से, सुमिरन करें महीपे चरें॥ ४॥
उनको नहीं परवा कोई, निर्द्वन्द पद प्रापत किया।
सो ही भक्त है भगवान् का, भगवान की जिन पर दया॥ ५॥
अज्ञानी के सन्मुख रडे, अज्ञानी की आशा करे।
वो भक्त नहीं इस जगत में किस भाँति चौरासी तरे॥ ६॥
सुमिरन करें माया का वे, माया में वे गरगप्प रहें।
अपवचन दुष्टों के सुनें, कुछ आप मुख से ना कहें॥ ७॥
दुष्टों से भय मानें सदा, भगवान से भय ना करें।
उनका कोई संसार में, कहे मस्त नहिं कारज सरे॥ ८॥

**दोहा।**

कपट नहीं दिल से तजे, भजते नीच अनीश।
गुप्त प्रगट जिनकी क्रिया, देखे निज जगदीश॥

## ७. रणछोड़ विनय।

**पद राग सोहनी**

आश पूरण कीजिये, भक्तों की श्रीरणछोड़ जी।टेक॥
भक्तवत्सल नाम सुनकर, आये किंकर हो शरण।
दो भक्ति मुक्ति ये ही आशा, करके आये दोड़जी ॥आश.॥
तरण-तारण नाथ हो तुम, खुद यशोदानन्दजी।
कदमों में तेरे आपड़े, प्रभु देखिये कर दोड़जी॥आश.॥
आशा लगी भक्तों के मनको, और नहीं कोई आश जी।
पुचकार के अति शीघ्र हि बंधन, दीजिये हरि तोड़जी॥आश.॥
यह कहता नित्यानन्द अबतूं नाथ सुन रणछोड़जी।
निश्चल करो भक्तों की बुद्धि, दौड़ती जिमि घोड़जी॥आश.॥

दोहा।

अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी, भोगे अतिशय भोग।
तदपि देव रणछोड़ तूं, रहता सदा निरोग॥ १॥

## ८ रणछोड़ महिमा ।

### पद राग प्रभाती

अखिल देव रणछोड़ राय की, हम देखी अद्भुत माया।टेक॥
जिस माया का खेल निराला, मुझको श्रीगुरु ने बतलाया।
शून्य सिंहासन पे प्रभु बैठे, नेति नेति श्रुति न गाया॥अखि.॥
जिनके दर्शन के हम कारण, चार धाम में भटकाया।
गुरुकृपाकरि हरि मन्दिर में, हरिका दर्शन करवाया॥अखि.॥
चारखानि में देख चतुर्भुज, हमको अतिशय आनंदछाया।
अन्तर्यामी बसते अन्दर, पता गुरूबिन नहिं पाया॥अखि.॥
पुख्ता पता मिल्या है उसको, गुरू शरण में जो आया।
केवल नित्यानंद महाप्रभु, पूरणब्रह्म बिना काया॥अखि.॥

दोहा।

अष्टप्रहर चौंसठ घड़ी, दे दर्शन रणछोड़।
तू दर्शन जड़का करे, जी से मुखड़ा मोड़॥

## ९. कृष्ण-स्मरण ।

### गजल

हरदम मेरा चित हरघड़ी, श्रीकृष्ण कृष्ण बोल॥ टेक॥
दीखे चराचर देव पर, सूझे तुझे नहीं।
तेरे भी रोम रोम में, रमता है दृष्टि खोल॥ १॥ हरदम.
माया प्रपंच देख तू लोलुप्त हो गया।
जननी के था जब गर्भ में, सन्मुख किया था कोल॥ २॥ हर.
जहां से तू आया है वहां, तू जायगा जरूर।
कायम मुकाम है नहीं, तुझको नहीं है तोल ॥ ३॥ हरदम.

चंचल अरे चित्त अचल को, होकर अचल रटो।
श्रीकृष्ण नित्यानन्द को, रट होके तू अडोल॥ ४॥ हरदम.

**दोहा।**

श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द का, सज्जन करते ध्यान।
दुर्जन नहिं सुमिरे रति, तू माने चहे नमान॥ १॥

## १०. कृष्ण-स्तवन।

**पद राग लावणी**

श्रीकृष्ण कृष्ण हरवक्त, रटो मन मेरा।
क्यों इत उत नित उठ, भटको सांझ सवेरा।टेक॥
यह मिला काल शुभ तोहि, करे क्यों देरा।
वित्त मिले नहीं बिन भाग; एकहू खेरा॥ १॥ श्रीकृष्ण.
क्यों बिन विवेक शठ भर्म; गमावे तेरा।
जो लिखा विधाता अंक, करे को फेरा॥ २॥श्रीकृष्ण.
तू करे काज सब समझ, समझ निज घेरा।
अतिशय पूजै वे देव, सन्त जा नेरा॥ ३॥श्रीकृष्ण.
कछु मिले रसायन जड़ी; द्रव्य के ढेरा।
ऐसी इच्छा कर, तिन ढिंग कीने डेरा॥ ४॥श्रीकृष्ण.
क्या दें तिसको वे देव; सन्त मुख बेरा।
ऐसा निज मनको; आन अज्ञ ने घेरा॥ ५॥श्रीकृष्ण
कभी रहे नहीं स्थिर एक; घड़ी छिन हेरा।
ऐसा उन्मत्त मो, मनीराम वह केरा॥ ६॥श्रीकृष्ण.
तद्दपि नहिं पायो सार; सुगम निज शेरा।
क्यों फिरता बिना विचार, कहूं सुन टेरा॥ ७॥श्रीकृष्ण.
यह विश्व सकल दुखरूप; छांड़दे चेरा।
कहे नित्यानन्द तब; हो सुख मित्र घनेरा॥ ८॥श्रीकृष्ण.

**दोहा।**

सुरत चराचर दीखती, तोऊ न देखे अंग।
हठ योगी हठ ना तजे, करे वचन गुरु भंग॥

हरीभक्त हरि से बड़ो, यामे मीन न मेक।
भवन रहे प्रभुपद भजे, अन्त एक का एक॥

## ११. मोहन की बंसी

### पद राग सोरठ मल्हार

अजब मोहन की बंसी बाजी, घबराये पंडित काजी।टेक॥
बजी अजब मोहन की बंसी, गोपियां हो गईं राजी।
अपने अपने सबहि भवन में, ठर बैठीं जूनी ताजी॥अजब.१
बहुरि सकल गोपियां हिल मिल, के आईं भाजी २ ।
प्रभुके सन्मुख नृत्य करें सब, बहु शोभा सुन्दर साजी॥अजब.
दिव्यदृष्टि से देखी दिव्यछवि, जहां नहिं हांजी नाजी।
श्रीहरि को मुखसे कहे कामी, वह शठ पाजी पाजी॥अजब.
अद्भुत देव गुरु की माया, दीसे देख अथाजी।
कहत कवि मोहन नित्यानंद, गोपियां रती भर नहिं लाजी॥अ.

### दोहा।

मोहन की बन्सी बजे, ब्रज मंडल के बीच।
अखंड ध्वनि हरिजन सुने, गोता खावे नीच॥

## १२. रामनाम।

### पद राग चलत

श्रीराम तेरे नाम का, सुमिरण करूं सदा।टेक॥
तेरे रंग में रँगा मैं, रोगी होगया।
तदपि न त्यागा सत्य को, हम फर्ज किया अदा॥श्रीराम.॥ १॥
वायदा पूरा हो गया जब राम तूं मिला।
तूं राम मेरी आत्मा, मुझ से नहीं जुदा॥श्रीराम.॥ २॥
छबि तूं मुझे दिखा चुका, मैं देख चुका आप।
तेरी अखंड ज्योतिपे, मैं राम हूँ फिदा॥श्रीराम.॥ ३॥
तेरी अखंड ज्योति में, सब ज्योति जुप रही।
श्रीराम नित्यानन्द अब, किसको करे विदा॥श्रीराम.॥ ४॥

**दोहा।**

राम भजन जो जन करें, हैं उनको धन भाग।
प्रेम लग्यो भगवान में, रती न जग में राग॥ १॥

## १३. विष्णु- स्तुति।

**सोरठ मल्हार**

सुनो; हे श्री कृष्ण मुरारी, संकट परजा को भारी।टेक॥
संकट घोर भयो परजा को, चौदिशि घेरी वारी।
दुर्बल बली दोऊ कंपावे, अब पकड़ भुजा कर पारी॥ १॥
अंडज जरायुज स्वेदज उद्भिज, दुखी खानि बहुचारी।
देव सच्चिदानंद ग्वालिया, अब सब को करो सुखारी॥ २॥
धूजे राज करंता राजा, धूजी रैयत सारी।
उतर गयो मद धन जोवन को, अब क्षमा करो गिरधारी॥ ३॥
प्रभु अब क्षमा प्रजा सब मांगे, दोउ कर जोड़ पुकारी।
पूरण ब्रह्म नाथ नित्यानंद, करो मंगल बहुरि बिहारी॥ ४॥

**दोहा।**

वासुदेव सब में बसे, सब की जाने पोल।
मूरख मुख से यों कहे, बजे पोल में ढोल॥

## १४. जगन्नाथ स्तुति

**पद राग कालिंगड़ा**

जगन्नाथ भगवान सुनो अब, चरण कमल के दर्शन पाऊं।टेक॥
जो कुछ इच्छा भई पुनि मन में, सो तुमरे सब निकट सुनाऊं।
खैंच प्रभू अब डोर हमारी, मैं तुमरो नितही गुण गाऊं॥ १॥
प्रथम कृष्ण भगवान जन्म कुल, देखि बहुरि हरिद्वार में जाऊं।
वहां पर गंगा है अति सुन्दर, मल मल के मैं तामें नहाऊं॥ २॥
चित्रकूट पुनि देखि अयोध्या, जनकपुरी जा लाड़ लड़ाऊं।
जाय गया कर दान अन्न तन, जन्म जन्म को मैल बहाऊं॥ ३॥

प्रागराज को वहां से धाऊं, फिर वहां से काशी जी जाऊं।
काशी जी से वैजनाथ को, देख नैन मन में हरषाऊं॥ ४॥
रामेश्वर को गमन करों फिर, जाय द्वारका छाप लगाऊं।
वहां से गढ़ गिरनार देखि के, पुरी सुदामाजी को जाऊं॥ ५॥
बद्रीनाथ केदारनाथ से, आदि धाम बहुरी कर आऊं।
चारि धाम कर सुख शान्ती से, आय शरण गुरु शीष नमाऊं॥ ६॥
करि इच्छा मन पूरण स्वामी, निज मन को सन्देह नसाऊं।
यह इच्छा भई देह दृष्टि से, मैं नित्यानंद हरिरूप कहाऊं॥ ७॥

**दोहा।**

दर्शन करते ही भयो, वीर महा आनन्द।
देव सच्चिदानन्द घन, आनन्दन के कन्द॥ १॥
मुरति देखना छोड़ दे, सुरति देख मन कीश।
सुरति मुरति दोउ दृश्य हैं, द्रष्टा निज जगदीश॥ २॥

## १५. बालकृष्ण महिमा ।

### पद राग प्रभाती

बाल कृष्ण भगवान करे, भोजन सन्मुख देखो भाई।टेक॥
भोजन करे दुर्गुण नहिं जोवे, देख चतुर की चतुराई।
जो कुछ दे सो खाय ग्वालिया, रती एक प्रीती नाई॥ १।बाल.
खावे रोवे मुख नहिं धोवे, मक्खी मुख ऊपर भ्रमणाई।
ओंठ जूंठ चोरे मुंह मोरे, संग नहीं जिनके पाई॥ २।बाल.
देख दिगम्बर भेष तिहारो, मति मोरी अति हर्षाई।
स्वांग धरया सबहीं तू उलटा, निर्मल मुझको तूं दर्शाई॥ ३॥
तेरी गहन गती है बाबा, तूं मांगे उलटा खावा।
बालरूप धरि बाल चेष्टा, सकल कला कर बतलाई॥ ६॥ बाल.
मान मोह दीखा नहिं तन में, तूं गुप्त कालिया ब्रह्मचारी।
गुणागार देखी छबि तोरी, निज नित्यानन्द मुख से गाई॥ ७॥

**दोहा।**

सुरत देखना अति कठिन, है मुरत देखना सहेल।
सुरत सुरत मन मोहनी, देखत द्रग निर्मेल॥

## १६. रामेश्वर महिमा।

**पद राग गजल कव्वाली**

रामेश्वर ईश तन मन की, तुम्हारी जानता सारी।टेक॥
नाथ त्रिकाल की जाने, तुम्हारी कौन गिनती है॥
ख़ौफ़ रख श्याम का मन में, राख विषयन की तज यारी॥ १॥
यारी अब यार से कीजे, यार की सच्ची है यारी।
यार की यारी को तज के, फिरे क्यों चित्त व्यभिचारी॥ २॥
यार बिना ना कोई अपना, जगत् जंजाल जिमि सपना।
फंसो तुम मान कर अपना, यही अज्ञान अति भारी॥ ३।रामे.
दूर अज्ञान को कीजे, क्षमा भगवान से लीजे।
तबहिं परब्रह्म पद सूझे, नित्यानंद कहत मतिधारी॥ ४॥

**दोहा।**

केशव गुप्तानन्दमय, निरखूं श्वासोश्वास।
आशा को दासी करी, कीनो दास निरास॥ १॥

## १७. रामेश्वर स्तुति।

**पद राग गजल कव्वाली**

रामेश्वर ईश को जपते, ऋषी मुनि देव नर नारी।टेक॥
सत्य संकल्प त्रिपुरारी, गजाधर गिरीपति वारी।
भक्तों की भक्ति के कारण, निरगुण से बपूधारी॥ १।रामे.
भक्तों को प्रेम कर साई, देवे फल चार तिन ताई।
पुनि गर्भ वास ना पाई, करो मन भक्ति अब भारी॥ २।रामे.
भक्ति रस है अति मीठा, विवेकी संत समझावे।
भक्ति भगवान को प्यारी, कहूँ थोड़ी में सुन सारी॥ ३।रामे.

शान्ति उर धार अब धीरा, नित्यानंद बहुरि समझावे।
तबहि परब्रह्म पद पावे, अविद्या जाल मंझारी॥ ४॥रामे.

**दोहा।**

रामेश्वर भगवान का, जो जन करते ध्यान।
कृपा करे उन पर गुरू, दे निज ज्ञान विज्ञान॥

## १८. ॐकार स्तुति।

**पद राग गजल कव्वाली**

प्रभु ॐकार कैलाशी, नरबदाजी बहे खासी॥ टेक॥
हमारे पीर उर भारी, लगी तुम दरश की बारी।
नसी अब वासना सारी, मिले दिलदार अविनाशी॥ १॥ प्रभु.
तुम्हारे धाम को आये, दुखी दुर्वेस सन्यासी।
दया कर आप दीनोंपे, हरो सब काल की फांसी॥ २॥ प्रभु.
दोऊ तट बीच में गंगा, घाट है किश्ती का चंगा।
पुरी हैं तीन तुम अंगा, आपकी शिवपुरी काशी॥ ३॥ प्रभु.
नरबदाजी चढ़ी भारी, नाव तब बीच में डारी।
पार होवैं वो नर नारी, गही प्रभु नाम की रासी॥ ४॥ प्रभु.
काट चौमेर पहाड़ों का, हरा बन सघन झाड़ों का।
धाम वो देव सन्तों का, सदा मोरी सुनो उदासी॥ ५॥ प्रभु.
करो असनान गंगा को, दान दो विप्र पंड्या को।
निरखलो रूप बाबा को, तबहि निज रूप तुम पासी॥ ६॥प्रभु.
अलख हो आप ही त्राता, लखन में आप ना आता।
लखन सावेब में होता, आप निर्वेव निर्वासी॥ ७॥ प्रभु.
देख छबि को भया राजी, जीति चौरासि की बाजी।
नित्यानंद कहे गजल ताजी, नमो भगवान अबिनाशी॥ ८॥प्रभु.

**दोहा।**

बाहर वस्तु अनेक हैं, भीतर एकम एक।
गुप्त सच्चिदानन्द तूं, करके देख विवेक॥

## १९. कोटेश्वर स्तुति

### पद राग लावनी

श्री कोटेश्वर दरबार, देखि छबि तोरी।
पुनि भई सुमति तत्काल, कुमति गई मोरी॥ टेक॥
तुम हो त्रिपुरारी देव, शीष गंगधारी।
चमकत शशि जिनके भाल, खात भंग कोरी॥ १॥ श्री कोटे.
कर चित्त प्रसन्न सदैव, बजावत डमरी।
गल डोल मुण्ड की माल, व्याल कर डोरी॥ २॥ श्री कोटे.
गिरिजा माता तिन अर्द्ध, अंग में शोरी।
नंदीगण बैठे आप, भस्म तन रोरी॥ ३॥ श्री कोटे.
वीना का बाजा बजा, बहुरि त्रिपुरारी।
कर में जिनके त्रिशूल, देखि छबि थोरी॥ ४॥ श्री कोटे.
बाबा का है वह धाम, गिरि कैलासी।
कहै नित्यानन्द जय शम्भु, युगल कर जोरी॥ ५॥ श्री कोटे.

**दोहा।**

जो देखी सो हम कही, कही न मिथ्या अंग।
कोटेश्वर भगवान के, सदा रहूँ में संग॥

## २०. शम्भू की महिमा।

### पद राग चलत

शम्भू तेरे दरबार में, कुछ भी कमी नहीं॥ टेक॥
करता हूं कुल्ला दूध से, पीता हूं खूब भंग।
छकता हूं खूब माल टाल, कहता हूं मैं सही॥ १॥ शम्भू.
रोता है कर्म हीन चाहे, विप्र क्यों न हो।
तेरी कृपा कटाक्ष बिन, रोता फिरे मही॥ २॥ शम्भू.
तेरी चरण को शरण में, रहना बड़ा कठिन।
अज्ञ तज के चरण शरण को, खोता रही फही॥ ३॥ शम्भू.
तेरी अपार है गती, केशव खरा जती।
गुरु गुप्त नित्यानंद कृपा, ईश की कही॥ ४॥ शम्भू.

### दोहा।

दम्भ नहीं दम्भी तजें, करते दम्भ अपार।
जो ढूंढे तिसको मिले, शम्भू निज दरबार॥

## २१. शिवस्तुति।

### सोरठ मल्हार

अब शान्ति करो त्रिपुरारी, व्याकुल भई दुनिया सारी।टेक॥
अतिशय कष्ट भयो परजा को, फिरती मारी मारी।
विश्वपति सुन विनय विश्व की, नाथ डुबो चाहे तारी॥ अब.
खोल पलक अब देख दयालू, परजा थारी थारी।
जल परजा को युद्ध भयो है, परजा हारी हारी॥ २॥ अब.
कर इन्साफ गौर कुछ करके, बल वारी में भारी।
इन्दर मदद देत बारी को, बहे जात नर नारी॥ ३॥ अब.
दो अब नाथ हुकुम इन्दर को, परजा होय उद्धारौ।
प्रभुवर निर्गुण श्रीनित्यानंद, जय जय होय तिहारी॥ ४॥ अब.

### दोहा।

नर तन उत्तम पायके, देख चराचर शीव।
वही पिण्ड ब्रह्माण्ड का, शिव साक्षी निज जीव॥

## २२. शंकर स्तवन।

### पद राग भैरवी

कवन विधि; आप मिलोगे, त्रिपुरारी।टेक॥
आप मिलन की अति उत्कंठा, मो उर लागी भारी।
सो प्रभु सत्य सत्य अब कहिये, मैं आरत शरण तिहारी॥ १॥
पांच सहेलियां निशिदिन मोकूं, नाच नचावत वारी।
ऐसो मोय पकड़ कस बांध्यो, नहिं होने दे न्यारी॥ २॥
आप जाप को जपे सुजन जन, सो अमृत नहिं खारी।
ऐसी तात सुनी जब मैंने, मो मन चढ़ी खुमारी॥ ३॥

दुष्ट संग अब हर त्रयलोचन, ये सुन अरज हमारी।
दीन जान अ-दीन करो अब, दो दर्शन पुचकारी॥ ४॥
दोउ कर जोड़ कहे नित्यानंद, सुन भोला भंडारी।
मैं शरणागत तात तिहारी, कर भव सागर पारी॥ ५॥

**दोहा।**

दर्शन जिज्ञासु करे, महादेव का अंग।
भटकें भोगन के लिये, भोगी श्रीगुरुसंग॥

## २३. गुप्त कैलास।

**पद राग गजल कव्वाली**

गुप्त कैलास के अन्दर, अखंड आनंद होता है।टेक
पिण्ड प्रह्माण्ड का स्वामी, करे समशान में क्रीडा।
भूत गण संग में गिरिजा, कभी जगता न सोता है॥ १
चर्मचक्षू से नहिं दीखे, सच्चिदानन्द की झांकी।
दिव्यचक्षू करे दर्शन, ईश हंसता न रोता है॥ २
विभूती देख कर उसकी, भक्त साधू ऋषी आदी।
विरागी रागी होते हैं, नाथ पाता न खोता है॥ ३
कथी खंभात से वाणी, अन्तर्यामी से नहिं छानी।
सुनाई जय नरायण ने, गुरू जोवे न जोता है॥ ४

**दोहा।**

भक्त देख भगवान से, श्रीगुरु कहे न दूर।
तद्दपि भिन्न अभिन्न है, निज नारायण नूर॥ १॥
श्रीमन् नारायण प्रथम, दूजा जय नाराण।
त्रीजे नारायण भये, उड़ी न राख पिछाण॥ २॥
खुद मस्ती से देखिये, जुदा न दीखे कोय।
ऐसे महा योगीश का, दर्शन दुर्लभ होय॥ ३॥

## २४. श्री नर्मदाष्टकम्।

### हरिगीत छंद

शीतल पवित्र, विमल सुन्दर, शुक है जाकी छबी।
रहती सदा शंमू के संग, श्री नर्मदाजी कहे कवि॥ १
जाके दोऊ तट पे पवित्र, बहुत से अस्थान हैं।
तहां साधु सन्यासी हरिजन, प्रभु का करें गुण-गान हैं॥ २
भगवान् के दर्शन को लाखों, यत्न प्राणी कर रहे।
है एक रस वर देव देह में, श्रुति तथा स्मृति में कहे॥ ३
श्रुति सिमरती को सुनें, श्रुति सिमरती को पढ़ें।
तदपि नहीं तत्त्व में रति, अपतत्व को निशिदिन रडें॥ ४
अपतत्व को जब तक रडे, नहिं तत्व को प्रापित किया।
जिसने किया है प्राप्त उनका, शीतल सदा रहता हिया॥ ५
अलमस्त को पर्वा नहीं, त्रीलोक को तृणवत् लखें।
रागी पराये माल को, तीरथमें रह इत उत तकें॥ ६
भगवान के शरणे हुए, तज दीनता को जो चरें।
श्री नर्मदाजी के किनारे, वो दर्शन सदा शिव के करें॥ ७
धन्य है उस प्राणी को, सत्कर्म तीरथ में करें।
कहे गुप्त अज्ञ डूबे सफा, वो तज्ञ भवसागर तरें॥ ८

### दोहा।

चार वर्ण में जो कोई, करे वीरता वीर।
बाबा आदम शीघ्र ही, हरे सकल उर पीर॥

## २५. ईश विनय।

### गजल

नहीं कोई विश्व में मेरा, कहां परमेश त्राता है?
सभी सम्बन्ध मिथ्या है, तुम्हारा सत्य नाता है॥ १
भटकता भूलता फिरता, तभी तक ठोकरें खाता।
न जब तक आप पर पूरा, कोई विश्वास लाता है॥ २

हृदयदुख शोक भय चिंता, जी से संकोच चित रहता।
न जब तक आप के अस्तित्व का आभास पाता है॥ ३
कठिन संसार बन्धन से, तभी तक छूटना दुस्तर।
न ज़ब तक ज्ञान का कोई, सरल मारग बताता है॥ ४
तुम्हारे कौतुकों का दृश्य, है सँसार नट नागर।
तुम्हीं से व्यक्त होता है, तुम्हीं में फिर समाता है॥ ५
विषय भोगादि में भूले, सदा रहते अवुध प्राणी।
विवेकी भूल करके भी, निकट उनके न जाता है॥ ६
कलेवर आपका जग है, उसी में व्याप्त हो विभुवर।
तुम्हारी स्थिति बिना कुछ भी, न मेरी दृष्टि आता है॥ ७
मैं पहुंचू किस तरह तुम तक, न कोई युक्ति आती है।
बुलालो शीघ्र करुणाकर, वृथा यह जन्म जाता है॥ ८
तुम्हारी प्राप्ति को फिरते, मही-तल छानते प्राणी।
मुझे भी देख कर उर में, नित्य-आनन्द पाता है॥ ९

**दोहा।**

दर्शन करते हो भयो, वीर महा आनन्द।
देव सच्चिदानन्द घन, आनन्दन के कन्द॥ १॥

# (३)मस्तों के हृदयोद्गार।

## १. गुप्त गुरु की गुप्ता कथा।

**पद राग प्रभाती**

कहे केशव, अब सुन नित्यानन्द! गुप्त गुरू की गुप्त कथा॥ टेक॥
हम देखी अद्भुत प्रिय लीला, टैढ़ा जिनका कुल्ल मता।
चरण-कमल में रहे कपट से, वो इतउत डोले रोता॥ १॥ कहे.॥
निष्कपटी प्राणी बाबा के, चरण शरण में अड़ रहता।
शीघ्र सरे उनके सब कारज, जो हम देखी सो कहता॥ २॥ कहे.॥

धर्यो ध्यान दर्शन नहिं पाया, दर्शन काज ध्यान धरता।
बिना ध्यान दर्शन मैं करता, क्वचित् पुरुष कोइ पावे पता॥ ३॥
मैं केवल वक्ता नित्यानन्द, तूं श्रोता सच मैं कहता।
कथा अलौकिक करूं गुप्त को, उस बिन नहिं हिलता पत्ता॥ ४॥

## २. महा विकट माया।

### पद राग प्रभाती

कहे गुप्तेश्वर सुन नित्यानन्द, महा विकट मेरी माया॥ टेक॥
महायोगी मुनिजन को इसने, नंगा करके नचवाया।
इस ठगनी को जो कोई ठगता, गुरू तत्व जिसने पाया॥ १॥
तुरत डसे डाकण ये उसको, बचता नहीं इसका खाया।
गुरू तत्व से बेमुख प्राणी, इसके रंग में रंगवाया॥ २॥ कहे.
गुरू कृपा जिसके सिर ऊपर, वो जग में नहिं लिपटाया।
वो सुलझे उलझे से दीसे, वो सुलझे नहिं उलझाया॥ ३॥ कहे.
ये मेरे चरणन की दासी, इसकी नहिं दीसे काया।
केवल नित्यानंद निरन्तर, निश्चल मुझे नजर आया॥ ४॥ कहे.

## ३. सदा मस्त रहे मस्ताना।

### पद राग प्रभाती

कहे गुप्तेश्वर सुन नित्यानंद! सदा मस्त रहे मस्ताना॥ टेक
खुदमस्ती के सन्मुख फक्कड़, कंपावे राजा राणा।
हाथ जोड़के करै वीनती, मस्तराम खाओ खाणा॥ १॥ कहे.
मस्तों की मस्ती नहिं छिपती, मस्त मस्त को पहिचाना।
फरजीमस्त बहुत हम देखे, जिनको नहिं मिलता दाना॥ २॥
मस्तों का दर्शन महा दुर्लभ, क्वचित् मस्त होवे काना।
तन धन की परवा नहिं उनको, एक ब्रह्म जिनने जाना॥ ३॥
मस्त अखंड रहे मस्ती में, मुझको मुझको है समझाना।
इस कारण सुन गुप्त कुटी पर, मेरा यार हुआ आना॥ ४॥ कहे.

## ४. दुनिया दुरंगी।

**पद राग प्रभाती**

कहे गुप्तेश्वर सुन नित्यानंद, दुनिया यार दुरंगी है॥ टेक॥
ये दुनिया भीतर से कपटी, बाहर से बहुचंगी है।
कर विवेक देखी तब मैंने, मैं नंगा यह नंगी है॥ १॥ कहे.
अपनी वमन को सूकर कूकर, चाटत मिल सरभंगी है।
सुसंगी को एक पलक में, तुरतहि करे कुसंगी है॥ २॥ कहे.
परम विरागी मैं नहिं रागी, ये मेरी अर्धंगी है।
इसके संगमें भोग भोगता, पुष्प संग ज्यों भृङ्गी है॥ ३॥ कहे.
अधकचरा अधबिच में मरता, ठगनी ठगने में जंगी है।
अटल खजाना भरया माल से, यहां कुछ भी नहिं तंगी है॥ ४॥

## ५. चला चली का मेला।

**पद राग प्रभाती**

कहे केशव, अब सुन नित्यानंद, चला चली का मेला है।
धता धती का मेला है॥ टेक
धता-थत्त-ज्ञानी; विज्ञानी, संतत फिरे अकेला है।
उनकी निज निर्मल दृष्टी में, नहीं गुरू नहि चेला है॥ १॥ कहे.
महा अवधूत दिगंबर योगी, उनका टेड़ा गैला है।
अखिल विश्व में रमें शूरमा, नहिं न्यारा नहिं भेला है॥ २॥कहे.
देखिय नाम रूप की लीला, यही तो मेला खेला है।
जिसमें फंस अज्ञ जन शठ मरता, करता तेला बेला है॥ ३॥कहे.
अचल संत केशव नित्यानंद, चल साधु वहु सहेला है।
परमहंस सन्यासी कोविद, लिखा रक्त का रेला है॥ ४॥ कहे.

## ६. आनन्दन के कन्द।

**पद राग होली वसन्त**

कथे अवधूत दिगम्बर आनन्दन के कन्द॥ टेक
वेद वेदान्त स्मृति श्रुति, गायत्री पढ़े छंद।

पढ़ना सहेल गुणे बिन उलटा, बंध गये मर्कट जिमि अंध॥ १
कल्पित नाम रूप वर्णाश्रम, सत्य कहे मति मंद।
भक्ष अभक्ष भोग शठभोगे, माने मन में आनंद॥ २॥कथे.
सत्यपद प्राप्त किया सो प्राणी, शीघ्रहि हुवे निर्वन्ध।
राग विराग दोउ तुल जिनके, छुपै न पुष्प सुगंध॥ ३॥कथे.
तत्व अतत्व भणकर नहिं जाने, उनके कटे न फंद।
भण विद्या डूबे भवसागर, मस्त रहे निरद्वन्द॥ ४॥कथे.

## ७. लूटत मौज हमेश।

### पद राग वसन्त

देखो अवधूत दिगंबर, लूटत मौज हमेश॥ टेक
पर निन्दा पर तिय धन तजके, फिरते देश विदेश।
जो कोई प्राणी होय जिज्ञासु, वाको दे सत उपदेश॥ १॥ देखो.
दशहु दिशा अंबर हैं जिनके, देहाभिमान न लेश।
नर अवधूत स्वयं नारायण, रमें गुप्त धर वेश॥ २॥ देखो.
हाथ जोड़ के सन्मुख ठाड़े, जिनके पंच कलेश।
विश्वनाथ अवधूत दिगंबर, सब जग का अग्रेश॥ ३॥ देखो.
वर्णाश्रम का चिन्ह न दीखे, नहिं कर मिथ्या भेश।
मौज होय तब बोलत मुज से, खुद नित्यानन्द महेश॥ ४॥ दे.

## ८. मस्त रहे दिन रैन।

### पद राग होली बसन्त

अखिल अवधूत दिगंबर, मस्त रहे दिन रैन॥ टेक
वचन प्रमाणिक बोलत मुख से, कटु नहिं बोलत बैन।
दुष्ट क्रिया विपरीत करे सब, पड़े न ताको चैन॥ १॥ अखिल.
पोपट देख पक्षी स्वामी की, मूढ पिछानत सैन।
नशाबाज होवे कोई प्राणी, छुपे न ताको बैन॥ २॥ अखिल.
अवधूतन को विकट धाम है, जाकी है टेढ़ी लैन।
गुरू कृपा पूरण जब होवे, गुरु पद पावे गहेन॥ ३॥ अखिल.

जन्म-मरण का चक्कर छूटे, छुटे लैन अरु दैन।
कहत मस्त मुख से सतवाणी, तूं देख खोल के नैन॥ ४॥ अखिल.

## ९. महाकालन के काल।

### पद राग होली बसन्त

केवल अवधूत दिगंबर, महा कालन के काल॥ टेक
हाथ जोड़के जिनके सन्मुख, थर थर कंपत काल।
क्वचित विवेकी देखत लीला, गुप्त प्रकट सब हाल॥ १॥ केवल
जड़मति जीव महा योगी को, मुख से कहत कंगाल।
देख खेल चौड़े सब दीखें, तू निज मूरखता टाल॥ २॥ केवल.
तीन लोक के नाथ निरंजन, हैं जग के प्रतिपाल।
अष्टसिद्धि नवनिद्धि जिन्हों की, दोउ चमर ढुलावत लाल॥ ३॥ केवल.
वहिरंग स्वांग सभी हैं उलटे, तूं क्या जाने बाल।
कहत मस्त मुख से सतवाणी, हर भव भय शिव साल॥ ४॥ केवल.

## १०. निर्मल स्वयं प्रकाश।

### पद राग होली वसन्त

गुरू अवधूत दिगंबर, निर्मल स्वयं प्रकाश॥ टेक
शुद्ध सच्चिदानन्द गुप्त, अन्तर्यामी है पास।
दिव्य चक्षु होवे तब श्री गुरु, होय चराचर भास॥ १॥ गुरू.
है परिपूरण देख गुरू को, तज सब जग की आस।
चारू खानि में अखंड निरंतर, संतत करत निवास॥ २॥ गुरू.
गुप्त गुरू अरु गुप्तहि चेला, जहां नहिं दासी दास।
गुप्तज्ञान होवे तब छूटे, दास दासी की बास॥ ३॥ गुरू.
सर्व-शक्ति सर्वज्ञ देवगुरु, करे अविद्या नाश।
कहत मस्त मुख से सत्वाणी, दे दर्शन श्वासहु श्वास॥ ४॥ गुरू.

**दोहा।**

तूं देखे दिल से मुझे, करता बहुरि प्रणाम।
मैं देखूं निज नैन से, तुझको आठों याम॥

## ११. गुप्तानन्द महेश।

**पद राग होली बसन्त**

गुरू अवधूत दिगंबर, गुप्तानन्द महेश।टेक
सत्‌चित आनन्द रूप गुरू को, है अमरापुर देश।
गुप्त गुरू केशव नित्यानंद, खुद त्रिभुवन नरेश॥ १॥ गुरू.
कर्म रेख गुरू गुप्त मिटावे, दे केशव उपदेश।
नित्यानंद दिखावत लीला, जामें तम नहिं लेश॥ २॥ गुरू.
तीनों तीन गुणों के स्वामीं, ये नहिं गुण में लेश।
गुणातीत गुरु गुप्तानंद मय, वे दर्शन देत हमेश॥ ३॥ गुरू.
भटकत भटकत भव में भारी, हुआ अति मोहि कलेश।
सच्चे सद्‌गुरु मिले मोय तब, भयो आनंद यार अशेष॥ ४॥ गुरू.

# (४)गुरु महिमा।

## १. गुरु महिमा।

**पद राग भैरवी**

गुरु की महिमा अपरंपार।
जापे कृपा करे तब वो जन, जावे रूप अपार॥ टेक
जेते भूत प्राणी पुनि जग में, वे जिनके आधार।
यह अब हम निश्चय कर जानी, तुम दीनोंजी मनुष अवतार॥ १॥
जैसे मणका बने काष्ट से, भिन्न भिन्न आकार।
सूत्र आश्रये सबही फिरत है, तैसे ही तुम करतार॥ २॥ गुरु.
कोउक जानत मर्म तुम्हारो, सो जन नाहिं गवांर।
भव सागर से वह तिर जावत, आप ही लेवो जी उबार॥ ३॥
पार अपार नहीं कोउ जाको, अर्ध ऊर्द्ध विस्तार।
ऐसो रूप लख्यो नित्यानंद, गुरुजी मिले दिलदार॥ ४॥ गुरु.

**दोहा।**

गुरु कुलाल शिष कुंभ है, चुन चुन काढत खोट।
अन्दर हाथ सहाय दे, बाहिर मारत चोट॥

## २. गुरु पंथ।

**पद राग कव्वाली**

तेरे मलंग दरबार की, महा विकट बाट है।
गुरु-भक्त दिव्य स्वरूप निज, देखे विराट है॥ टेक
सूरत मैं ही मूरत मैं ही, जहां देखे वहां दीखूं मैं ही।
कोई भेद था न अभेद है, नहीं दीखे दिल में आंट है॥ १॥
भेदूं से पावे भेद इस, तेरे मलंग दरबार का।
दर पे हजारों तड़फते, हम देखा औघट घाट है॥ २॥
विद्या पढ़ें अनरथ करें, तप छोड़ के भव में पड़ें।
वे भोगों को भोगी रड़ रहे, विषयों की जिनको चाट है॥ ३॥
महावीर तो होवे कोइक, -जो वीरता के कृत करे।
दर पै जिन्हों के देखिये, घुटता हमेशा ठाट है॥ ४॥

**दोहा।**

मंगल मन्दिर है खुला, देख खोल के नैन।
जगत्-गुरु जिज्ञासु को, दे दर्शन दिन रैन॥

## ३. गुरु दरबार।

**दोहा।**

देखे दर दरबान हम, महावीर बलवान।
जो जन इनको जय करे, पावे पद निर्वान॥ १॥

**पद राग चलत कव्वाली**

तेरे मलंग दरबार की, अपार है गती।
जैसा तू है वैसा तुझे, यक देखे शुध मती॥ टेक
द्वै रूप तेरे हैं विमल, निर्दयी दयालू हे गुरु।
वे जड़ बुद्धि जन रोवें सदा, जिनकी अनातम में रती॥ १
भोगों के भोगन में प्रबल, जिनकी मति लोलुप्त है।
वे अधिकारी नहिं गुरुबोध के, ये श्रीव्यास शिव आदिकती॥ २
अधिकारी बिन दर्शन तेरा, वर-देव कभी होता नहीं।
हैं लाखों करोड़ों में क्वचित्, पतिसंग सखि होवे सती॥ ३.

है प्रधान निज वैराग सो, वैराग्य जिनको है नहीं।
तू दीखे नहीं देखे मलंग, कोई वीर आशिक है जती॥ ४

## ४. प्रभु मय गुरु।

### पद चाल कव्वाली

प्रेमी भक्तगण प्रभू कौ-प्रभु-मय गुरू को देखो॥ टेक
प्रभु है सोई गुरू है, गुरु है सोई प्रभू है।
अरे वो आत्मा तेरी है, गीलो है तूं ही सूखो॥ १॥
सद्‌गुरु के शरण जाना, वो कहे सो मित्र करना।
तब हो जावे भव से तरना, तूं ही चीकटो है रूखो॥ २॥
वचनों में करना श्रद्धा, वे मुर्दा को करदें जिन्दा।
ये वाक्य हैं प्रमाणीक, तुं हिं धाप्यो है वो भूखो॥ ३॥
धरवा के नाम मोटा, निज कृत्य करते खोटा।
कोई क्वचित् वीर मेरा, यक देखे कीकि कीको॥ ४॥

### दोहा।

अंधा वाणी देखता, गूंगा पढ़ता अंग।
समझ सार निज शब्द को, बहती हर शिर गंग॥

## ५. गुरु चिंतन।

### कुण्डलिया छन्द

गुप्तेश्वर गोविन्द की छबि, निरख तूं बारंबार।
अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी, लग्यो राख इक तार॥
लग्यो राख इक तार, वेद गुरु यों समझावे।
चतुर पुरुष करि कर्म, परम पूरण पद पावे॥
वो कहे निज नित्यानन्द, चित्त तब तूं सुख पावे।
गुप्तेश्वर गोविंद, एक दृष्टी में आवे॥

### दोहा।

खुद मस्ती से देखिये, जुदा न दीखे कोय।
ऐसे महा योगीश का, दुर्लभ दर्शन होय॥

## ६. गुरु शरण।

### पद राग सोहनी

श्री गुप्तानंद गुरु आपकी मैं, शरण में अब आचुका॥ टेक॥
अब आपकी मैं ले शरण, फिर कौन की लेऊं शरण।
बहुतेरा इतउत जगत में पुनि, तात भटका खाचुका॥ १॥
जिस वस्तु को मैं चाहता था, आज उसको पाचुका।
कर दरस दिल से शोक नाशे, चित्त अब सुख पाचुका॥ २॥
मोपे दयालु कर दया, निज-अंग से लिपटा लिया।
वो ब्रह्म आतम बोध मुझको, युक्ति से समझा चुका॥ ३॥
अब नाहिं चिन्ता लेश चित को, चित्त निज निर्मल भया।
यह कहत नित्यानंद, नित्यानंद मति रस छाचुका॥ ४॥

### दोहा।

कविता सज्जन जन पढ़ें, पढ़ कर करें विचार।
रसिकबिहारी रसिक में, गयो जमारो हार॥

## ७. गुरु वन्दना।

### कुण्डलिया छन्द

गुरू गुरू सोऽहं गुरू, स्वामी गुप्तानन्द।
जो जन चरणन में पड़े, तिनको किये निर्बंध॥
तिनको किये निर्बंध, गुप्त खुद मारी गोली।
चारों वर्ण समान, जले जिमि सन्मुख होली॥
वो कहे निज नित्यानन्द, गुप्त-गुरु जिसने पाया।
ते प्राणी तन त्याग, गुरू-पद मांहि समाया॥

### दोहा।

प्रीति प्रीति सब कोई कहे, कठिन प्रीति की रीत।
आदि अन्त तक ना रहे, जिमि बालू की भींत॥ १॥

## ८. गुरु स्तुति।

### कुण्डलिया छन्द

गुरू गुरू सोऽहं गुरू, पूरण परमानन्द।
सो स्वामी खुद सद्गुरू, समझ रमझ मति अंध।
समझ रमझ मति अन्ध, मस्त क्यों फिरे दिवाना।
और गुरू भव भेख, बना बैठे महि नाना॥
वो कहे निज नित्यानन्द, सत्य सुन देकर काना।
हम निश्चय गुरु गुप्त, मति परि पूरण जाना॥

### दोहा।

प्रीति जहां परदा नहीं, परदा जहां न प्रीत।
प्रीति राख परदा रखे, वह प्रीति नहीं विपरीत॥ १॥

## ९ गुरु ध्यान।

### कुण्डलिया छन्द

ध्यान धरो गुरुदेव का, मनमें राखो धीर।
जगत मोह आशा तजो, छिको क्षीर तज नीर॥
छिको क्षीर तज नीर, चित्त चंचलता नासे।
तभी सच्चिदानन्द राम, परिपूरण भासे॥
वो कहे निज नित्यानन्द, जहां लग मन को दासा।
छूटे किमि संसार, मिटी नहिं तृष्णा आशा॥

### दोहा।

रोगी को निरोगी करे, करते यत्न अपार।
रोगी की नीरोगी रति, सुनता नहीं पुकार॥

## १०. अज्ञानी गुरू ।

### सवैया

शिष्य को नाहिं कसूर जरा, जितनों जग मांहि कसूर गुरू को।
जैसी दई गुरुदेव मति, निश्चल इमि रहे जिमि तारो ध्रुव को॥

चाहे छले त्रिपुरारी हरि विधि, नाहिं डिगे गुरुज्ञान शिरू को।
शिष्य को ध्यान धरे नित्य ही गुरु, अज्ञ गुरू को टर्यो न उरूको॥

**दोहा।**

धन हरके धोखा हरे, सो सद्‌गुरु प्रिय मोर।
तिन पद को बन्दन करूं, हरष हरष कर जोर॥

## ११. गुरु निंदा।

**पद राग कव्वाली**

सद्-गुरुदेव की निन्दा, कभी मुख से नहीं करना।टेक॥
उठते बैठते फिरते, सद्‌गुरु नाम को भजना॥
भजे जिसको बिना देखे, कभी होता नहीं तरना॥
सद्‌गुरुदेव॥१॥
हाथ तैराई तेरे है, डूबना यार वा बचना।
ईश्वर से भी अधिक गुरू को, ध्यान दे ध्यान को धरना॥
सद्‌गुरुदेव॥२॥
कृतघ्नी दूसरा लम्पट, शुष्क वेदान्ती बनता।
कृत्य दंभी दर्प करते, घोर नरकों में होय पड़ना॥
सद्‌गुरुदेव॥३॥
ज्ञानी अज्ञानी की दृष्टि, दीखती देखलो भक्तो।
कथे अवधूत तज दुर्गुण, बहुरि निर्द्वन्द होय चरना॥
सद्‌गुरुदेव॥४॥

**दोहा।**

गुरू गुरू से मांगता, गुरू देखता अंग।
कहो संग कैसे निभे, अधबिच होवे भंग॥

## १२. केशवाष्टकम्।

गुरुं सत्यं विभुं चैत्यं, परमानन्द-कन्दनम्।
आदौ मध्येऽन्त्यके नित्यं, केशवं प्रणमाम्यहम्॥ १॥

गुरुदेवमजं स्वस्थं, शुद्धं बुद्धं निरंजनम्।
निराकारं निराभाषं, केशवं प्रणमाम्यहम्॥ २॥
गुरुं स्वयं वासुदेवं, निष्कलं गगनोपमम्।
एकं समं गणातीतं, केशवं प्रणमाम्यहम्॥ ३॥
गुरुं स्वच्छं महा शान्तं, नित्यानन्दमुमाधवम्।
द्वन्द्वातीतं मत्यतीतं, केशवं प्रणामाम्यहम्॥ ४॥
गुरुमात्मपरंब्रह्म, आदिमीशं सनातनम्।
कलातीतमनुपमं, केशवं प्रणमाम्यहम्॥ ५॥
गुरुं गुप्तं कविं मुक्तं, भूमानदं जनार्दनम्।
विश्वनाथं शान्तरूपं, केशवं प्रणमाम्यहम्॥ ६॥
गुरुं तूर्यं ज्ञानदीपं, महाकालं महीपतिम्।
जगन्निवासं स्वप्रकाशं, केशवं प्रणमाम्यहम्॥ ७॥
गुरुं नित्यं निजानन्दं, देशकाला विभाजतम्।
भजे चित्ते सत्यरूपं, केशवं प्रणमाम्यहम्॥ ८॥

**दोहा।**

गुरू गुरू से मांगता, गुरू देखता तात।
गुरू गुरू का साक्षि है, रहे सदा गुरू साथ॥

# (५) सन्त महिमा।

## १. सन्त पद

**पदराग सोहनी**

सन्तों की पदवी प्राप्त करना, कछु सहेल की नहिं बात है॥ टेक॥
पूरब हुये हैं सन्त जन, उनकी कथा विख्यात है।
धन है उन्हीं को धन्य है, कछु सहेल की नहिं बात है॥ १॥
महा कठिन तप जिनने किये, करके वे कृत कृत हुए।
धन है उन्हीं को धन्य है, कछु सहेल की नहिं बात है॥ २॥

जड़ देह दृश्य स्वरूप शून्य तंज, जिनकी अखंड सत में रती।
धन है उन्हीं को धन्य है, कछु सहेल की नहिं बात है॥ ३॥
बीच इस ब्रह्माण्ड के, जय जय जिन्हों की होरही।
धन है उन्हीं को धन्य है, कछु सहेल की नहिं बात है॥ ४॥

**दोहा।**

सन्त सदा एकान्त में, करते गुप्त विचार।
सार सच्चिदानन्द है, यह जग अखिल असार॥

## २. सन्त जन।

### पदराग सोहनी

सन्तों की पदवी संत जन, इस विश्व में प्रापत करें॥ टेक॥
हठ योगी हठ क्रिया करें, पद सत्य हठ से है परे।
है महा कठिन पद महा कठिन, इस विश्व में प्रापत करें॥ १॥
ब्रह्मज्ञ जब सत्गुरु मिले, चौरासि खल चक्कर टरें।
है महा कठिन पद महा कठिन, इस विश्व में प्रापत करें॥ २॥
फिरते हजारों सन्त जन, कोइ क्वचित पर साधू तरें।
है महा कठिन पद महा कठिन, इस विश्व में प्रापत करें॥ ३॥
होकर निडर इस विश्व में, अलमस्त वो होकर चरें।
है महा कठिन पद महा कठिन, इस विश्व में प्रापत करें॥ ४॥

**दोहा**

बिन विवेक भासे नहीं, जग में सार असार।
कर विवेक जब देखिये, ब्रह्म ज्ञान एक सार॥

## ३. सन्यस्थ।

### अलौकिक अष्टकम्-हरि गीत छन्द

कलिकाल में सन्यस्थ को, लेना नहिं देना कोई।
सन्यस्थ के धर्मों का पालन, कीये बिना रोवे दोई॥ १॥
घरमें करे झगड़ा सदा, कछु काम धन्धा ना करे।
फिर जाके सन्यासी बने, ऊपर को चढ़ नीचे गिरे॥ २॥

निष्कलंकी होके जो कोई, सन्यस्थ को धारण करे।
संसार सागर को वोही जन, प्रेम से शीघ्रहि तरे॥ ३॥
फरजी बना के भेष मूरख, श्वान जिमि उद्दर भरे।
उनकी गती शुभ होय नहिं, वो मौत बिन आई मरे॥ ४॥
वैराग्य जिनको है नहीं, समसानिया वैराग है।
वैराग्य होय अखण्ड उनको, वेद कहता त्याग है॥ ५॥
वेद के अनुसार त्यागी, क्वचित बुधजन होत हैं।
सत्चित आनंद चीन्ह निजपद, वो बहुरि निर्भय सोत हैं॥ ६॥
सन्यासी जन इस विश्व में, भगवान् के अवतार हैं।
उनकी क्रिया छिपती नहीं, कुल वेद के अनुसार हैं॥ ७॥
दिन में हजारों बार मूरख, रागि वैरागी बने।
कहे मस्त वो सन्यस्थ के, अधिकारि नहिं श्रीहरि भणे॥ ८॥

**दोहा।**

ईश कृपा उनपे करे, जो शरणागत होय।
जन्म-मरण-फांसी हरे, दे द्वैत मूल से खोय॥

## ४. सन्त कौन?

**सवैया**

सन्त वही जो कुपंथ तजे, लखे पंथ सोही जामें दुख न कोई।
त्याग सुपन्थ चरे तिनके, दुख को कहु अन्त न होई॥
पंथ दोऊ चल मौज कोऊ पर, चाल वो पंथ जामें द्वन्द न दोई।
नित्यानन्द कहे फिर सत्य तुझे, हितकी यह बात सुनाऊं तोई॥

**दोहा।**

महाबीर उसको कहें, दे असत्य संग छोड़।
उलट वृत्ति जड़ देह से, निज आतम में जोड़॥

## ५ संत का पंथ।

**सवैया**

संत को पंथ की गम्म पड़े अति, गुप्त सु पंथ कुसन्त न पावे।
आदि सनातन पंथ सोई गुरु-भक्त वो शिष्य सुखेन से जावे॥
लेश कलेश को नाहिं कोऊ, मतिमान सुसंत कवि रुचि गावे।
नित्यानंद सदा निर्द्वन्द रहे वो, सुज्ञ कुपंथ के पास न आवे॥

**दोहा।**

एक विरक्त एक गृहस्थ है, दोनों एकहि नाम।
एक गांव के अधिपति, विरला करे पिछान॥

## ६ सन्त का विचरना।

**सवैया**

संत सदा विचरे वोहि पंथ, सुसंगि सुपात्र को संग लगावे।
बोध करे सब दुःख हरे, तब सत्य वो नित्य निरञ्जन पावे॥
छन्द नवीन बनाय कहूं, हरिदास विचार के चित्त रिझावे।
रे नित्यानंद के बोध बिना, मति मूढ़ वो जीव हमेश भ्रमावे॥

**दोहा।**

बिकट पंथ होवे लघु, जब निष्कपटी होय।
सुरत-मुरत सन्मुख सदा, करे नृत्य पुनि होय॥

## ७. सन्त की मति।

**सवैया**

वोहि तिरे भव सागर से जिन-की मति में मल लेश न कोऊ।
ज्ञान को पंथ जो वोहि लखे सोई, संत महंत कचित् ही टोऊ॥
वो ही सुखी विचरंत मही, ऐसे संत को क्षोभ कहो किमि होऊ॥
रहे नित्यानंद अखंड तजे जो, -राग विराग उपाधी दोऊ॥

**दोहा।**

महावीर निज सत्य में, सदा रहे लवलीन।
जैसे जल को ना तजे, देखो जल की मीन॥

## ८. संत का संग।

**सवैया**

मूढ़ की संगत मूढ़ करे, तिन को संग संत को नाहिं सुहावे।
संत करे संग संतन को, जिनको सब देव इन्द्रादिक चाहे॥
संत करे सत्संग सुने सोहि, भक्त वो संत अभय पद पावे।
है नित्यानंद वो संत सुखी, मतिमूढ़ के जन्म को अंत न आवे॥

**दोहा।**

महावीर सत्‌राम में, रहे सदा गरगप्प।
तजे संग जनदुष्ट को, जो मारे लप झप्प॥

## ९. सकामी संत।

**सवैया**

लोह मिले दरपै दरपै, पर पारस कोउक द्वार पे पावे।
तैसे संत सकामि घणे, निष्कामि वो संत क्वचित ढिंग आवे॥
सन्त करे नहिं द्रोह कछू, तिनको सम दोऊ चित्त च्हावे।
नित्यानंद कहे देखो लीला, निगमादिक नित्यहि शीष नमावे॥

**दोहा।**

रसिक बिहारी रसिक में, हो गये तुम उन्मत्त।
पतिव्रता निज कामनी, कहे पति को सत्त॥

## १०. दंभी सन्त।

**सवैया**

ज्ञान के वाक्य जे नाहिं भणें, कहे वाक्य कटू मन में हरषावे।
और के मान को भंग करे, पुनि आप जो आनसे मानको च्हावे॥
सो शठ जान पुमान यती, जिन माँहि कुलक्षण राशि कहावे।
नित्यानन्द कहे तिनकूं तजिये, वह संत नहीं दम्भी दर्सावे॥

**दोहा।**

अग्नी से मूरख जले, बसता जल के तीर।
निज प्रमाद तजता नहीं, बने आप महावीर॥

## ११. दु:खी संत।

**सवैया**

संत भया नहिं दु:ख गया पुनि, दु:ख रहा; मति ना शरमावे।
होड़ करे निर्बंधन की वो, निर्बंध भये बिन; बंध न जावे॥
भेख बनाय फिरे नकली शठ, ले नाम तिन्हों का भिक्षा खावे।
कहे नित्यानन्द निज बोध बिना, अंतिम शीघ्रहि नर्क में जावे॥

**दोहा।**

करे निरोगा और को, खुद्द रोगला आप।
बिन विवेक दोनों जपे, उल्टे सुल्टे जाप॥

## १२. मान बड़ाई।

**सवैया**

मान बढ़ाई में आय बन्ध्यो पुनि, खूब बंध्यो बंध के उरझायो।
छूटे किमि वो निर्वेद नहीं, निर्वेद बिना शठ भेख लजायो॥
भूषण संत को त्याग दियो, भयो संत तऊ पद संत न पायो।
पकड़ भुजा शठ को लखिये, यमदूत तिसे नर्क माँहि गिरायो॥

**दोहा।**

जाय देह अभिमान जब, लखे रूप निर्वाण।
तब इत उत मन जाय नहिं, रहे समाधि मतिमान॥

## १३. गुरू द्रोह।

**सवैया**

संत सुखी गुरू भक्त सुखी, वह जीव दुखी गुरू द्रोहि जो हौवे।
मान चहे गुरू देवन से, नहिं मान मिले तो कुछिद्र वो जोवे॥
ठौर नहीं त्रय लोक विषे-तज देव तिसे तब शिर धुनि रोवे।
नित्यानंद कहे गुरूद्रोही नहिं, सोहि शिष्य सदा निचंतसे सौवे॥

**दोहा।**

गुरु की नित पूजा करे, धरे प्रेम से ध्यान।
उनकी कृपा कटाक्ष से, होय राम का ज्ञान॥

## १४. अन्त समय।

### पद राग गजल कव्वाली

वृथा न बकना स्वामी, कहो प्राण कहां को जावे।
गोविंद गो का स्वामी, भजने में वो न आवे॥ टेक॥
सावेव वो नहीं है, निर्वेव श्रुति बतावे।
इन्द्रिय अतीत को हम, स्वामी कहो कैसे ध्यावें॥ १॥
स्वामी का तूं है स्वामी, कविता बना के गावे।
कुल प्राणी को तूं उल्टी, भ्रम जाल में फंसावे॥ २॥
जड़ का भजन किये से, मुक्ती न कोउ पावे।
जड़ रूप वो हो जावे, भव बीच गोता खावे॥ ३॥
प्रभु को तूं बहुरि सबके, मरने के समै बुलावे।
वो निश्चल अक्रिय देवा, कहो कैसे आवे जावे॥४॥
स्वामी तूं है सन्यासी, विद्वान पुनः कहावे।
हरि है अभेद तो से, क्यों रोवता रोवावे॥ ५॥
सर्वज्ञ श्रीकृष्ण जी को अल्पज्ञ तूं बनावे।
सुन कहता मस्त स्वामी, मूरख मिलन को च्हावे॥ ६॥

### दोहा।

देख दीखता सामने, निष्कपटी भगवान।
जो नर प्रभुपद पाचुके, सो नर प्रभू समान॥ १॥

## १५. दुःख में सुख।

### पद राग वसन्त

संतो; दुख में सुख होत अपार।
होत सुख में दुख भारी, दुख में सुख होत अपार॥ टेक॥
सुखिया जन मन इस जगमांहीं, कबहु न होय उद्धार।
साधन संग्रह विपरीत किये शुभ, खो बैठे नर अवतार॥ १॥
ये तन भोग मोक्ष का दाता, मिले न बारबार।
तज प्रमाद सब बहुरि मोरि मति, तज असार गह सार॥ २॥

सुखिया शोक दूर कर चित से, डार शीष से भार।
तज बहिरंग दृष्टि अंतर कर, निज आतम का दीदार॥ ३॥
वीर फकीरी देख भेष कूं, करे त्रिलोक जुहार।
प्रभुता में प्रभु को नहिं चीन्ह्यो, ता प्रभुता को धिक्कार॥ ४॥

**दोहा।**

रोना हंसना विश्व में, देखो घर घर होय।
शून्य विवेकी शून्य-संग, रहा शून्य को रोय॥

## १६. निशंक व्यवहार।

**पद राग विहाग**

विप्रवर अल्प जे अलख जगाऊं तब परमानंद पद पाऊं॥ टेक
रोटी देय तो रोटी खाऊं, छाछ देय तो पीऊं।
शाक देय तो रोटी लगा के, रुच रुच ता संग खाऊं॥ १॥
और सकल वस्तु चित त्यागेऊ, सत प्रिय वचन सुनाऊं।
पापी प्राण शांति हित कारण, तज बन पुर उर धाऊं॥ २॥
कंचन काँच एक कर जानेऊ, ग्रहों नसों ना कोऊं।
ऐसी धार धारण जे कर, मनो काम सिद्ध होऊं॥ ३॥
नीच कृत्य नीचहि जन करते, तुम तिन्ह ढिग ना जाऊं।
कहत नित्यानंद बहुरि समझ मति, समझ रमझ समझाऊं॥ ४॥

**दोहा।**

हंसना रोना छोड़दे, ये तो तन के काम।
ये जड़ तूं चेतन अचल, मीत आतमाराम॥

## १७. अलौकिक व्यवहार।

**पद राग आसावरी**

रमता जोगी आया नगर में, रमता जोगी आया।टेक॥
बेरंगी सो रंगमें आया, क्या क्या नाच दिखाया।
तीनों-गुण औ पंच-भूत में, साहब हमें बताया॥ १॥

पांच पचीस को लेकर आया, चौदा भुबन समाया।
चौदा भुवन से खेले न्यारा, ये अचरज की माया॥ २॥
ब्रह्म निरंजन रूप गुरू को, यह हरिहर की माया।
हर घट में काया बिच खेले, बन कर आतम राया॥ ३॥
भांत भांत के वेष धरे वो, कहीं धूप कहीं छाया।
समझ सेन गुरु कहे नित्यानंद, खोजले अपनी काया॥ ४॥

**दोहा।**

देखे दर दरवान हम, वीर महा बलवान।
जो जन इनको जय करे, पावे पद निर्वाण॥

## १८. ईश-गुरू-संबन्ध।

**पद राग कव्वाली**

प्रेमी संतगण प्रभू से, एक डरना नहीं डराना।टेक॥
यह भेष है उसी का, जिसके शरण हुए तुम।
एक लक्ष उसी में राखो, वोही है खाना दाना॥
प्रेमी संत गण.॥ १॥
सुगुरा की जय जय होवे, नुगुरा की नाव डूबे।
सुगुरा प्रभु को देखे, पट ही ताना बाना॥
प्रेमी संत गण.॥ २॥
गुरूद्रोही को गुरू के, प्रभु पास पीछा भिजावे।
माफी गुरू से मांगे, छुट जावे आना जाना॥
प्रेमी संत गण.॥ ३॥
गुरु ब्रह्मा विष्णु हर कर, ऋषिमय ऋषी आदिकर।
कृतकृत्य वे हुवे हैं, एक देखे काना गाना॥
प्रेमी संत गण.॥ ४॥

# (६) जिज्ञासु को सद्गुरु उपदेश

## १. साधन सम्पन्नता

### राग विहाग

साधन साध फकीरी कीजे, तब ही निज रूप लहीजे॥ टेक॥
सो साधन हम तुमसे कहते, जाते परम पद लहते।
ताप त्रय को मूल नसावे, अब चित तामें दीजे॥ १॥ साधन.
प्रथम विवेक वैराग्य समाधि, मुमुक्षुता से आदि।
बुद्धि साधन साध्य शुद्ध कर, फिर गुरु वाक्य प्रेम रस पीजे॥ २॥
ये साधन सद्गुरुजी जाने तू चित नहिं पहिचाने।
ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरु श्रुतिवक्ता, जाय शरण में रहिजे॥ ३॥ साधन.
साधन साध्य सिद्धि होय निर्भय, वो मही पर विचरे।
कहत नित्यानंद बहुरि चित्त सुण, तबही अविद्या छीजे॥ ४॥

### दोहा।

मन बुद्धि अहंकार चित, महाशत्रु सम जान।
प्रथम जीत इनको पुनि, धरो ईश को ध्यान॥ १॥

## २. सद्गुरु शोध।

### ग़ज़ल

चरणों की जा शरण में, कोइ काल वास कीजे।
वो सेवा विधि से कीजे, श्रीगुरुदेव जाते रीझे॥ टेक॥
स्वयंधाम में पहूँचावे, लक्ष चोरासी छुटावे।
वो दर्शन तुझे करावे, गुरुसंग पंड्या लीजे॥ १॥ चरणों.
श्रीभगवान के मंदिर का, केवल गुरू है पंडा।
मन्दिर पे संग पंडा के, दरसन होय पाप छीजे॥ २॥ चरणों.
कुछ भेट प्रभु के करना, निज वस्तु हो सो धरना।
तुलसी चरणामृत लेना, रुच रुच के बहुरि पीजे॥ ३॥ चरणों.

बहुरि पडा के चरणों में, साष्टाङ्ग प्रणाम करना।
आशिर्वाद वासे लीजे, कहे मस्त सत्य सुनीजे॥ ४॥ चरणों.

### कुण्डलिया-छन्द

व्योम वात पुनि तेज दश, पृथ्वी में भरपूर।
अन्तर बाहिर गुप्त अज, नहिं समीप नहिं दूर॥
नहिं समीप नहि दूर, जहां मन वाक्य पलाता।
ध्रूव सत्य त्रयकाल, गुप्त आतम बतलाता॥
ये कहे निज नित्यानंद, गुरूकुल वसिये ताता।
तब पावे निज मर्म, होय अतिशय उर साता॥

### दोहा।

धन हर के धोखा हरे, सो सद्गुरु प्रिय मोर।
तिन पद को वन्दन करूं, हरष हरष कर जोर॥ १॥

## ३. सद्गुरु दर्शन।

### गजल (चाल लंगड़ी)

सद्गुरुदेव का दर्शन, महान् पुण्यन से होता है॥ टेक॥
मनुष्य तन पाय के जिसने, गुरू दर्वार नहिं ढूंढा।
शान्ति का धाम वोही है, क्वचित् बुद्धिमान जोता है॥ १॥
प्रमादी मन्द मति प्राणी, धाम गुरुदेव का तजते।
अधोगति होती है उनकी, निर्भय हो गुरुभक्त सोता है॥ २॥
प्रमाणिक मैं कहूँ वाणी, करे कुतर्क अज्ञानी।
गुरु का गाके गुण गण को, तज्ञ अज्ञ हंसता रोता है॥ ३॥
ईश गुरु संत की सतसंग, करे इस विश्व में बाबा।
कथे अवधूत गुरुदर्शन, चराचर मुझको होता है॥ ४॥

### दोहा।

सन्त-ईश गुरु-ईश है, गुरु-सन्त भज ईश।
सौदा पक्का होत है, काट चढ़ावे शीष॥ १॥

## ४. सत् गुरु से परमलाभ।

**कुण्डलिया**

गुरु समान दाता नहीं, तीन लोक में तात।
अभयदान गुरु दे सदा, समझ मान मन बात॥
समझ मान मन बात, चरण गुरु का नित्य पूजे।
नाशवन्त धन त्याग, अभयदान तुझको सूझे॥
यह कहता मस्त पुकार, दयालु है गुरुदेवा।
अभय दान दे तुरत, करो तन मन से सेवा॥

**दोहा।**

गुरु मंत्र तजना नहीं, भजना बारम्बार।
महा पातकी का करे, श्रीगुरु शीघ्र उद्धार॥ १॥

## ५. श्रीसद्गुरु-चरण-शरण।

**पद राग भैरवी**

चरण शरण में आयो।
गुरुजी मैं तो चरण शरण में आयो।टेक॥
हूँ अज्ञानी होय काम वश, कामी काग कहायो।
मृग ज्यूं भर्म भयो बिन बारी, जिमि निज मति भ्रम छायो॥
गुरुजी मैंतो.॥ १॥
ज्ञान शलाका धो बुधि लोचन, अब तम युगल नसवो।
दिव्य दृष्टि दो दीनबन्धु मोंहि, यही मोर चित्त च्हायो॥
गुरुजी मैंतो.॥ २॥
यही विनय आरत की स्वामिन्, आरत अति घबरायो।
शीतल बैन मनोहर मों प्रति, कहौ मैं शिष्य कहायो॥
गुरुजी मैंतो.॥ ३॥
कालन के तुम महाकाल हो, यह निगमागम गायो।
कहत नित्यानन्द ब्रह्मानन्द रस, श्री गुरू मों मति भायो॥
गुरुजी मैंतो.॥ ४॥

**दोहा।**

निर्मल वृत्ति होय तब, निर्मल पावे रूप।
बिन निर्मल वृति किये, पड़े जीव भव कूप॥

## ६. जीवन की सफलता के लिये शिष्य की व्याकुलता

**पद राग भैरवी**

वृथाही जन्म गुमायो गुरूजी मैंने, वृथाही जन्म गुमायो।
कछु हाथ पल्ले नहीं आओ। गुरूजी मैंने॥ टेक॥
सोमनाथ श्रीकृष्णचन्द्र को, कबहु न चित्त से ध्यायो।
तज़ शुभ खेल कुखेल खेल में, ताही में समो बितायो॥
गुरूजी मैंने॥ १॥
बाल तरुण दो गई जी अवस्था, अब कछु वृद्ध कहायो।
कर कुकर्म सुकर्म दूर कर, अमृत तज विष खायो॥
गुरूजी मैंने॥ २॥
अब तीजी पण में राख टेक प्रभु, राख सके तो सांई।
सुर वाञ्छत हैं इस नर तन कूं, सो वपु मैंने पायो॥
गुरूजी मैंने॥ ३॥
सोऽहं आप आपुनी जाने, नित्यानंद बखाने।
अपनो दुःख सकल गुरूजी को, इमि मम निज पुनि गायो॥
गुरूजी मैंने॥ ४॥

## ७. शिष्य की प्रार्थना

**पद गजल राग कव्वाली**

जगादो सद्-गुरू मुझको, अविद्या नींद में सोता॥ टेक॥
कभी जगता कभी सोता, कभी सोता कभी जगता।
अखंड जाग्रत बने तबही बोध स्व-स्वरूप का होता॥ १॥
भोग लिया भोगों ने हमको, भोग नहिं भोगे हैं हमने।
लगादो नेत्रों में अंजन, काज दर्शन के मैं रोता॥ २॥

कृपालू! हे कृपा सागर!!, सुस्ती मेरी उड़ा देना!!!
जमूरा आपका स्वामिन् भरोसे (मैं) आपके सोता॥ ३॥
त्रिलोकी में सगे मेरे, कोई भी दीखते नाहीं।
पढ़े हम ग्रन्थ बहुतेरे, बिना अनुभव के सब थोता॥ ४॥

**दोहा।**

ताप तपावे रैन-दिन, तपते पण्डित लोग।
भोग भोगने में कुशल, सधे न जिनसे योग॥ १॥

## ८. शिष्य की जिज्ञासा।

**पद राग भैरवी**

शिष्य पूछे गुरुजी से जाई।
कौन युक्ति कर मुक्ति होय प्रभु, यह मैं पतो न पाई॥ टेक॥
दोऊ कर जोड़ चरण मस्तक धर, प्रश्न कियो यह आई।
कोऽहं को संसार नाथ देओ, भिन्न भिन्न दरशाई॥ १॥
कर्म उपासना पुनि बहु कीने, तोहु चित्त शांति ना राई।
अधिक अधिक तृष्णा बढ़े जैसे, अग्नि घिरत सवाई॥ २॥
इसमें हम कोऊ सुख ना पायो, यह मोहिं लियो लुभाई।
ऐसी मोह ममता यह माया, पिचटी मो तन मांई॥ ३॥
नित्यानंद आरत गुरुजी से, अपनो दुःख सब गाई।
भवसागर से मोहि उबारो, कीजै बेगि सुनाई॥ ४॥

**दोहा।**

सत् गुरू के सत्संग से, जीव होय निर्बंध।
जिमि उडुगण कोटीन में, हिम कर सदा स्वच्छन्द॥ १॥

## ९. शरणागत जिज्ञासु को श्रीगुरुजी का आश्वासन।

**गजल**

कछु रोक टोक नाहीं, दरबार खुला पड़ा है।
तुझे होय जो जिज्ञासा फिर काहे को खड़ा है॥ टेक॥

कौड़ी लगे न पैसा, मल मनप रहे न लेशा।
कर प्रेम से तूं झांकी, हरि गरुड़ पे चढ़ा है॥ १॥
निर्मेल चक्षु होवे, तब रूप जथार्थ जोवे।
त्रिधा ताप नहिं तपावे, निज डोंड़ी पे अड़ा है॥ २॥
नर तन को पाया तैने, याते कही है मैंने।
इसका उद्धार कर ले, बहु काल संग रड़ा है॥ ३॥
जड़ बुद्धि जाकी होवे, दर्शन का मूढ़ रोवे।
सुन केहता मस्त स्वामी, निष्कपटी को जड़ा है॥ ४॥

**दोहा।**

सत्-गुरु में सत्शिव भरयो, नख शिख से भरपूर।
नैन बैन की सैन ते, चतुर करें जन कूर॥ १॥

## १०. गुरु सेवा।

**कवित्त**

जिनको पुण्य सीधो होय, वो मोक्ष की जो इच्छा होय।
गुरू के शरणे जाय, कोइ काल बास कीजिये॥
ये तन धन मन वाचा, श्री गुरू के अर्पण करि।
ईश से अधिक सेवा भक्ति चित्त दीजिये॥
पुनि होंय वे प्रसन्न तब, तोसे पूछे बात तात।
तो जोड़ दोऊ हाथ दान, तूं मांग अभय लीजिये॥
अभय दान का प्रदाता रे! दूसरा न और कोऊ।
येह चित्त यार चीन! नित्यानंद रस पीजिये॥

**दोहा।**

सेवा से मेवा मिले, करके देखो सेव।
बिन सेवा मेवा नहिं, कहते श्रीगुरु देव॥

## ११. श्रीगुरुपदेश (स्वधर्म)

**(कवित्त)**

निज धर्म को त्याग यार, अधर्म माहिं करे प्यार।
सुण ऐंसी मति को जार, आज शुद्ध मति कीजिये॥
निज धर्म को कर विचार, कहे वेद गुरु उचार।
अधरम को छोड़ यार, मति ध्यान दे सुन लीजिये॥
ऐसा अवसर आज पाय, तिसकों तूं देता बहाय।
फिर कर तूं लाखों उपाय, नहीं कर्म खोटा छीजिये॥
जीत हो सोकर विचार, करे तूं किस पर अंवार।
तूं चित्त तज असत्, शीघ्रहि सुधा रस पीजिये॥

**दोहा।**

प्रथम जीत अहंकार तब, होय ब्रह्म को ज्ञान।
बचन सत्य मुख से कहूँ, सुजन सुनो दे कान॥

## १२. सत्संग।

**कुण्डलिया**

तबही बचे यमत्रास से, कहूँ सत्य जे संग।
निज तन मन से कीजिये, महा पुरुष को संग॥
महा पुरुष को संग, विलम्बना कीजे धीरा।
तबही लखे निज रूप, बहुरि व्यापे नहिं पीरा॥
ये कहे निज नित्यानन्द, ध्यान दे सुन चित मोरा।
तबही शान्ति उर होय, हरे भव चककर तोरा॥

## १३. सत्य भाघण।

**गजल-राग-कव्वाली**

प्रिय सच बोलना सजनों, असत् नहिं बोलना वाणी॥ टेक॥
सत्वादी असत्वादी, परस्पर हैं दोऊ ब्रोधी।
सदा जय सत्य की होवे, सत्य की होय नहीं हानी॥ १॥

असत्वादी सुनो प्यारे, छोड़ दो दुर्व्यसन सारे।
दुर्गति दुर्व्यसन करते, ध्यान देकर सुनो प्राणी॥ २॥
सद्गती होय सो कीजे, समा अनमोल जाता है।
मूढ़ों की मूढ़ संगति से, छुटे नहिं बहुरि चव खानी॥ ३॥
असत् वा सत्यकी लीला, देखले दीखती दोऊ।
कथे अवधूत नित्यानन्द, वो मानी है वो निर्मानी॥ ४॥

**दोहा।**

सत्य कहे प्यारी लगे, सत्य पुरुष को अंग।
दुर्जन तज सज्जन करे, सदा सत्य को संग॥

## १४. निन्दा का त्याग।

**कुण्डलिया छन्द**

चुगली निन्दा मत करो, सुन पण्डित मेरी बात।
बहुत बुरा यह व्यसन है, इसका छोड़ो साथ॥
इसका छोड़ो साथ, टेव यह बहुत बुरी है।
उठती अपनी साख, कभी चलवाति छुरी है॥
ये कहे निज नित्यानन्द, लोक सब बुरा बतावे।
अपने सन्मुख बात, करत मन में सकुचावे॥

## १५. भोगवासना का त्याग।

**कुण्डलिया छन्द**

भोग पाप का मूल है, वो ही जनम दे अंग।
याते कापहु मूल को, अतिशय होय निसंग॥
अतिशय होय निसंग, खड़ग ले कर में धीरा।
ताते कापहु मूल, तूल नहिं व्यापे पीरा॥
ये कहे निज नित्यानन्द, सत्य सुन देकर काना।
समझ बहू दुख त्रास, टरे पुनि आना जाना॥

**दोहा।**

मती मान परब्रह्म में, रती करो प्रियमीत।
तेरे हारे हार है, तेरे जीते जीत॥ १॥

## १६ विषया शक्ति त्याग।

**कुण्डलिया छन्द**

कैसे जाने राम को, भजे रेन दिन चाम।
छांड़ भजन तू चाम को, तब जानेगा राम॥
तब जानेगा राम, रामकी महिमा भारी।
क्या जाने मतिमंद, प्रीति विषयन में धरी॥
ये कहता निज नित्यानन्द, विषय विषयन की आरी।
याते तिनको त्याग, होय तब अतिहि सुखारी॥

## १७. विषय वासना त्याग।

**पद राग विहाग**

आप तू परमानन्द स्वरूप।
छांड़ वास विषयन की सारी, बहुरि लगा चित चूप॥ टेक॥
ना तूं जन्मा नाय मुवा तूं, ये लख निज मति भाई।
सब घट मठ के अन्दर बाहिर, तूं सुर भूपन भूप॥
आप तूं. ॥ १॥
जेते सन्त महन्त ऋषि मुनिगण, तापसी ते भजे आदि।
सबहि तुम्हारो ध्यान धरे बन, तूं अज अति अनूप॥
आप तूं. ॥ २॥
ऐसी अपनी प्रभुताई की सुधि सकल विसराई।
आदि मध्य अन्तनहिं जिहि में, अब मैं दऊ कवन की ऊप॥
आप तूं. ॥ ३॥
ये सब जगमग ज्योति तुम्हारी सो कबहु लुप्त न होई।
ऐसो तेज तुम्हारो कहिये झक मारे रवि धूप॥
आप तूं. ॥ ४॥

यहि विधि समझ निमग्न होयके, निज मति तहां ठहराई।
कहत नित्यानंद बहुरि समझ मति, छांड फटक जिमि सूप॥
आप तूं. ॥ ५॥

**दोहा।**

फिर कहता तुझको सखे, गुरु मंत्र यक सार।
तज असार गह सार को, करे वीर! मत वार॥

## १८. वासना त्याग।

**प्रभाती**

वासना विसार डार, येही तो बड़ी बात रे॥ टेक
इन्द्रियन को संगत्याग, विषयन से दूर भाग।
प्रभुजी के चरण लाग, दिन बीते जात रे॥ १॥
अहंकार में न फूल, ममता पे डार धूल।
झूठी काया मे न फूल, सच्ची मैं बतलात रे॥ २॥
निज धरम की ओर जाग, दुर्जन से दूर भाग।
सन्तन के चरण लाग, जम से जे छुड़ात रे॥ ३॥
सर्व ठौर सर्वकाल, नित्यानन्द को संभाल।
निर्भर वो ही मंत्र जाप, खात और खिलात रे॥ ४॥

## १९. आशा का त्याग।

**पद राग दादरा**

जाल मोरे प्यारे!
आशा की फांसी को जाल॥ टेक
आशा की फांसी तेने डाली गले में
आशा नचावे ज्यूं व्याल॥ १॥ जाल मोरे.
आशा ही कर दुःख भोगे तूं निश दिन
आशा ने कियो पामाल॥ २॥ जाल मोरे.
आशा ही अति तेरो शत्रु जे कहिये
मारे कलेजे में साल॥ ३॥ जाल मोरे.

**दोहा।**

मंगल मूरति आपतूँ; तजहु पराई आश।
जग मंगल मंगल नहीं, मंगल स्वयं प्रकाश॥

## २०. ममता का त्याग।

**पद राग दादरा**

काट मोरे प्यारे, ममता के धागे को काट॥ टेक॥
ममता ही ऐसो तुझे, बाँध्यो पकड़ के।
ममता छुड़ाई सुवाट॥ १॥ काट मोरे.
ममता ही तुझे, दशो दिश भरमावे।
ममता नचावे ज्यूं नाट॥ २॥ काट मोरे.
ममता के वश भयो, भूल्यो तू आप जाप।
जाते मिल्यो ना सुघाट॥ ३॥ काट मोरे.
कहत नित्यानंद, तबहीं तूं दीन भयो।
खो लीजे मिथ्या तू हाट॥ ४॥ काट मोरे.

**दोहा।**

तार नहीं तन पे रति, मनपे नहिं संसार।
चहे विरक्त चहे गृहस्थ हो, शीघ्र होय भव पार॥ १॥

## २१. नर तन।

**कुण्डलिया**

साज सुभग अबके मिल्यो, पुण्य पुञ्ज यह तात।
तामें निज पद चीनिये, मान हमारी बात॥
मान हमारी बात, दूर तन होवे छिन में।
पुनि चले ना जोर, बात रहे मन की मन में
ये कहे निज नित्यानन्द, तुझे अतिशय कर सांची।
पुनः होय आनन्द, रहेना सज्जन कांची॥

**दोहा।**

देह दृष्टि कर होत हैं, जग के विविध व्यवहार।
कोऊ गुरु कोउ शिष्य है, कोउ पुरुष कोउ नार॥ १॥

## २२ सत्कर्म असत्कर्म।

**कुण्डलिया**

दान भजन दुख में करे, सुख में करे न कोय।
जो कोई सुख में करे, तो दुख काहे को होय॥
दुःख काहे को होय, दुःख हाथन से करते।
करके हाहाकार, दोषत हरि ऊपर धरते॥
ये कहे निज नित्यानन्द, मन्दमति सुन नर तोरी॥
करो भजन अरु दान, मिले भव सम्पति बहोरी॥

## २३ निःस्पृहतायुक्त भजन।

**कुण्डलिया**

तात मात वनितादिजन, त्याग कियो वन-वास।
लगी प्यास हरि भजन की, जात वृथा निज श्वास॥
जात वृथा निज श्वास, भजन अब कर मन मोरा।
निकल जायगा श्वास, अन्त फिर रहेगा कोरा॥
ये कहे निज नित्यानन्द, चले नहिं तब कुछ जोरा।
बिखर जाय सब ठाठ, रहे नहिं यह तन गोरा॥

## २४. प्रभु स्मरण।

**पद राग-भैरवी**

जाको नाम लियो दुख छीजे, जैसे पृथ्वी जल बरसन से।
रोम रोम सब भीजे, जाको नाम लिये दुख छीजे।टेक॥
नाम जिनका रट्या ध्रुवजी, मात वचन शिर धरके।
पल भर उर से नहीं विसारयो, मर्द तिसी को कहिजे।जाको.

पाँच वरष की अल्प अवस्था, राज पाट सब तजके।
जाय बसे बन माहिं अकेले, यह राज अटल मोहिं दीजे।।जाको.
ऐसी टेर जब सुनी श्रीहरि ने, आय दरस प्रभु दीने।
कही श्रीमुख से सुनहु ध्रुवजी, ये राज अटल तुम लीजे।।जाको.
ऐसी दृढ़ भक्ति जे करते, ते जन जग को जीते।
कहत नित्यानन्द यार चित्त सुन, अब ऐसा अमित रस पीजे।।जाको.

**दोहा।**

सत्य सार संसार में, भजे सत्य परवीण।
नाम जपे नामी मिले, होय जासु में लीन।।१ ।।

## २५. भगवद्भजन।

### पद राग सोहनी

है भक्त वो भगवान को, श्रीभगवान को संतत भजे।।टेक।।
खाते पीते बैठते, उठते वा- सोते जागते।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को संतत भजे।। १ ।।
है भक्त.।
पूजन करे भोजन बनाके, थाल प्रभुजी को धरे।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को संतत भजे।। २ ।।
है भक्त.।
प्रसाद पावे प्रेम से ते, तुरत भवसागर तरे।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को सन्तत भजे।। ३ ।।
है भक्त.।
अनर्थ करे नहिं देह से, ऐसे हुए अरु होयँगे।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को सन्तत भजे।। ४ ।।
है भक्त.।
भक्त ऐसा होणा होतो, पूर्व कीये सो कृत्य करे।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को सन्तत भजे।। ५ ।।
है भक्त.।

**दोहा।**

परब्रह्म पूजा करे, अपर ब्रह्म की मीत।
अपर ब्रह्म परब्रह्म के, भोग लगावत नीत॥ १॥

## २६ सकाम उपासना

**कुण्डलिया**

एक पैर से होय खड़ा, करे हरी का ध्यान।
मन में राखे कामना, पूजे हमें जहान॥
पूजे हमें जहान, ध्यान में धरतें धनका।
मिले हमें कुछ द्रव्य, इष्ट ये उनके मनका॥
ये कहे निज नित्यानन्द, अवधि यूं गई सब तिनकी।
मिल्यो नहीं कछु सार, फिरे ज्यूं घर घर भिनकी॥

## २७ निष्काम उपासना।

**कुण्डलिया**

दास भक्त प्रह्लादजी, भक्तों में शिर नाम।
श्रीराम निशिदिन रटत, निश्चय में निष्काम।
निश्चय में निष्काम, पिता की एक न मानी।
बहु निज पायो कष्ट, कही पितु जे जे वाणी॥
ये राखी तिनकी देह, आय भूपर गिरधारी।
कहे नित्यानन्द नित धन्य, गति पितु मात सुधारी॥

## २८ अद्वैतोपासना।

**कुण्डलिया**

व्यारा न्यारा जे भजे, ते दुःख सहे अपार।
मार पड़े यमराज की, तब को ना सुने पुकार॥
कोना सुने पुकार, चलेना तब कुछ जोरा।
पुनः चलेना जोर, यार तहाँ पर भी मोरा॥

ये कहे निज नित्यानन्द, उदय जब दिन कर होवे।
विलय अज्ञतम होय, रूप परिपूरण जोवे॥

## २९ जगत् जाल।

### पद-राग-गजल।

जन बात को विचारो, तुम कौन यहाँ तिहारो॥ टेक॥
ये जगत जाल सारो, मट्टी से नाहिं न्यारो।
तुम कहते हो हमारो, दु:ख रूप मर्म जारो॥ १॥
हरि नाम को ले सहारो, दुनिया से हो के न्यारो।
लखिये शिव रूप तिहारो, ये सुपना को खेल सारो॥ २॥
तिसकी सुधि विसारी, दुनिया से कीनी यारी।
कर यार से तूं यारी, कहुं मान कंठ भारो॥ ३॥
नित्यानन्द कहे हो न्यारो, सन्तों को ले सहारो।
तब होय भव से पारो, ये तन जात बीतो धारो॥ ४॥

### दोहा।

मेरे चित चिन्ता नहीं, मेरा चित निश्चिन्त।
तेरे चित चिन्ता घनी, नैनन में दरसन्त॥

## ३०. स्वप्नवत् जगत्।

### कवित्त

जगत् जैसे रैन सपना, जामें नाहीं कोई अपना,
मोह के जाल जंजाल में न फंसना।
पुनि मात तात सुत नारी, धन धाम प्रीति प्यारी,
देख मिथ्या सब इनकी यारी तूं जान जेम सहना॥
वो प्रीति इनसे अन्त करो, श्रीराम नाम चित्त धारो,
अब दान पुण्य नित्य करो, तूं खेंच वृति रसना।
चेत संग तेरे चले सोई, जे करो काज यार वोई,
ये कहत नित्यानन्द, ते खोटे संगहु से बचना॥

## ३१ मिथ्या जगत्।

**कवित्त**

रे मट्टी का है मात तात, जे मट्टी का है मित्र भ्रात,
मट्टी का है बहन भ्रात, सो मट्टी का तूं आप है।
ये मट्टी का है धाम गाम, मट्टी का है खान पान,
मट्टी का है वस्त्र वित्त, मट्टी तपे तीनों ताप है॥
पुनि मट्टी का है राग रंग, मट्टी का है शास्त्र जंग,
मट्टी का है अङ्ग संग, मट्टी देख! दीखे साफ है।
मट्टी का ही होय नाश, ये रहती मट्टी नित्य पास,
मट्टी बिन रहता उदास, तूं जपे खोटा जाप है॥

**दोहा।**

सुरत चराचर दीखती, तोउ न देखे अङ्ग।
हठ योगी हठ ना तजे, करे बचन गुरु भङ्ग॥

## ३२ पंच भूतात्मक संसार।

**कुण्डलिया छन्द**

भूत प्रेत संसार में, देखत हैं नर-नार।
पंच भूत प्राणीन में, है चेतन के अधार॥
है चेतन के आधार, दूसरा और न कोई।
करके देख विवेक, रूप तेरा है सोई॥
ये कहे निज नित्यानन्द, भरम को देवो बहाई।
सत् चित आनन्द रूप लखो तबही सुख पाई॥

**दोहा।**

तात निरञ्जन देव के, सुत देखे हम चार।
सुत रागी त्यागी पिता, कहे गुरु व्यास पुकार॥ १॥

## ३३ असंग महत्व।

### कुण्डलिया

ना कोउ आया संगमे, ना कोउ जावे संग।
बन्यो खेल संसार को, मिथ्या लखिये अङ्ग॥
मिथ्या लखिये अङ्ग, कहूँ तोसे मैं सारी।
तू कर देख विवेक, करे क्यों तिन से यारी॥
ये कहे निज नित्यानन्द, दु:ख तिनमे अतिभारी।
याते तिन तज अङ्ग, आप निज रूप सुखारी॥

## ३४ देहाभिमान निषेध।

### कुण्डलिया छन्द

रे मन! मूरख बावरे! किस पर करत गुमान।
हाड चाम का पूतला, होयगा राख समान॥
होयगा राख समान, प्रीत इसकी अब त्यागो।
इसमें नहिं कुछ सार, ईश सुमिरन में लागो॥
ये कहे निज नित्यानन्द, जगत् में रहे न कोई।
आना उसका धन्य, गुप्त पद खोजे सोई॥

## ३५ माया का खेल।

### कुण्डलिया छन्द

माया तेरे ख्याल का, अजब तरह का जाल।
उसमें फंस कर छूटना, बड़ा कठिन है हाल॥
बड़ा कठिन है हाल, हृदय में साल लगावे।
देती दु:ख अपार, विविध विधि नाच नचावे॥
ये कहे निज नित्यानन्द, गुरू कृपा जब होवे॥
जीत कठिन संग्राम, निरन्तर सुख से सोवे॥

## ३६ सत असत।

**कुण्डलिया छन्द**

तीन अंश सत जाणिये, दोय जाण व्यतिरेक।
पंच अंश में विश्व यह करके देख विवेक॥
करके देख विवेक, भजन कहूँ ये कर प्यारे।
क्यों जलता त्रय-ताप, ताप छूटें तब सारे॥
ये कहे निज नित्यानन्द, भरम का भूत उड़ावो।
तब निर्वाण स्वरूप, आप निज घट में पावो॥

## ३७ विवेक।

**पद राग- प्रभाती**

कर विवेक धर ध्यान विप्रवन, तुझको प्रभु से मिलना होतो॥ टेक॥
तन सुखाय पिंजर कर डारा, नहीं रैन दिन तूं सो तो।
अपनी मूरखता से मूरख, अपनी सुन्दर आयू खोतो॥
कर विवेक.॥ १॥
तुझको सब पण्डित जन कहते, हाड़ चाम को तूं धोतो।
सम दृष्टि होवे पण्डित की विषम वृष्टि से तूं जोतो॥
कर विवेक.॥ २॥
करना था सो काज किया नहिं, बकता मेरो बेटो पोतो।
काल वलीका बन्या चबीना, उसके उनको लाग्यो नोतो॥
कर विवेक.॥ ३॥
कर वेराग सबन से पण्डित, निर्मल गंगा में खा गोतो।
समझ सेन गुरु कहे नित्यानन्द, नहीं समझे तो तूं फिर रोतो॥
कर विवेक.॥ ४॥

## ३८ अधकचरे

अर्ध दग्ध हो रहे हैं, नहिं वैराग्य तीव्र तर्र है।टेक॥
नहिं भोग भोगते हैं, नहिं जोग कमाते हैं।
हैं प्रधान अजान हरके, उनहीं को कहते खर्र हैं॥ १॥

मारे शरम के मरते, वे सत्-संग नाहिं करते।
गुरु बन के बोध करते, बिन जल के खाली सर्र हैं॥ २॥
बड़े नाम को रखाया, नहिं स्व स्वरूप पाया।
तू बाबा बना गृहस्थी! बैठा तू घर का घर्र है॥ ३॥
अज्ञान का विरोधी- एक ज्ञान कहते सन्तो!
मिले ज्ञान गुरू कृपा से, गुरु लख तू! गुरु निर्डर है॥ ४॥

**दोहा।**

स्वाँग बनाया संत का, बने न दिल से सन्त।
बीत-रागऽखिल संतजन, हैं सन्त एक भगवन्त॥ १॥

## ३९ समदृष्टि।

**कुण्डलिया छन्द**

सम शत्र अरु मित्र में, सम पुनि ऊंच अरु नीच।
दु:ख सुख में सम ते सदा, ते नर शिव भव बीच॥
ते नर शिव भव बीच, बिघन ना देवे किसको॥
और जे दे कोई विघन, नहीं वे माने उसको॥
ये कहे निज नित्यानंद, ब्रह्म वेत्ता जे कहिये।
ताके गुण हम भणे, बहुरि शान्ति सुन लइये॥

## ४० सांसारिक हवा।

**कुण्डलिया छन्द।**

आया एक ही घाट ते, जाना एक ही घाट।
हवा लगी संसार की, हो गये बाटो बाट॥
हो गये बाटो बाट, कोऊ की कोऊ ना माने।
अपना गृह गये भूल, करे बहु एंचा ताने॥
तिन की यह गति देख, नित्यानन्द मन मुसकावे।
पुरुषारथ से हीन, मूढ़ वृथा दुख पावे॥

## ४१ स्वरूप - विस्मृति।

### कवित्त

या बाघ हू के वन मांहि, अजाहू को काम कहा,
बाघहू को अहार अजा पेखिए, विचार के।
याते अजा बाघ एक ठाम, नहीं रहत यार,
तब होत संयोग बाघ, खात अजा मार के॥
बाघहू के वन मांहि, बाघहू के रहत भ्रात,
ते और जीव जन्तुहु का, प्राण हरे धार के॥
रे! याते बाघहू को संग, करो प्रेमहु से अंग,
कहत नित्यानन्द जङ्ग जीत जङ्ग हार के॥

## ४२. स्वरूप-विस्मृति से दीनता।

### कुण्डलिया छन्द

बाघ रूप निज भूल कर, भयो शियाल मति हीन।
बाघ भूल श्यालहि भयो, तबही भयो अति दीन॥
तबहि भयो अति दीन, बाघ की सुधी विसारी।
बन बैठो निज श्याल, निशि मारे किलकारी॥
ये कहे निज नित्यानन्द, श्याल रहे पुर के मांही।
रहे बाघ बन मांहि, नही भय उर में ताही॥

## ४३ स्वरूप-महत्व।

### कुण्डलिया छन्द

नाथन का तूं नाथ है, तूं क्यों बने अनाथ
देख प्रभुता आप की, छोड़ देह का साथ॥
छोड़ देह का साथ, देह तेरी नहिं बन्दे॥
तूं जड़ का सिर ताज, भूल कर क्यों तूं बन्धे॥
ये कहे निज नित्यानन्द, अटल तूं लगा समाधि।
तूं नाथन का नाथ, तोमें नहिं लेश उपाधि॥

## ४४ स्वरूप-रहस्य

### कुण्डलिया छन्द

बादल दौड़े जाते हैं, दौड़त दीसे चन्द्र।
देह सङ्ग यूं आत्मा, चलता कहै मतिमन्द॥
चलता कहै मति मन्द, आत्मा अज अविनाशी।
हलत चलत ये देह, श्री मुख कृष्ण प्रकाशी॥
ये कहे निज नित्यानन्द, भ्रम मती है सब फाँकी।
लख्यो कृष्ण निज रूप, रह्यो नहिं अब कोइ बाँकी॥

## ४५ आत्म-स्वरूप।

### सवैया।

शान्तं स्वरूप अनूप विषे,
कहो पाप वो पुण्य बने किमि भाई।
आतम ब्रह्म विचार मति,
जिसमें गुरु शिष्य की गम्यज नाही॥
दूर नहीं नजदीक नहीं,
सोई शुद्ध स्वरूप सभी घट माही।
व्योम जो व्यापक नित्य ध्रुव,
सोई आप तूं जान कहूं तोहि तोई॥

## ४६ आत्म-दृष्टि

### कुण्डलिया छन्द।

जीव जीव सब एक हैं, नहीं जीव में भेद।
भेद उपाधी मन करे, मुनि जन कहे सत वेद॥
मुनि जन कहे सत वेद, वेद की सुनी अब बानी।
लखते सन्त सुजान, विवेकी अतिशय ज्ञानी॥
तूं क्यों करता राग, द्वेष मत्सर अभिमानी।
ये निश्चय कर मित्र, फिरे ना तब चवखानी॥

## ४७ वाचक ज्ञान और आनुभविक दृष्टि।

**गजल कव्वाली**

जुवाँ पलटी सुनी हमने, निगाह पलटी नहीं बकता॥ टेक॥
जुवाँ पलटी निगाह पलटी, निगाह पलटी जुवाँ पलटी।
बचन वक्ता का सुन श्रोता, अविद्या नींद से जगता॥ १॥
देखले वकतां कूं वकता, जो होना होय तो वकता।
नेम नहीं जातिका कोई, पाई पैसा नहीं लगता॥ २॥
अनातम काम में पैसा, हजारों खर्चना तकता।
तरण तारण बने छिन में, जिमि रवि देख तम भगता॥ ३॥
जुवाँ का जब मज़ा पावे, निगाह जुवाँ छोड़ नहीं जावे।
दोउ तब एक होजावे, खरा उसको कहें वकता॥ ४॥

**दोहा।**

स्वान पदारथ देख कैं, भूंसत सब ही ठौर।
वकता उभय प्रकार के, एक खरो एक चोर॥ १॥

## ४८ ब्रह्म-विचार

**ग़ज़ल राग चलत**

जन ब्रह्म को विचारो, नहिं ब्रह्म तों सें न्यारो॥ टेक॥
घृत दूध ज्यों मिल्या तूं, इस विश्वरूप में है।
उसके विराट तनको, संसार यह पसारो॥
जन ब्रह्म को.॥ १॥
जब तक न जान लेगा, उस सौम्य सिन्धु को तूं।
जग जाल से न तब तक, होता तेरो उधारो॥
जन ब्रह्म को.॥ २॥
तन चाम मांस को यह, सब जान तूं पसारो।
इसको तूं जाने अपनो, यही तो कष्ट भारो॥
जन ब्रह्म को.॥ ३॥

माया प्रपंच से तूं, उन्मत्त क्यों बना है।
नित्यानन्द की दुआ से, निज अज्ञता निवारो॥
जन ब्रह्म को.॥ ४॥

## ४९ आत्म-निरीक्षण

**कवित्त।**

आंख में तूं राम देख, कान में तूं राम देख,
नाक में तूं राम देख, देख मुक्ख में तूं राम है।
हाथ में तूं राम देख, पाद में तूं राम देख,
पायु में तूं राम देख, देख राम काम नाम है॥
मन में तूं राम देख, ऽहंकार में तूं राम देख,
चित्त में तूं राम देख, बुद्धि रामजी का धाम है॥
प्राण में तूं राम देख, अपान में तूं राम देख,
उदान समान आदी राम, दृष्यजे तमाम है॥

## ५० चेतन की व्यापकता।

**कवित्त**

सज्जन मांहीं चेतन तूं, दुर्जन मांहीं चेतन तूं,
सिन्धु मांहीं चेतन तूं, है चेतन तूं गङ्ग में।
रे हर्ष मांहीं चेतन तूं, वो रञ्ज मांहीं चेतन तूं,
जे अमीर मांहीं चेतन तूं, चेतन तूं नंग में॥
लख पशु मांहीं चेतन तूं पक्षी मांहीं चेतन तूं,
देख अन्न मांहीं चेतन तूं, चेतन तूं जंग में।
ते पहाड़ मांहीं चेतन तूं, झाड़ माहीं चेतन तूं,
जहाँ देखूं तहाँ चेतन तूं, चेतन राग रङ्ग में॥

## ५१ चेतन की सर्वत्रता।

**कवित्त।**

रोग मांहीं चेतन तूं, बूंटी मांहीं चेतन तूं,
ईश मांहीं चेतन तूं, चेतन अर्धांग में।
चेतन स्वरग मांहीं, चेतन नरक मांहीं,
चेतन मनुष्य देव, आदि सब अङ्ग में॥
जे चेतन अखंड ब्रह्माण्ड मध्य पिंडहु में,
चेतन असंग देख सबहु के सङ्ग में।
चेतन तूं आप खुद, चेतन को दूर माने।
कहे नित्यानन्द यार रङ्ग इस रङ्ग में॥

## ५२ आत्म-स्वरूप की विशेषता।

**कुण्डलिया छन्द।**

गोपति तूं गोविन्द है, तेरी गति अपार।
जाने बिरला सन्त जन, कहे अलमस्त पुकार॥
कहे अलमस्त पुकार, सुनो जिज्ञासू प्यारे।
हरि जन संख्या सन्त, सत्य गोविन्द उचारे॥
यह कहे फिर अलमस्त पुकार, दूर गोविन्द न देखो।
सब घट मठ के मध्य, अखण्ड ज्योती वहि पेखो॥

## ५३ जीव ब्रह्म की एकता।

**कुण्डलिया छन्द।**

वोही बीज वोही मूल है, वोही डाल पत फूल।
वोही मधुर होय झाड़ के; रहा शीश पर झूल॥
रहा शीश पर झूल, भरम ते भासे न्यारा।
हाटक ते नहिं भिन्न, देख दागीना सारा॥
ये कहे निज नित्यानन्द, मोक्ष ज्यां बन्ध न कोई।
सो लख निज मति मान, निरंतर सुख से सोई॥

## ५४ परमानन्द स्वरूप।

### पद राग होली।

आपतूं पूरण परमानन्द, तामो भूल भयो विषयानन्द।
तबहि भई मतिमन्द॥ टेक॥
नही पंच ज्ञान इन्द्रिय तह, नहीं पंच कर्म इन्द्रिय।
नहीं पंच वो प्राण चतुष्ठे, अन्तः करण स्वच्छन्द॥ १॥
पञ्च कोष गुण तीन नहीं तहां, तीन देह किमि होई।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति नाहीं, तुर्या तीत निर्द्वन्द॥ २॥
पञ्च भूत पच्चीस तत्व तहाँ, मैं मेरा कछु नाहीं।
संचितऽगामी क्रियमाण कर्म, तिनते तूं निर्बन्ध॥ ३॥
एक आप चेतन तूं स्वामी, चारों खानि में जानी।
सिन्धु फेन तरङ्ग जान जिमि, आतम पूनमचंद॥ ४॥
यहि विधि समझ आप अपन में, ज्ञान मौन चित धारी।
कहत नित्यानंद पुनः समझमति, छांड सकल कुफंद॥ ५॥

### दोहा।

पुरुषोत्तम के पर उभय, मुझ को होवे भान।
सो शक्ति सति सकय प्रभु, पुरुषोत्तम भगवान॥

## ५५ निजानन्द विचार, अर्थात् सद्‌गुरु उपदेश द्वारा शिष्य की बोध प्राप्ति।

### पद राग होली बसन्त।

कहीं गयो नहीं वो आयो, गुरुजी घट मांही बतायो।टेक॥
जिस वस्तु को मैं बन बन धायो, बहुतसो कष्ट उठायो।
वास व्रत जप कीना भारी, तो भी पतो नहीं पायो॥
बहुत मैं इत उत धायो, कहीं गयो नहीं वो आयो॥
गुरुजी.॥ १॥

अब गुरूजी के आय शरण में, शिव निज रूप लखायो।
कहा कहूं उस सुख की महिका, जिमि गूंगा गुड़ खायो॥
मोरे मन मांहीं समायो, कहीं गयो नहीं वो आयो॥
गुरूजी.॥ २॥

ऐसे गुरूजी को कहा भेट करूं, जिनसे परम पद पायो।
और कछु वो लेवत नाहीं, नमस्कार बन आयो॥
फिर निर्भय सुख छायो, कहीं गयो नहीं वो आयो॥
गुरूजी.॥ ३॥

नित्यानंद के गुप्त तत्व को, गुरूजी ने शब्द सुनायो।
सुनते ही तुरत लख्यो हृदय में, जग को भर्म नसायो॥
मूल अज्ञान बहायो, कहीं गयो नहीं वो आयो॥
गुरूजी॥ ४॥

## ५६ शिष्य का अनुभवोद्‌गार।

**पद राग कल्याण।**

आज भयो चित्त चैन! हमारे आज भयो चित्त चैन॥ टेक॥
पूत कपूत भयो कुंख मोरे, पंगु बधिर बिन बैन॥ १॥
रजनी मध्य जनम शिशु लीनो, बिन कर धड़ मति नैन॥ २॥
ताको मोद भयो अति मों मन, मगर रहूं दिन रैन॥ ३॥
कहत नित्यानन्द उल्टी वाणी, विप्र शान्ति भज सैन॥ ४॥

## ५७ शिष्य की कृतज्ञता।

**पद राग कल्याण।**

सत्‌गुरु दीन दयाल, हमारे सत्‌गुरु दीन दयाल॥ टेक॥
जिनकी कृपा कटाक्ष भई तब, कलिमल दह्यो पिनसाल॥ १॥
हमारे.
गरुतत्व को कर्म लख्यो निज, अतुल अमोल जे माल॥ २॥
हमारे.

मात तात पत्नी सुत बांधव, ले न सके कोउ वाल॥ ३॥
हमारे.
बन्दूं गुरु पद दोऊ जोर कर, मैं नित्यानंद त्रियकाल॥ ४॥
हमारे.

## ५८ शिष्य की सफलता।

**पद राग कल्याण**

सफल भये सब काज, हमारे सफल भये सब काज॥ टेक॥
मन बुद्धि चित अहंकार इन्द्रिय, दश प्राण भये सम आज॥
हमारे सफल.॥
शान्त स्वरूप अनूप अनादि, अखिल मिल्यो निज राज॥
हमारे सफल.॥
पूर्व पुण्य प्रगट भयो सजनी, करहु राज सत गाज॥
हमारे सफल.॥
कहत नित्यानंद अखिल अगोचर, अचल सजे मन साज॥
हमारे सफल.॥

## ५९ शिष्य का आनन्द।

**पद राग कल्याण**

आज भयो चित मोद, हमारे आज भयो चित मोद।टेक॥
ऐसो दिवस भयो शुभ जेहि कर, ओज भयो मम बोध॥१॥
मूला अविद्या है तूं जनम की, ताहि जलाई मैंने खोद॥२॥
करना था सो काज किया हम, अब ना रही कछु शोध॥३॥
देखे नित्यानंद नित्य सुख लीला, जानहि बोध अबोध॥४॥

## ब्रह्म-पद की प्राप्ति।

**पद राग भैरवी**

मेरो रूप मैं पायो।
श्री गुरुजी, शरण आपकी आके।टेक॥

लख चौरासी योनि भुगत के, मानुष देह अब पाके।
लख चौरासी सबही छूटी, श्री गुरु श्री मुख भाखे॥१॥
इस संसार में सार नहीं है, पामर होय सो भटके।
हम इसकी सब जान पोल अब, विषयुत विष जो फाके॥२॥
तीनहिं लोक अरु चौदा भुवन को, राज करे दे डंके।
ऐसो राज दियो सत् गुरूजी, ताहि पाय हम छाके॥३॥
मोह ममता अरु मान बड़ाई, अन्त किये निज तन के।
नित्यानन्द ब्रह्म-पद पायो, श्री गुप्त गुरू पद ध्याके॥४॥

## (७) ऋद्धि सिद्धि।

(ज्ञानी की ऋद्धि सिद्धि की ओर अलक्ष।)

**चौपाई**

(१)

ऋद्धि सिद्धि नाले पर धाओ।
वारि संघ बहेना बहे जाओ॥
मूरख की मति को भरमाओ।
मोरे निकट रति मत आओ॥

(२)

कामी फिरे कामिनी संगा।
मतीहीन माने बड़ी चंगा॥
देख नारि नर के संग आवे।
पांच पंच परणा कर लावे॥

(३)

जाको लाज रति नहिं आवे।
पुरुष नाम जग मांहि कहावे॥
पुरुष नाम को मूढ़ लजावे।
लीला निरख नित्यानन्द गावे॥

(४)

ऋद्धि सिद्ध से करे जो यारी।
वो प्राणी पावे दुख भारी॥
ऋद्धि सिद्धि नरकों में डारे।
सत्य बचन मुनि व्यास उचारे॥

(५)

व्यास वचन को पढ़े बिचारे।
निज मूरखता नाहिं निकारे॥
ऋद्धि सिद्धि जिसने दी त्यागी।
वो भव सागर गयो उंलागी॥

(६)

अभय वस्तु जग में जब पावे।
सत्गुरु शरण प्रेम से आवे॥
हठ योगी हठ करे अपारा।
कठिन छूटना दुख संसारा॥

(७)

पाखंडी पाखंड सिखावे।
ऋद्धि सिद्धि को रडे रडावे॥
ऋद्धि सिद्धि तद्दपि नहिं पावे।
भूखा मरे कन्द फल खावे॥

(८)

बिना मौत मूरख मर जावे।
मन इच्छित फल रती न पावे॥
श्रीहरि श्रीमुख से समझावे।
ऋद्धि सिद्धि भव माँहि डुबावे॥

(९)

कचित पुरुष जग में सुख पावे।
केवल वे प्रभु के गुण गावे।
ऋद्धि सिद्धि दोउ चमर ढुलावे।
नाचे सन्मुख मंगल गावे॥

(१०)

मूरख रिद्धि सिद्धि को रोवे।
आशा में आयु सब खोवे॥
अपना गुण अवगुण नहिं जोवे।
सुख से रैन दिवस नहिं सोवे॥

(११)

तज मूरखता मूरख प्राणी।
ऋद्धि सिद्धि सुन्दर तन जाणी।
ठगनी ठगे फिरे चवखाणी।
कहे निज नित्यानन्द सत् वाणी॥

# (८) ज्ञानी के लक्षण।

## १. जीव सदा शिव रूप।

### पद राग कल्याण

जीव सदा शिव रूप।
चराचर जीव सदा शिव रूप॥टेक॥
ऐसो ज्ञान भयो घट जाके, सो जन बुद्धि अनूप॥१॥
शिव कल्याण स्वरूप सदा निज, भणे श्रुति मुनिवर भूप॥२॥
ऐसी दृढ़ भई मति जाकी, सो न पड़े भव कूप॥३॥
पेख नित्यानंद अद्भुत लीला, बहुरि भयो चित चूप॥४॥

## २. ज्ञानी की दृष्टि।

### पद राग मल्हार

मों सम कौन बड़ो घरबारी।
जा घर में सपनेहु दुख नाहीं, केवल सुख अति भारी।टेक॥
पिता हमारा धीरज कहिये, क्षमा मोर महतारी।
शान्ति अर्थ अंग सखि मोरी, बिसरे वो नाहिं बिसारी॥
मों सम.॥१॥
सत्य हमारा परम मित्र है, बहेन दया सम वारी।
साधन सम्पन्न अनुज मोर मन, मया करी त्रिपुरारी॥
मों सम.॥२॥
शय्या सकल भूमि लेटन को, बसन दिशा दश धारी।
ज्ञानामृत भोजन रुचि रुचि करूं, श्रीगुरू की बलिहारी॥
मो. सम.॥३॥
मम सम कुटुम्ब होय खिल जांके, वो जोगो अरु नारी।
वो योगी निर्भय नित्यानन्द, भय युत दुनियादारी॥
मों सम.॥४॥

## ३. अज्ञानी की दृष्टि।

### पद राग मल्हार

जग में प्राणी दुखी घरबारी।
अष्ट प्रहर चौसठ घड़ी जिनके, भय उर में अति भारी।टेक॥
घर जिनके लकड़ी मिट्टी को, सो जंगल की बारी।
पर घर को अपनो घर माने, वरणाश्रम लख चारी॥
जग में.॥१॥
दुख में सुख बुद्धि नृप मानत, मिथ्या महल अटारी।
तिनमें क्लेश होत निशि वासर, लेश चले ना लारी॥
जग में.॥२॥

प्रभु की प्रभुताई नहीं जानत, कहे शठ म्हारी म्हारी।
जो कोऊ सत्य बच्चन कहो उनको, अतिशय लागत खारी॥
जग में.॥३॥

पर घर तज अपने घर टोवे, सो निचंत नर नारी।
कहे अलमस्त नित्यानन्द स्वामी, तिनको मो बलिहारी॥
जग में.॥४॥

## ४. नरों में क्वचित विवेकी।

### पद राग मल्हार

क्वचित् विवेकी होवे,
नरों मां नर क्वचित् विवेकी होवे।टेक॥
जो दर्शन करते श्री हरि का.
अज्ञ दरशन कारण रोवे॥१॥
है असंग संग में श्री हरिजी,
सब तेरा गुण अवगुण जोवे॥२॥
ढूंढत बन पर्वत तीरथ में,
वृथा आयु सुन्दर शठ खोवे॥३॥
रजनि दिवस चैन नाह अज्ञ को,
सुन अलमस्त निचंत से सोवे॥४॥

## ५. ज्ञानी बड़भागी।

### पद राग सोरठ मल्हार

वोई बड़ो बड़ भागी-
नरों मां नर वोई बड़ो बड़ भागी।टेक॥
जिनकी लगन चरण कमलन में,
श्री हरि गुरूजी की लागी॥१॥
तृणावत् भोग वैभव सब तज के,
होय अन्दर से त्यागी॥२॥

वो पुरुषोत्तम पुरुष कहावे,

जिनकी सूती निज मति जागी ॥३॥

वो अलमस्त रहे निशि वासर,

नहिं वैरागी रागी ॥४॥

## ६. अज्ञानता से सावधानी।

**सवैया**

बीत गई हमरी तुमरी कछु,

और रही सो वो बीत रही है॥

हे प्रिय मीत! प्रवीण महा मति,

तेह अज्ञान महा भट अही है॥

एहि गिले हमको तुमको,

बचे नहिं चित्त गिले कहूं सही है॥

कोई बचे बड़ भागिय महा मति,

जो मोहि सूझ पड़ी सो कही है॥

## ७. ज्ञानी और अज्ञानी ।

**कवित्त।**

ज्ञानी जन ऐरावत जैसे, तदपि अज्ञ डरे भय से।

पायो नाहीं वेद रहस्य, केवल कोरम कोर है॥

ज्ञानी खुद बनत आप, कथत ज्ञान दिवस रात।

करी मान मदिरा पान, ते बकत मोर तोर है॥

बुद्धि में पड़यो अज्ञान, वो कैसे होवत ब्रह्मज्ञान।

मानत आपको महान, वे बुद्धि जैसी ही ढोर है॥

तूं वाको ज्ञानी जानि अङ्ग, रे जाकी वृति रहे असंग।

जीते वोही अज्ञ जंग, जन श्रेष्ट जग में थोर है॥

## ८. ज्ञानी अज्ञानी का वर्णन।

**कवित्त।**

ज्ञानी गजराज सम, देखे नैन हूं से हम।
धाम त्याग मढ़ी बांध, करे अज्ञ राग है॥
कटि में लंगोटी एक, वो भी दीनी खोल फेंक।
चित्त चिन्ता अग्नि मध्य, जले जेम आग है॥
भेख भी बनायो पर, मजोहू न पायो आप।
एते किये स्वांग तोऊ, मति जेम काग है॥
ज्ञानी जाको कहे वेद, वाके पूर्ण है निर्वेद।
जाको नाहिं रति खेद, वाको धन भाग है॥

## ९. ज्ञानी अज्ञानी का भेद।

**कवित्त।**

ज्ञानी जन ऐरावत जैसे, मोह माया मध्य अन्ध धसे,
पुनि माया की नदिया में, खुद देखो बहे जात हैं ।
है गृन्थि हृदय में विशाल, वाको नहीं जे रति ख्याल,
वे तो मति हीन चौड़े चौड़े, रे पामर दर्शात हैं॥
जे गृन्थि को न कीनो नाश, उल्टी गले में डारी फांस,
वे तो अवश्य होय नाश, ये तात सत्य बात है।
ऐरावत की देत ऊप, कहां कंगाल कहां महीभूप,
दीखे चेरे पे यार रूप, वो प्रत्यक्ष दिखलात है॥

## १० ज्ञानी अज्ञानी का व्यवहार।

**कवित्त।**

कल्याण के निमित धन धाम मात तात वाम।
पुत्र वो परिवार, प्राण तजे सो पुमान है॥
बिनाही अपराध शठ, पेट के निमित्त आप।
ते करे सो कुकाज, ताकी पशु पहिचानि है॥

जाके आस पास ऋधि, सिधि अष्ट पहर रहत।
ते तोऊ नाहिं देत ध्यान, वो मति स्वस्थान है॥
सोहि तो है पुमान, ताको होत खिल ब्रह्मज्ञान।
कहत नित्यानन्द सोही, सज्जन सुजान है॥

## ११. अज्ञानी का व्यवहार।

### सवैया

काज अकाज कियो चितने,
गुरु देव को दम्भ की बात सुनावे।
त्याग दियो हरि नाम जिन्हे,
हर वक्त विषै विष को चित च्हावे॥
दास भयो नर नारिन को,
जिन को जप जाप वो मो ढिक आवे।
शून्य भयो ते वैराग्य विवेक से,
वो किमि देव नित्यानन्द पावे॥

## १२. सत्य असत्य की शोध।

### सवैया

हम सत्य असत्य को शोध कियो,
गुरु गुप्त मिले तिन सेन बताई।
लखि सैन हृदे तिनकी तबही,
हम वास कियो एकान्त में जाई॥
कर वृत्ति एकाग्र विवेक कियो,
परि पूरण ब्रह्म लख्यो वपु मांही।
जो जीवन मुक्त भयो जग में,
निज चिन्ह स्वरूप समाधि लगाई॥

## १३. ज्ञानी की मति।

**सवैया**

चीन्ह लियो निज गुप्त निजानन्द,
　　ता जन की कथनीं किमि गावे।
पूरण ब्रह्म समान भई मति,
　　ता मति को कोउ थाह न पावे॥
देह को नाहिं गुमान जिन्हें,
　　चाहे भूखि रहे बहु व्यंजन खावे।
रे नित्यानन्द को क्षोभ नहीं,
　　तन चाहे रहे चाहे छिन्न में जावे॥

## १४. ज्ञानी की निर्मलता।

**सवैया**

देखिये दृष्टि को खोल सखे,
　　मुझ में रति रोग की गन्ध भी नाहीं॥
दृष्टि मलिन से दीखे मलीन जो,
　　दिव्य दृष्टि से निरोग दिखाई॥
रोग को धाम निरोग खरो,
　　चाहे लाख छिपावो छिपे न छिपाई॥
रोग पुकार कहे कर जोर,
　　हरो सब रोग नित्यानंद सांई॥

## १५. ज्ञानी की निष्स्नेहता।

**सवैया**

प्रीति के योग्य कोऊ नहिं दौसत,
　　कौन से जाय करूं अब प्रीति॥
हार सिंगार अनन्त किये,
　　दशहूँ दिशि बहुरि फिर्यो श्रुतिनीति॥

शंक सही अज्ञ जीवन की,

तज्ञ मान में आप निद्रोदिक जीती॥

प्रीति तजी पर प्रीति करी,

खिल पेखि नित्यानंद अंत फजीती॥

## १६. ज्ञानी का अलौकिक व्यवहार।

**सवैया**

जो सुनता सो कछु नहिं बोलत,

बोले वो नाय सुणे एक बाणी॥

जो देखे वो नाय चले तूं देखहु,

चाले वो अन्ध सफा हमे जाणी॥

लावे सो माल सो खावे नहीं कण,

खावे जे माल वाके नहिं पाणी॥

चूसे सो माल वस्तु नहिं जाणे,

जाणेह बिन होय नित्यानंद हानी॥

## १७. ज्ञानी के उद्‌गार

**सवैया**

ज्ञान भयो ते अज्ञान गयो,

गुरुदेव दया करके समझायो॥

द्वैत अद्वैत की खेद मिटी,

एक नित्य निरंजन में जग पायो॥

सेवक से नहिं सेव बनी,

बिन सेव दयालु ने मोहिं बचायो॥

जीवन मुक्त भयो जग में,

गुरु गुप्त मिलेह नित्यानन्द गायो॥

## १८. ज्ञानामृत।

**सवैया**

अमृत भोजन पान कियो तिन,-
की सब भूख उड़ी पुनि प्यासा।
पारस गुप्त को पाय चुका तिन,
छांड़ दई त्रय लोक कि आसा॥
वास करे बन शैल गुफा वो
होवत ना कोउ शेठ को दासा।
निज नित्यानन्द को क्षोभ नहीं,
निर्लेप रहे मति ब्रह्म निवासा॥

## १९. ब्रह्म-ज्ञान ।

**सवैया**

जीव चराचर में जिनकी,
सम दृष्टि भई लखी सो ब्रह्म ज्ञानी।
बाल की नांई निचंत रहे,
लाभ जो हो चाहे होयज हानी॥
द्वैत अद्वैत की भान नहीं,
निर्द्वन्द रहे किमि होय गिलानी।
निज नित्यानन्द को क्षोभ नहीं,
परब्रह्म समान लखी चौखानी॥

## २० ज्ञानी और अज्ञानी।

**कुण्डलिया छन्द।**

ज्ञानी जन ताको कहे, नहीं जासु उर मान।
सो शान्ति मति से कहूँ, मान चाय अमान॥
माने चाय न मान, करे बहु जग में गाना।
मुख से कहे हम ब्रह्म, ब्रह्म नहिं तिने पिछाना॥

ये कहे निज नित्यानन्द, गति कोउ पावे शूरा।
तिन प्रति मेरी नमन, मित्र हमारे वो पूरा॥

## २१ पण्डित के लक्षण।

**कुण्डलिया छन्द।**

पण्डित ताको चीनिये, निज पद में रति होय।
मन बुद्धि चित अहंकार वपु, देय मूल से खोय॥
देय मूल से खोय, सोई पण्डित परवीणा।
नहिं ताको भय त्रास, कष्ट पावे मति हीना॥
ये कहे निज नित्यानन्द, दृष्टि सम होवे जाकी।
ते पण्डित लख अङ्ग, संग करिये उठ बाकी॥

## २२ पण्डित और अपढ़।

**कुण्डलिया छन्द।**

बिन पढ़ पढ़ पण्डित भये, पढ़ कर होगये मूढ़।
ते पण्डित पण्डित नहीं, ते पण्डित मति कूढ़॥
ते पण्डित मति कूढ़, मूढ़ को संग न कीजै।
मान हमारी बात, सखे ताकू तज दीजै॥
ये कहे निज नित्यानन्द, करे जे तिनसे यारी।
ते दुख सहे अपार, कहूं कुण्डली भण सारी॥

## २३ अपनी अपनी कथनी।

**कुण्डलिया छन्द।**

अपनी अपनी सब कहे, पण्डित साधु प्रवीण।
औरन की कछु ना सुने, रहे गर्व में लीन॥
रहे गर्व में लीन, जगत में करे ठगाई।
खाय मुफ्त का माल, बुद्धि स्वारथ पर छाई॥
ऐसा कोउ नर एक, अखिल नित्यानन्द जोई।
जो न करे पाखण्ड, उपाधि जड़ से खोई॥

## २४ ज्ञान अज्ञान।

**कुण्डलिया छन्द।**

ज्ञान गुणों की खान है, महा पाप अज्ञान।
दुर्बुद्धि दुर्गुण दुरी, लिपटत सदा महान॥
लिपटत सदा महान, छुड़ावे तिन को ज्ञानी।
जिनके आगे अज्ञ, जोड़ कर भरता पानी॥
ये कहे निज नित्यानन्द, चराचर शिव सम भाई।
यह असार संसार, अखिल तज मन कुटिलाई॥

# (९) मन और चित्त को उपदेश।

## १. मन तेरा कोई नहिं हितकारी।

**पद राग सोरठ मल्हार**

मन थारो! कोई नहीं हितकारी।
तूं नित बंड करे बंडाई, होय दुर्गति थारी।टेक॥
देख खोल चक्ष तूं दोनूं, कौन वस्तु है थारी।
सबहि विभूति है श्रीहरि की, तूं कहे म्हारी म्हारी॥
मन थारो.॥१॥
तूं निश्चल क्षण भर नहिं रहता, फिरता मरजी धारी।
राज नहीं पोपा बाई को, बैठ त्रिगुण मन टारी॥
मन थारो.॥२॥
वचन प्रमाणिक कहूँ मैं तुझ से, लगता तुझको खारी।
दुर अवगुण कर दूर बावरे, प्रभु भज बारंबारी॥
मन थारो.॥३॥
प्रभु समान तेरा नहिं दीखे, जग में कोई हितकारी।
गुप्त सेन मन समझे शिघ्रही, होय मित्र सुख भारी॥
मन थारो.॥४॥

## २. मन बैरागी होना।

### पद राग सोरठ मल्हार

मन मेरा नीज विरागी होना।टेक॥
तज पुरवास उदासीन विचरो, मत कोऊ बाँधो भवना।
गिरि तरु मढ़ी मसाण में रहियो, हो कोऊ देवल सूना॥
मन मेरा.॥१॥
भूख लगे जब भोजन करना, कर कर लेना दूना।
शीत निवारण जीरण कंथा, तामें थींगड़ दोना॥
मन मेरा.॥२॥
राय रंक एकी सम जाणो, जिमि कंकर जिमि सोना।
सुख दुख की चिन्ता सब त्यागो, होनी होय सो होणा॥
मन मेरा.॥३॥
तन मन धन श्री सद्गुरुजी के अर्पण, धरना ध्यान सुख होना।
कहत मरत मुख से सत् वाणी, राम चरण चित घूना॥
मन मेरा॥४॥

## ३. मन प्यारे मानत नाहीं।

### पद राग होली वसन्त।

मन प्यारे मानत नाहीं, क्या समझाऊं मैं तोकूं।टेक॥
रैन दिवस मन तोकूं समझायो, जैसे पिंजर में सुवाको।
तोहु तूं नाहिं समझ कछु लावे, मैं बहु तोकूं रोकूं॥
तजे नहीं तूं निज वोकूं, क्या समझाऊं मैं तोकूं॥१॥
तूं मन मेरा मंत्री कहिये, फिर तूं दहे निज तनको।
ये ही कुचाल बहुत तुझ माहीं, तूं देता दुख मोकूं॥
चाहे तूं भव भोगों को, क्या समझाऊं मैं तोकूं।॥२॥
तूं मन नाच नचावे जाण, जिमि मदारि बन्दर को।
क्षण भर स्थिर होय नाहिं तूं, मैं पुनि तोकूं टोकूं॥
न चाहूं ऐसे मित्र को, क्या समझाऊं मैं तोकूं॥३॥

नित्यानन्द मन तोकूं समझावे, बार बार कहे नीको।
अब मरजी होय सो तूं कीजे, मैं न ओर तेरी थूंकूं॥
करे दंगा तो ठोकूं, कया समझाऊं मैं तोकूं॥४॥

## ४. सुने नहीं मतिमान हमारी।

### पद राग प्रभाती

सुने नहीं मतिमान हमारी वृद्ध भई उम्मर थारी।टेक॥
सन्तन की सेवा तूं करता, संतन के रहता लारी।
संतन कीसी कर तूं करणी, कर पवित्र बुद्धि थारी॥
सुने नहीं॥१॥
सन्तन का कर गुण सम्पादन, तोकूं तब सुख होवे भारी।
सत्य वचन गुरु वेद कहे द्विज, संत करे भव से पारी॥
सुने नहीं॥२॥
तत्व बोध तब होय त्रिवेदी, त्याग सकल जग की यारी।
अचल सच्चिदानन्द आतमा, गुणातीत लख गुण टारी॥
सुने नहीं॥३॥
जिस तन कूं तूं तेरा माने, सो तन नहिं तेरा वारी।
तूं नित्यानन्द अचल आतमा, सदा सदा रहे तन के लारी॥
सुनी नहीं.॥४॥

## ५. किस पर करत गुमान रे मन।

### पद राग होली वसन्त।

किस पर करत गुमान रे, मन मान हमारी।टेक॥
हाड़ चाम का बना यह पींजरा, सकल पुरुष भज नारी।
जिसको तुम अपने कर मानो, यही भूल बड़ भारी।
बहे तूं क्यों बिन वारी। किस पर करत.॥१॥
दो दिन की है चमक चामकी, सो तूं लेहु विचारी।
बिन विचार कछु सार मिलेना, छांड सकल चित यारी॥
आप तूं खुद गिरधारी। किस पर करत.॥२॥

दो दिन का है जीना जगत में, सो तूं जाने अनारी।
भव सागर से तिरना होय तो, हो अतिशय हुंशियारी॥
तबही होवे भव पारी। किस पर करत.॥३॥
इसमें संशय मन मत राखो यह सत्य भजले वारी।
कहे अलमस्त नित्यानन्द स्वामी, सो सुख है अति भारी॥
कही तो से मैं सारी। किस पर करत गमान.॥४॥

## ६. एक दिन झड़ जावेंगे बेर।

### पद राग होली वसन्त।

एक दिन झड़ जावेंगे, इस झाड़ी के बोर।टेक॥
आप खाय नहिं नहिं काहु को देवे, एक कर से तोर।
रे मन कृपण प्रधान नीच मन, कर तूं पाप बड़ घोर॥
एक दिन.॥१॥
देख झाड़ी के फिर चौमेरू, झड़ रहे बोर ही बोर।
कछूक रहे हैं अब झाड़ी में, सोभी तजे क्यों तूं ढोर॥
एक दिन.॥२॥
जो कुछ इच्छा होय सो मनवा, जीमों बोर बहोरि।
फिर ढूंडे से एक मिले ना, चाहे तूं लाख ढिंढोर॥
एक दिन.॥३॥
खा खुद यार खिला औरन को, दोऊ अपने कर जोर।
कहे अलमस्त नित्यानन्द स्वामी, समझ रमझ कर गोर॥
एक दिन.॥४॥

## ७. काज सत्य शोध मन कीजे।

### पद राग गजल धमाल।

काज सत्य शोध मन कीजे,
उमर यह बीती जाती है।टेक॥
वक्त के बोये निपजत हैं, भूमि में हीरा अरु मोती।
वक्त चूके से पछताओ, सन्त यह सत्य गाते हैं॥
काज मन.॥१॥

वक्त को भक्त ही जाने, कविश्वर काव्य को कथते।
लाभ तिनको जो होता है, सत्य के सत्य नाते हैं॥

काज मन.॥२॥

होय धनवान पृथ्वी पर, वक्त अपना बिताते हैं।
मित्र सम भाव हो सब में, वोही निज रूप पाते हैं॥

काज मन.॥३॥

काल का चक्र है भारी, घूमता शीष पर वारी।
मार उठ ज्ञान पिचकारी, काली नहिं काल खाता है॥

काज मन.॥४॥

सत्य से दूर वो भागे, असत्य को आनकर दावे।
नित्यानन्द कहत जिमि लागे, वो ही जन मन रिझाते हैं॥

काज मन.॥५॥

## ८. काज मन अबतो यह कीजै।

**पद राग धमाल।**

काज मन अबतो यह कीजे, उमर दो खेल में खोई।टेक॥
तीसरा चक्र है जारी, करो दिलवर से अब यारी।
अन्त में होयगी ख्वारी, बैठ प्रभु नाम रट दोई॥

काज मन.॥१॥

चेत अब वक्त है थोड़ा, बुढ़ापा देवे फिर फोड़ा।
दुखे तब वो कटि गोड़ा, वहोगे मूढ़ बिन तोई॥

काज मन.॥२॥

कौन का धाम धन छोरा, करो क्यों जास में शोरा।
अन्त में रहे तूं फिर कोरा, चले नहिं जोर वहां कोई॥

काज मन.॥३॥

दूर कर अबतो ममताको, चीन ले यार निज ग्रह को।
नित्यानन्द टेर कर कहता, शीष धुन धुन के फिर रोई॥

काज मन.॥४॥

## ९. भक्ति मन प्रेम से कीजै।

### पद राग ग़जल धमाल।

भक्ति मन प्रेम से कीजे, तबहि भगवान अति रीझे।टेक॥
प्रेम वश देव गण होते, देख टुक अपने झेहने मे।
फिरे क्यों परवतों बन में, वृथा शठ येह तो तन छीजे॥
भक्ति मन.॥१॥
प्रेम वंश आप प्रभु बन में, धाम भीलनी के जा झूंठे।
बोर खाये वो रुच रुच के, कहे भिलनी यह प्रभु लीजे॥
भक्ति मन.॥२॥
प्रेम प्रेहलाद को सांचो, रह्यो नहिं हाव वो काचो।
ताप लागी न तिन तन को, प्रभू रस नाम से भीजे॥
भक्ति मन.॥३॥
भक्ति की महिमा है भारी, छांड उर वासना सारी।
फिरे क्यों नारी व्यभिचारी, नित्यानन्द और मन दीजै॥
भक्ति मन.॥४॥

### दोहा।

केशव केवल आतमा, नित्यानन्द स्वरूप।
वक्र भाव जामें नहीं, चेतन स्वयं अनूप॥

## १०. साधन चतुष्टय।

### सवैया

रे सुन चित्त चतुष्टय साधन,
जो तूं सम्पादन नाहिं करेगा।
सत्य असत्य छिपे नहीं देख तूं,
देख बिना बिन मौत मरेगा॥
काज असत्य से नाहिं सरे,
सत से सब शिघ्र ही काज सरेगा॥
तत्व अतत्व को बोध करे,
नित्यानन्द गुरु भव पार करेगा॥

## ११. विवेक बिना चैन नहीं।

### सवैया

रे सुन चित्त! विवेक बिना तुझ,
को शठ चैन कभी नहिं होवे।
यह संसार असार सभी लख,
तूं सत् मान निशीदिन रोवे॥
सत्य से देख असत्य खड़ा,
ते असत्य कूं सत्य निरंतर जोवे।
भान नहीं अपना-परका सोहि,
जान असत्य नित्यानन्द सोवे॥

## १२. चित्त की निश्चलता।

### सवैया।

रे सुन चित्त! कदाचित भी,
रड़ना नहीं मान हमारी जे वाणी।
दुष्ट रहे तन में सखि देख दूं,
दे तोहि त्रास तेरी पटराणी॥
तूं कर निश्चल प्राण इन्द्रिय सब,
जो न करे तो डूबे बिन पाणी।
तत्व त्याग अतत्व को ध्यान करे,
नित्यानन्द कहे वो है अज्ञानी॥

## १३. अभयदान।

### कवित्त

अभय दान श्रेष्ठ दान विद्वान करत गान,
चीन मति मान अभय दान जग-सार है।
रे विद्या को न पायो सार पढ़ी विद्या बार बार,
अज्ञानी की करे आस फिरे लार लार है॥

विद्या को कियो अपमान खोटे खोटे लेत दान,
अभय दान को न ज्ञान बड़ो ही गंवार है।
ये कहे पुनि नित्यानन्द छांड चित्त खोटी चाट,
अभय दान चीन्हे बिना जीवनो धिक्कार है॥

## १४. अभयदान सत्यवित्त।

**कवित्त**

वो ही तो है सार वित्त, अभय दान सत्य चित्त,
और दान नहीं वित्त, जे आदि दुख कूप है।
लेवे तो सदैव अभय दान को ही लीजे अंग,
रे तामें कलेश नाहीं! वो केवल सुख रूप है॥
है तूं खुद विवेकी आप, देख तूं विवेक कर,
तूं तुच्छ दान काज फिरे जेम बेवकूफ है।
बात सत्य मान मीत, अभय दान लूट नित्य,
कहते गुरुदेव नित्यानन्द सुर भूप है॥

## १५. अभयदान का महत्व।

**कवित्त**

अभय दान को महत्व, वेद पुराण भी कहत,
रे! ताको चित्त देख तूं वो पावने के योग्य है।
तूं तो है निर्लज्ज अज्ञ, है तेरे को न रति लाज,
ये श्रेष्ट नाथ दियो साज पाप पुण्य भोग है॥
तुच्छ ये अनित्य भोग, तूं छांड चित्त यार शोक,
दान मध्य अभय दान, खोत मूल रोग है।
रे जा में नाहिं रति रोग, वोही दान दान योग,
ये कहे कवि नित्यानन्द, कह्यो कवि लोग है॥

## १६. अमूल्य माणक।

**कुण्डलिया छन्द।**

माणक मणि अमोल है, वो है तेरे पास।
फिर तूं क्यों चिन्ता करे, दीखे मुझे उदास॥
दीखे मुझे उदास, नहीं माणक तूं पायो।
याते रहे उदास, बहुरि चेहरो दर्शायो॥
ये कहे अलमस्त पुकार, दूर चित चिन्ता कीजे।
माणक लाल अमोल, मिले चित बहुरि रीझे॥

## १७. अनमोल रत्न।

**कुण्डलिया छन्द।**

रतन रतन सब को कहे, रतन बड़ा अनमोल।
ताको क्यों नहिं खोजता, ऐसी क्या भई पोल॥
ऐसी क्या भई पोल, यत्न कछु नाहिं विचारे।
देख अमोलख श्वास, होत छिन छिन में न्यारे॥
ये कहे निज नित्यानन्द रतन घट मांहि समायो।
बिन सत् गुरु की कृपा, ताहि कोऊ नहिं पायो॥

## १८. सच्चा और झूठा।

**कुण्डलिया छन्द।**

झूंठे को सच्चा कहे, सच्चे को नहिं तोल।
सच्चा अपने आप है, उसका नहिं कोइ मोल॥
उसका नहिं कोइ मोल, वस्तु ये अद्भुत प्यारे।
मन वाणी अरु नैन, भेद लेने में हारे॥
ऐसो अनुपम गुप्त, व्योम सम है एक तारे।
कहे निज नित्यानन्द, झूंठ जड़ वस्तुहि जारे॥

### १९. तत्व का सौदा।

**कुण्डलिया।**

सौदा करो निज तत्त्व का सौदागर सुन बात।
लाभ होयगा याहि में, पुनः तोर कुशलात॥
पुनः तोर कुशलात, यही जग सार कहावे।
और सकल परपंच, तोर मति को भरमावे॥
ये कहे निज नित्यानन्द सुजन गाफिल नहिं रहना।
कह्यो तोर वेपार, चित्त को तिसमें देना॥

# (१०) महिला उपदेश।

### १. पतिव्रता धर्म धारण।

**पद राग कल्याण**

पतिव्रत धर्म विचार, सुन्दरी पतिव्रत धर्म विचार॥ टेक॥
पतिव्रत धर्म धार निज मन में, नर तन को यह सार॥
सुन्दरी.॥
यह असार संसार छांड चित्त, तबहि होय भव पार।
सुन्दरी.॥
पतिव्रत धर्म त्याग जे करती, ता मुख को धिक्कार॥
सुन्दरी॥
कहत नित्यानन्द लोक त्रय मध्य, तबहि तूं होय उद्धार॥
सुन्दरी॥

### २. हित अनहित पहिचानना ।

**पद राग कल्याण**

हित अनहित पहिचान सुन्दरी,
हित अनहित पहिचान॥ टेक॥
हित अनहित पक्षी पशु जानत,
बुधिजन कहे सत् जान॥ १॥

तज गुरुमंत्र कुमंत्र जपेवो,
जन्मे स्वपच गृह स्वान ॥२॥
जों लों हित अनहित नहिं जानत,
तों लों भूंड समान ॥३॥
कहत तोर यह नित्यानन्द सुन,
तबहि होय मति ज्ञान ॥४॥

## ३. सती अष्टकम्।

### हरि गीत छन्द।

युवती वोही परमात्मा के,
तुल्य निज पति को भजे।
इस लोक वा पर लोक के,
सुख श्वान विष्ठावत् तजे ॥१॥
पूजन पति परमात्मा की,
चरणों की विधि से करे।
उसही का होय उद्धार सजनी,
वो बहुरि ना जन्मे मरे ॥२॥
लाखों करोड़ों में कोइक,
होवे सती बड़ भागनी।
पतिव्रता वो धर्मों को पाले,
ओ पाले नहीं सखि नागनी ॥३॥
प्रीतम को तब प्यारी लगे,
बचनों को नहिं टाले कभी।
केवल पति परमात्मा के,
भोग संग भोगे सभी ॥४॥
भोगों के भोगन के लिये,
पतिव्रत को खण्डन करे।
देखे पति परमात्मा,
सब हाल तद्दपि ना डरे ॥५॥

दीखे नहीं जिनको पति,
परमात्मा निर्गुण हरि।
ओ संग में रहता सदा,
तूं सेज कामी की परी।।६।।
सन्मुख पति परमात्मा के
भूंडि तूं कुक्रम करे।
जावे रसातल को सफा,
शुभ कर्म कर भव से तरे।।७।।
इस लोक वा परलोक में,
शुभ होय जब कीर्ती अति।
कहे मस्त जिनकी है पति,
परमात्मा में सत् रति।।८।।

## ४. जिज्ञासू महिला।

### पद राग दादरा।

पंखा लेकर गुरुजी, मैं तो हाजर खड़ी।।टेक।।
लख चौरासी ढूंढ थकी गुरू!
अब चरनन में आय पड़ी।।१।।
देख दया की अब दृष्टि से,
सुमर रही मैं तो घड़ी जी घड़ी।।२।।
अब हटने की नहिं डोढ़ी से,
निर्भय होके मैं तो आय अड़ी।।३।।
हर गुरु दुःख सकल तन मन को,
नित्यानन्द निज दे दो जी जड़ी।।४।।

## ५. भक्त महिला।

### पद राग लावणी।

प्रीतम का पत्र मिल्या पढ़या दिल भरके।
प्रीतम मेरा वे पते मैं हूं बिन पर के।।
प्रीतम.।।टेक।।

पंख दोनों मेरी डार जेब में टरके।
जब से भई मैं बे हाल, आप बिन धड़के॥
प्रीतम.॥१॥

बिन धड़ के मोरे श्याम मैं हूं बिन परके।
इन्साफ करो महिपाल गौर कुछ करके॥
प्रीतम.॥२॥

प्रीतम बिन शून्य श्रृंगार न लड़की लड़के।
खाती अब टुकड़ा मांग बहुरि घर घर के॥
प्रीतम.॥३॥

होगई दुरदशा जपूं जाप अब हरके।
हरि प्रीतम नित्यानन्द मिलूं दिल भरके॥
प्रीतम.॥४॥

ऐसो दो शिव वरदान रति नहिं सरके।
मेरे अब दुर्गुण देख, कबु ना तरके॥
प्रीतम.॥५॥

## ६. सच्चा पति।

**पद राग कल्याण**

सच्चे पति गले लाग प्राणप्यारी, सच्चे पति गले लाग।टेक॥
सच्चा पति सत् चित गुप्तधन, कर तिनों पद अनुराग।
प्राणप्यारी.॥१॥

जेहि पति का आनन्द अनंता, तेहि लख लख सत प्राग।
प्राणप्यारी.॥२॥

सच्चा पति सत् गुरु ओ शास्त्र सत् पुनि सत् संग सुपाग।
प्राणप्यारी.॥३॥

पतिवृता पत्नि जे कहिये गहे निज पति केहि जाग।
प्राणप्यारी.॥४॥

कहत नित्यानन्द बहुरि धीर मति हँसि हंसि खेलो निर्भय फाग॥
प्राणप्यारी॥५॥

### ७. अज्ञानी विधवा।

**पद राग कालिंगड़ा।**

शिव शिव बोलरी जंगल की सूड़ी।टेक॥
जब से जन्म लियो तब से तूं फिरती दौड़ी दौड़ी।
कष्ट भयो धन लाभ मिल्यो ना फोड़ फेंककर चूड़ी॥
शिव शिव.॥१॥
निज बन त्याग कुबन मध्य मांहि, पड़ी अन्ध जिमि कूड़ी।
पिश्ता द्राक्ष बदाम चरोली त्याग खात टुक पूड़ी॥
शिव शिव.॥२॥
चाट लगी जिह्वा को खोटी, सुन जंगल की सूड़ी।
वृद्ध भई दुर्बुद्धि गई ना, फिरती तूं उड़ी उड़ी।
शिव शिव.॥३॥
शिव को ध्यान धर्यो दशरथ सुत तूं अजहू ना जूड़ी।
कहत नित्यानन्द तिरना होयतो, तिर तूं खुद भई बूड़ी॥
शिव शिव.॥४॥

# (११) रहस्य मय विनोद।

### १. ज्ञान बल्लभी बूंटी

**पद राग ग़ज़ल कव्वाली।**

गुरूजी के शरण आके, भंग हम ऐसी पी भाई।
हुवा उन्मत पीकर के, लाली आंखों में अति छाई।टेक॥
चढ़े दिन रात ये दूनी, नशा इसका न घटता है।
खुमारी में खबर मुझको, कछू तन मन की नहिं आई॥
गुरूजी.॥१॥
जगत मिथ्या मुझे जंचती, न इसकी ओर चित रुचता।
सबही ओर से मन खिंचकर, रहा परि ब्रह्म लवलाई॥
गुरूजी.॥२॥

नहीं पीना सहेल इसका, बहुत मुश्किल तरंगे है।
कोई विरला इसे पीकर, दुखद फंदों से छुटजाई॥
गुरुजी.॥३॥

रंग इसी रङ्ग में ऐसा, अमित आनन्द आता है।
कथे अवधूत नित्यानन्द, असत जामें नहीं राई॥
गुरुजी.॥४॥

## २. समाधि लग गई मोरी।

### पद राग कव्वाली ग़ज़ल।

एक चुलु भंग में बाबा, समाधि लग गई मेरी।टेक॥
समाधि सविकल्प लागी, खुमारी है मुझे उसकी।
भान बेभान में लीला, विविध विध देखी मैं तेरी॥१॥
प्रतिष्ठा नार करने को, गया गुजरात के मांही।
असंग हो संग श्री गुरु के, चल पड़ा कीन्हि नहीं देरी॥२॥
ख्वाइश है बहुरि निज मन को, एक चुलु और लेने की।
समाधि निर्विकल्प होवे, पिलाओ प्रेम से फेरी॥३॥
कथी कथनी सुनी हमने, अन्तर्यामी के सन्मुख में।
चुलु है तीन पीने के, पिओ कोई वीर कहूं टेरी॥४॥

### दोहा

(१)

बिन मांगी विजिया मिले, मागी मिले न भंग।
लेन देन की दोस्ती, नाशवन्त होय अंग॥

(२)

कर विवेक सुख से पिओ प्याला भर भर भंग।
व्यसन छोड़ मैदान में, लो लहरें फिर अंग॥

## ३. ज्ञान रूपी भंग का घुटना।

### पद राग सोहनी।

तेरी भंग भवानी के संग, घुटा गया मैं घुटा गया।टेक॥

जो कोई तेरी शिला, लोढ़ी के नीचे आगया।
रगड़े में वो रगड़ा गया, दुख छुटा गया वो छुटा गया॥
तेरी भंग.॥१॥
होके जीवन मुक्त वो, संसार सागर तर गया।
तन धन प्रिय आदि पदारथ, लुटा गया वो लुटागया॥
तेरी भंग.॥२॥
महा विकट तेरा है रगड़ा, हे दयालू! श्री गुरू!!
तेरे रंग में रंग गया, भंग उड़ा गया वो उड़ा गया॥
तेरी भंग.॥३॥
भंग निज बूंटी गुरू की, पीते क्वचित जन सूरमा।
अलमस्त वो रहते सदा, अज्ञ कुटा गया वो कुटा गया॥
तेरी भंग॥४॥

## ४. ज्ञान रूपी भंग का रंग।

### पद राग ग़ज़ल कव्वाली।

कुटिया रंगा गई है, तेरी भंग की तरंग में।टेक॥
जहां देखूं वहाँ तुही तूं, तेरी दीख तूं कुटी में।
तूं बाबा मलंग मेरे, हर दम रे यार संग में॥
कुटिया.॥१॥
दिल दिल्ली में नहीं था, पर मैं हि दिल्ली में था।
वहाँ बाबा के पास थे हम, अलमस्त होके भंग में॥
कुटिया.॥२॥
लौकीक वा अलौकीक, सब मिथ्या है पदारथ।
वो गुरु ज्ञान सत्य मेरे, निज ठस गया है अंग में॥
कुटिया.॥३॥
रंग खूब पक्का लाग्या, बन सूता सिंह जाग्या।
ये सच कहता वीर वाणी, तुझे भंगकी उमंग में॥
कुटिया.॥४॥

**दोहा।**

पक्के रङ्ग में रंग गई, कुटिया मोरी अंग।
अब बदरंगी ना बने, सदा रहे यक रंग॥

## ५ ज्ञान रूपी भंग की तरंग।

**कुण्डलिया छन्द**

भंग पिये सुख उपजे, ज्ञान ध्यान अरु ज्ञान।
बिना नशा के जो नर, सो लख पशू समान।
सो लख पशू समान, देख मित्रन को खीजे।
ताको पड़यो स्वभाव, यत्न कोऊ नहिं रीझे॥
यह कहे अलमस्त पुकार, गुप्त भंग पी भर लोटा।
जो कोइ निंदे तोय, मार शिर सोटा मोटा।

## ६ ज्ञान रूपी भंग का आनन्द।

**कुण्डलिया छन्द।**

पण्डितजी की मिर्चकर पण्डिताई की भंग।
सेक शुद्ध कर घोट फिर, छान पान कर अंग॥
छान पान कर अंग, बाहर जंगल को जावो।
पुनि करो असनान, लौट कुटिया पर आवो॥
यह कहे अलमस्त पुकार, उगे जब विजिया माता।
हो निचिन्त तब बैठि, विप्र कर दो दो बाता॥

## ७. हरिया की याद

प्रश्न?

दोहा- पहले देखी चांदनी, पीछे देखा चंद।
प्रथम चंद्र दीखा नहि, है दोनों में को अन्ध॥

उत्तर:-

देख चांद की चांदनी, मान मन में मोद।
चांद चांदनी युगल का, किस कर होवत बोध॥१॥

चांद-चांदनी देखता, चांदनी देखत चंद।
दीखे भेद-अभेद दोऊ, जैसे मुक्त 'रु बन्ध॥२॥
देख चांदनी चन्द्र की, दु:ख सुख होवे अंग।
उदय अस्त संग संग रहे, नहीं संग होय भंग॥३॥

**पद ग़ज़ल राग क़व्वाली**

अन्धेरी दूर करने को, चांदनी होती है भाई।टेक॥
छिटक रही चांदनी सुन्दर, उदय इन्दु के होते ही।
अंधेरी ढूंढने से भी, चांदनी को जडे नाहीं॥१॥
अन्धेरी चांदनी बाबा, परस्पर व्यभिचारी हैं।
हरीपुर में भाल पे हर के, दमकता चंद्र श्रुति गाई॥२॥
चंद्र दर्शन के दोफल हैं, लिखा है शास्त्र के मांहीं।
अनित तज नित्य फल चखिये, दिखावो (कोई) वीर वीराई॥
काम मर्दो का ये ही है, दिखावे करके मर्दाई।
कथे अवधूत नित्यानन्द, चंद्र-पति चंद्र के मांही॥४॥

**दोहा।**

लाली ढूंढन मैं गई, ले लाली को साथ।
लाली मय लाली भई, वासुदेव सुन! बात॥१॥

## ८. दरिया की याद।

**दोहा।**

सन्तन के मुख से सरस, अद्भुत मिला खिताब।
नज़र निहाल नज़रों विषे, जहां न हानी लाभ॥१॥
नज़र लगे तब नज़र से, नज़रे नज़र निहाल।
धन्य धन्य उस नज़र को, नज़र नज़र महाकाल॥२॥

ग़ज़ल क़व्वाली

फटी गूदड़ी जीरण के, जीरण उधार करते।टेक॥
गुरूणां गुरुः समर्थक है, वोही ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय है।
वोही ध्याता ध्यान ध्येय है, निश्चल होके दीखे चरते॥१॥

वोही दृष्टा दृश्य दर्शन; गुरु शिष्य वोही परशन।
प्रमाता प्रमाण परमेय, गुरु मरता गुरू न मरते॥२॥
नज़रों से नजर मिले जब, देखे नज़र नज़र तब।
है नज़रों में नज़र भर, उन नज़रों का नज़र न टरते॥३॥
नज़रों से नज़र बिगड़ते , नज़रों से नज़र सुधरते।
नज़रों से नित्यानन्द को, नज़रों से ध्यान करते॥४॥

## ९. कुसंग व्यसन निषेध।

### पद राग सोहनी

मानले मन मोर चित! मति संग कुसंग को छोड़ दे।टेक॥
पान खाना छोड़ दे, खाना तमाखू छोड़दे।
पीना तमाखू सूंघना, इनसे तूं मुखड़ा मोड़ दे॥१॥
भंग भी जानो बुरी, काली अति दुस्तर खरी।
खोटा नशा मदिरा से आदि, इनसे तूं यारी तोड़दे॥२॥
चाय भी गांडा पीवे, विद्वान नहिं ताकूं छूवे।
कर ध्यान होवे ज्ञान, घट-अज्ञान का तूं फोड़दे॥३॥
यह कहता नित्यानन्द, पूरण ब्रह्म में दिल जोड़दे।
तब संसार सागर को तरे, मति मान कर से रोड़दे॥४॥

## १०. हिन्दू मुसलमान को उपदेश।

### पद राग सोहनी

हिन्दू मुसलमीन भैया, काहे को झगड़ा करो।टेक॥
ये चार दिन की ज़िन्दगी, एक दिन फ़ना हो जायगी।
इसमें खुदा को कर खुशी, नहीं मौत बिन आई मरो॥
हिन्दू.॥१॥
भक्ति कबूली गर्भ में, उसकी खबर तुमको नहीं।
फंस बैठा माया कीच में, तुम काज बहु कीनो बुरो॥
हिन्दू.॥२॥

अब दोनों भाई हो संभल के, श्री राम खुदा को जपो।
कर दूर झगड़ा चित्त से, अब शान्ति निज मति में धरो॥
हिन्दू.॥३॥
यह कहता नित्यानन्द, तन मन और धन बाणी पुनः॥
सब कर दो अर्पण अब खुदा के, तात भव सागर तिरो॥
हिन्दू.॥४॥

## ११. फ़िकर का फ़ाका करो।

### पद राग सोहनी।

हिन्दू मुसलमीन भैया, फ़िकर का फ़ाका करो।टेक॥
फ़िकर माया को बुरो, तबही तो तुम जन्मो मरो।
इस ठगनी ने तुमको ठगे, तुम संग रति करके चरो॥
हिन्दू.॥१॥
फ़िकर उसका कीजिये, फ़िर फ़िकर ना करना पड़े।
विशयों के वश भय भीत होके, काहे को दोनों लरो॥
हिन्दू.॥२॥
इस विषय विष की बेल, दृगते देख कर तिसको तजो।
फिर मुर्शदों की करके सुहबत, देखिये खोटो खरो।
हिन्दू.॥३॥
यह कहेता नित्यानन्द दोऊ, भ्रात चित देकर सुनो।
तब होय अति सुख अज्ञ नास बहुरि ना जन्मो मरो॥
हिन्दू.॥४॥

## १२. हम खुदा के नूर हैं।

### पद राग सोहनी।

हिन्दू मूसलीन भैया, हम खुदा के नूर हैं।टेक॥
शेरखाँ इस तन को जाने, सोई मुसलमीन है।
सोही माता ओ पिता के, बीज का मजदूर है॥
हिन्दू.॥१॥

ना में हिन्दू हिन्दु भाई, भाई! ना मैं मुसलमीन हूं।
सप्त धातू से बना, दुख रूप सो तन धूर है॥
हिन्दू.॥२॥

तुम खुदा के नूर हो, सो हम खुदा के नूर हैं।
अजन्मा वो महबूब हम, आशक जो वो मन्सूर है॥
हिन्दू.॥३॥

महबूब नित्यानन्द तूं, ये मुर्शदों की सैन है।
वो आप रूप अनेक होके, सब जगह भरपूर है॥
हिन्दू.॥४॥

## १३. माता रूपी कुटिया।

### पद राग कालिंगड़ा।

मोमन कुटिया, लगी नृप प्यारी।टेक॥
कुटिया में केवल नित्यानन्द, यह श्री गुरु वेद उचारी॥
मो मन.॥१॥
कुटिया गुप्त प्रगट एक सी है, छबि निरखो नर नारी॥
मो मन.॥२॥
कुटिया देखी बहुरि मों मन में, मोद भयो अति भारी॥
मो मन.॥३॥
कुटिया को अधिपति नित्यानन्द, बाल व्याइ सम गारी॥
मो मन.॥४॥

## १४. मंगल होत हमेश।

### पद राग होली बसन्त।

मंगल होत हमेश, रैन दिन गुप्त कुटी में सन्तों!
मंगल होत हमेश।टेक॥
गुप्त कुटी में गुप्त आतमा, जहाँ नहिं पंच कलेश।
मंगल मूरति गुप्त कुटी में, केशव गुप्त महेश॥
रैन दिन.॥१॥

पता खाल सगोद नग्र रतलाम मालवा देश।
मल विक्षेप दोष नहिं जिहि में, जहाँ न तम का लेश॥
रैन दिन.॥२॥

ज्योति वेद षट कहत प्रणाली जिमि मणि जान फणेश।
गुप्त अखंड जुपे जहाँ ज्योति, करे कहा तहाँ गेश॥
रैन दिन.॥३॥

कोट तहाँ चौमार नीर को, सन्मुख रहत दिनेश।
गुप्तेश्वर केशव नित्यानन्द संतत जपतु नरेश॥
रैन दिन.॥४॥

## १५. गुदड़ी खूब बनी।

**पद राग लावणी।**

गोदड़ी खूब बनी भाई।
वासुदेव भगवान बना के नीचे बिछाई।टेक॥
ओं शीष पर लगे माँडणे, बुद्धि घभराई।
अकल नहीं कछु काम दई, तब खोल के फिंकाई॥
गोदड़ी.॥१॥

तिया किया है बहुरि हात ते तिस में समाई।
दोय तीन की गम्य नहीं प्रत्यक्ष हि दिखलाई॥
गोदड़ी.॥२॥

गुप्त रूप प्रत्यक्ष एक, दृष्टि गोचर आई।
श्वेत रक्त वर्णो ते न्यारी सब में समाई॥
गोदड़ी.॥३॥

निरख नयन ते संत भक्त मन में हरषाई।
नित्यानन्द मय जान गोदड़ी शान्ति मति गाई॥
गोदड़ी.॥४॥

## १६. राम नाम धन।

**पद राग भैरवी।**

मिले तब राम नाम धन भोई।
ता धन के नहिं और तुल्य धन,
सो में कहूं समझाई।टेक॥
तेहि धन पाय सुखी महि विचरो,
जेहि खरचो जेहि खाई।
ता धन को तस्कार नहिं चौरत,
सो पूंजी सुख दाई॥१॥
ता धन को क्षय होय नहीं वो,
नहिं आवत नहिं जाई।
ते धन से सब दूर होय दुख,
तहाँ निज मति दृढ़ाई॥२॥
जो प्राणी ऐसो धन चाहत,
कहूँ तिन ताहिं बताई।
सत गुरु शरण जाय निरंतर,
भजे तिन्ह पद चित लाई॥३॥
कहत नित्यानन्द सत्य मोर मन,
तो प्रति कही जनाई।
तामें शंका लेश न किजे
करे तो होय दुख भाई॥४॥

## १७. पशुवत प्राणी को उपदेश।

**पद राग लावणी।**

सुन लंगड़ी कुत्ति,
यहाँ पर मत आओ जाओ गाम में।टेक॥
तूं लंगड़ी मोकूं नकटी दीखे,
नहीं है तेरे नाक।

जूता डंडा बहुत पड़या ,

तदपि नहिं टिके मुकाम में ॥१ ॥

तूं लंगड़ी है बड़ी बावली,

क्यों करती है आश।

आश करो कामी जीवन की,

कामी काग रति वाम में ॥२ ॥

तूं लंगड़ी है बड़ी खोड़ली,

भटके दिन अरु रात।

सन्त महात्मा लगा समाधि,

मग्न रहे प्रभु नाम में ॥३ ॥

कहत नित्यानन्द सुनरी लंगड़ी।

मान हमारी बात॥

निश कसर बस्ती में रहो तुम,

रमज करो तहाँ चाम में ॥४ ॥

## १८. कर्कशा रंडा पाने पड़ी।

**दादरा।**

जनम की बिगड़ी, पाने पड़ी।

करकशा रंडा पाने पड़ी।टेक॥

साड़ी भी घर में, लेंगो भी घर में।

कम्बल कूं ओड़के पीयर चली॥१ ।जनम की.॥

गेहूँ भी घर में, चावल भी घर में।

सरसों को लेके भुंजावन चली॥२ ।जनम की.॥

फावड़ी भी घर में, खुरपी भी घर में।

मूशल को लेके, नींदन चली॥३ ।जनम की.॥

बिन समझे, व्यभिचारी से रंडा।

भवसागर में डूबी पड़ी॥४ ।जनम की.॥

सब कुछ साधन, है घर माहीं।

देखी तो सन्मुख नागी खड़ी॥५ ।जनम की.॥

## १९. कार्य कारण की एकता।

### कुण्डलिया छन्द।

वोही वैद्य वोही औषधी, वोही रोग है तात।
करै निवृत्ति रोग की, तोऊ रोग नहि जात॥
तोऊ रोग नहिं जात, दोष तीनों में किसका।
वैद्य औषधी रोग, शिष्य तीनों है तिसका॥
कहे निज नित्यानन्द, निरोग जग में योगी।
दिन में सो सो वार, भोग के रोवे भोगी॥

## २०. काल प्रभाव।

### कुण्डलिया छन्द।

छोटे मोटे सब कहें, काटत हैं हम काल।
नाश काल सबको करे, वृद्ध तरुण अरु बाल॥
वृद्ध तरुण अरु बाल, काल के सभी चबीने।
कोउक बचता शूर, भवन जो अपना चीने॥
ये कहता नित्यानन्द, गुप्त पद जो कोउ जाने।
तासूं डर पत काल, देव आदी भय माने॥

## २१. जोगी भोगी रहस्य।

जोगी भोगी से कहे, मैं तेरा शिरताज।
मो बिन तेरा एक भी, भोगी सरे न काज॥
भोगी सरे न काज, लाज तुझको नहिं आवे।
भोगे भोग अपार रसातल को तू जावे॥
ये कहे अलमस्त पुकार, जोगी से भोगी छोटा।
छोटा मोटा बने, वचन कहे मुख से खोटा॥

## २२. जोगी भोगी वृथा वाद।

**कुण्डलिया।**

जोगी भोगी लड़ मरे, कौन करे इन्साफ।
बिन विवेक दोनों लड़े, मो उर बड़ सन्ताप॥
मो उर बड़ सन्ताप, सफाई कैसे होवे।
दोनों झगड़ा मध्य, वृथा आयू शठ खोवे॥
ये कहे फिर अलमस्त, पुकार निराशा जग में जोगी।
दिन में सो सो बार, भोग के रोवे रोगी॥

## २३. शूरा-पूरा।

**कुण्डलिया।**

शूरा से पूरा कहे, निज निश्चय की बात।
तब दोनों रुचि रुचि मिलें, अति से भरभर वाथ॥
अति से भर भर वाथ, खुशी सो कही न जाई।
ते निज नित्यानन्द, अजर बूटी सत पाई॥
ये कहे निज नित्यानन्द, नित्य ना आवे जाई।
सो सुन मति प्रवीण, संशय ना तामे राई॥

## २४. प्रभुगति।

**दोहा।**

गहन गती तेरी प्रभु, जाणि सके नहिं कोय।
कवि मन गहन जाने गति, वे तज जुदा न होय॥१॥

**कुण्डलिया छन्द**

मन बुद्धि अहङ्कार चित्त, पुनः दश इन्द्रिय जाण।
शब्दादि भोगे विषय, सकल जाण तू प्राण॥
सकल जाण तू प्राण, क्रिया फिर कैसे होवे।
कोई हंसता मित्र, कोई शिर धुन धुन रोवे॥
कहे निज नित्यानन्द, गुरू तुझको समझावे।
तब तेरा कुल भरम, शीघ्रही जब जल जावे॥

## २५. आखिर का दिन (खम्भात)

ॐ

**दोहा।**

गुरू गये गुजरात से, गुरूवार को भोर।
गुरूवार को पूज्य गुरु, पूजे कर शिर जोर ॥१॥

**पद गज़ल**

आखिर का दिन आकर के कहे, खंभात चलो, खंभात चलो।
मत नार चलो, पंडोली चलो, खंभात चलो, खंभात चलो॥
॥टेक॥

यह बाल अवस्था पढ़ने की, घूमन में इसको मत खोवो।
यह शीघ्रही करे उद्धार तेरा, जा करके पढ़ो जाकरके पढ़ो॥
खंभात चलो, खंभात चलो ॥१॥

गुरु मात पिता ईश्वर की सदा, पूजन सुमरन सेवादि करो।
विद्या से अविद्या होय फना, जाकरके पढ़ो जाकरके पढ़ो॥
खंभात चलो खंभात चलो ॥२॥

एक ज्ञान अज्ञान को नाश करे, कोई साधन और न देखे सुने।
जड़देव का अग्रध देव करे, जाकरके पढ़ो जाकरके पढ़ो॥
खंभात चलो खंभात चलो ॥३॥

यह ज्ञान करे निस्नेहि तुझे, सह प्रेहि को क्लेश अनन्त करे।
दिन पूरा रजा का होय गया, जाकरके पढ़ो, जाकरके पढ़ो॥
खंभात चलो, खंभात चलो ॥४॥

**श्लोक-**

काकचेष्टा वकध्यानं, श्वाननिद्रस्तथैवच।
अल्पाहारी ब्रह्मचारी, विद्यार्थी पञ्चलक्षणम् ॥१॥

**दोहा।**

सुखी वियाधी आलसी, कुमति रसिक बहु सोय।
ते अधिकारी न शास्त्र को, पट् दोषी जन जोय ॥१॥

गुरु पुस्तक भूमी सुभग, प्रीतम अवर सहाइ।
करहिं वृद्धि विद्या पढ़ी, बहिर पाँच गुण गाई।।२॥
-(सार सूक्तावली)

## २६. आखिर का दिन (मनसोर)।

### ग़ज़ल कव्वाली

आखिर का दिन आकर के कहे, मनसोर चलो मनसोर चलो।
धूंवास चलो, सागोद चलो, मनसोर चलो, मनसोर चलो॥
।टेक॥

गुरुवार को पूज्य गुरूवर का, पूजन दरशन करके करना।
दरशन बिन पूजन नाय बने, परमाद तजो, परमाद तजो॥
आख़िर का दिन.॥१॥

गुरु पूज्य चराचर विश्वपति, दरशन करतेहि करदे मुक्ति।
बिन दरशन नहिं होय मुक्ति, परमाद तजो, परमाद तजो॥
आख़िर का दिन.॥२॥

सतसंग करो, चाहे कूप पड़ो, चाहे दान करो, चाहे भक्त बनो।
दरशन करना, दरशन करना, परमाद तजो, परमाद तजो॥
आख़िर का दिन.॥३॥

अविनाशी है आतम ब्रह्म अचल, गुरूणांगुरुः श्रुति चित्त कहे।
जड़जीव की जड़ में होय रति, परमाद तजो, परमाद तजो॥
आख़िर का दिन.॥४॥

### दोहा।

जड़ चेतन छिपते नहीं, देख दीखते साफ।
विद्यमान नित ईश स्वयं, जपे न जाप अजाप॥

## २७. आखिर का दिन (पिटलाद)।

### ग़ज़ल कव्वाली

आखिर का दिन आकर के कहे, पिटलाद चलो, गुजरात चलो।
मध्यप्रदेश मालवा माहिं चलो, पिटलाद चलो, गुजरात चलो॥

ग्रन्थी ग्रन्थों के पढ़ने से, बिन काटे आपहि आप कटे।
दोई का पड़दा दिल पे न रहे, हंकार तजो, हंकार तजो॥
आख़िर का दिन.॥१॥

ये जिसकी वस्तु जिसकी समझो, नहिं रकम पराई में राग करो
वैराग करो, वैराग करो, हंकार तजो, हंकार तजो॥
आख़िर का दिन.॥२॥

गुरुदेव करे तब बोध खरो, निष्कपटी जिज्ञासु की मुक्ति करे।
यह उत्तम वृत्ति धारण करणा, हंकार तजो, हंकार तजो॥
आख़िर का दिन॥३॥

ज्ञानी नहिं वाद विवाद करे, एक वाद विवाद अज्ञानी करे।
कर दूर घमंड घमंडी सुणो, हंकार तजो, हंकार तजो॥
आख़िर का दिन॥४॥

ॐ तत्सत्।

# (१२) विपर्यय छन्द।

## १. विपर्यय छन्द।

रे! पानी में बंगला हम देखा, पानी बंगला एकम एक।
अन्धे से अन्धा कहे वाणी, अब कर विवेक अन्धा तूं देख॥
केवल अमर देव बंगले में, देख दीखता एक अनेक।
अमर देव से मिलने को वो, धारण करे अमंगल भेख॥

(२)

रे! पानी में बंगला हम देखा, सो बंगला है अति अनूप।
अमर पुरुष पोढ़े बंगले में, वाकू लागे रति न धूप॥
अंधा अमर पुरुष को देखे, अंधा अमरा एक स्वरूप।
अमर देव का दर्शन करके, भयो अंध भूपों का भूप॥

(३)

मुरदा पण्डित बन कर बैठा, मुरदा करता वाद विवाद।
रे मुर्दा भोजन करत विधि से, मुर्दा सब का लेत सवाद॥
मुर्दा तीन काल की जानत, जे लख मुर्दे की गति अगाध।
मुर्दा उड़ा बैठ पर्वत पे, अपने कुल्ल कटुम्ब को लाद॥

(४)

अमली ध्यान धरे श्री हरि को, गृहस्थी कथे ज्ञान दिन रात।
त्यागी सुख मय देखा सन्तो, भोग भोगता भर भर बाथ॥
मूरख पंडित को समझावे, कन्या के जनमें सुत सात।
काना हंसे देख अचरज को, ठगनी ठग दो मारे लात॥

(५)

कान कहे हित कारक वाणी, मुख निज सुने कान की बात।
पांव चले नहिं एक पांवडा, नयन धावता दीखत तात॥
गुदा खूब सूंघत पुष्पन को, घ्राण मेल त्यागे दिन रात।
रसना का रस चूसत संतो, उलटा सुलटा देख दिखात॥

(६)

घांस भेंस को चरगयो सन्तों, भेंस एक तूण भी नहिं खाय।
दूध देवे हांडी भर भर के, वो बन्ध्या पुत्र बेचन को जाय॥
दूध पिये अवधूत ग्वालिया, भेंस पदमनी मंगल गाय।
पाड़ी रड़े देख अचरज की, नित्यानन्द मन मन हरषाय॥

(७)

अब कीड़ी चली सासरे सन्तों, करके वोह सोला शणगार।
प्रीतम के वो गई भवन में, खागई निज पीतम को मार॥
अमर भयो चूड़ो तब वाको, व्यभिचारी करती व्यभिचार।
यार अनेक राखती संग में, नित्यानन्द सत् कहता यार॥

(८)

वरषा नहीं बरसती सन्तों! झाड़ पहाड़ डूबे जल मांय।
सूख गई गंगा जमुनादिक, जल जन्तु खुश भये अपार॥
सिंह एक बन में हम देखा, वो अजा सिंहकी करी शिकार।
पक्षी भये विसमित बन में, सो देखे मौज नित्यानन्द यार॥

(९)

वरषा नहीं बरसती सन्तों, चिड़ी प्रेम से मल मल न्हाय।
चिड़ी दूध गऊ का नित पीवे, ग्वाल बाल कहता सत् जान॥
चिड़ी गऊको निशि दिन रोती, गउ चिड़या का राखत मान।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, ज्ञानामृत रस कर तूं पान॥

(१०)

पुरुष एक चिता मध्य बैठा, चिता जलत वो देखत आप।
दाग्या राख करी हिल मिल के, चिता पुरुष की लगी न ताप॥
कर वैराग्य बैठे सब दाग्या, कुटुम्ब करे अतिशय सन्ताप।
नित्यानन्द कहे गुरु घर को, श्री गुरु पन्थ बतावत साफ॥

(११)

पूजन करत पुजारी जी की, ठाकुर जी महाराज हमेश।
एक देशी बहु पुजे पुजावे, सब देशी में मल नहिं लेश॥
रति एक नहिं पुजे पुजावे, ठाकुर जी महाराज निरेश।
नित्यानन्द कहे गुरु घर का, विकट पंथ शठ करे क़लेश॥

(१२)

झगड़ा करै परस्पर पंडा, खावत खूब मन्दिर में माल।
तार नहीं तन ऊपर दीखे, लड़त पुजारी जिमि कंगाल॥
ठाकुरजी जिनको नहिं दीखे, ठोकत ताल बजावत गाल।
नित्यानन्द कहे गुरु घर को, गुरू बिना किमि जानत हाल॥

(१३)

मछली एक कीर को पकड़यो, कीर रोवता भर भर नैन।
मछली कहत कीर मैं तोकूं, खाऊं मार तब होवत चैन॥
तूं अरे कीर शत्रु सुन मेरा, मेरो कुटुम्ब मारयो दिन रैन।
रे नहिं कीर! जिन्दा अब छोडूं, हंसे नित्यानन्द सुन के बैन॥

(१४)

चूलो जलत जले नहिं आग, ओ माता से लड़की कहे भाग।
रोटी करीहि हुवो पुनि शाग, ते सुन्दर शाग बिगाड़यो काग॥
माता कहे लड़की सब त्याग, तिसमें ललना करो न राग।
कहता नित्यानन्द अब जाग, बैठा शक्ति पर बाहन बाघ॥

(१५)

इंजिन इंजिनियर को हांके, इंजिनेर से चलत न रेल।
इंजिनियर इंजिन के ताबे, वो इंजिन देत हाथ से तेल॥
अक्कड़ मक्कड़ से इंजिनेर को, इंजिन इति उत देत धकेल।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, हरके सिर पर बैठो बैल॥

(१६)

लैन इंजिन सुन प्यारे, मेरे पर तूं करत गुमान।
इंजिन हंसे लैन शरमावे, इंजिन लैन दोऊ बिन काम॥
वाद विवाद करे बिन मूं से, भये पसेन्जर सब हैरान।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, गरुड़ शीष हरि बैठा आन॥

(१७)

एक निरंजन बन में सन्तों, शियाल सिंह का पकड़या कान।
सिंह कहे तूं शियाल सूरमा, मैं बलहीन तूं है बलवान॥
वो सिंह हाथ शियाल के जोड़े, कंपावत सिंह का अति प्राण।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, हंस चढयो ब्रह्मा पर आन॥

(१८)

माल तोलता निशीदन प्राणी, कर से एक तुले महिं बाल।
रोगी मौज करे दिल भर के, रहत निरोगी दुखी बेहाल॥
सत्य कहे वो पड़े नरक में, असत्यवादी होवे महिपाल।
सत्गुरु का कोई होय जमूरा, नित्यानन्द कुल जानत हाल॥

(१९)

पिण्ड ब्रह्माण्ड जल रहे सन्तो, पवन बहुत चाली विपरीत।
ये स्थावर जंगम सब प्राणी, दोऊ तपत है लागत शीत॥
तपत मौज से हंसे प्रेम से, गावे रुचि २ शादी का गीत।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, जरख चड़े डाकन पे मीत॥

(२०)

भूंडी रांड परण के लाया, बन्ध्या पुत्र करता अभिमान।
श्वान श्वाननी मंगल गावहि, ते चील तोड़ती नभ में तान॥
नाग चीलको खागयो सुख से, उड्यो बैठ कर नाग विमान।
नित्यानन्द कहे गुरु घर को, श्री गुरु बिन होवे नहिं भान॥

(२१)

गर्दभ ज्ञान गोष्ठी करते, तीन लोक को तृणवत् त्याग।
रागी अति त्यागी बहु दीखत, सोवत जागत सोवत जाग॥
वेद वेदान्त सुमृति सुरति, पढ़े पढ़ावे रति न राग।
नित्यानंद कहे गुरु घरको, दे गुरु भेद गुरु ढिग भाग।

(२२)

ठाकुरजी का करत पुजारी, देख करे सन्मुख अपमान।
ठाकुरजी दर्शन दे देखो, अष्ट प्रहर दे तूं नहिं ध्यान॥
आंख नाक मुख कान मूंद तूं, देख नचावत श्री भगवान।
नित्यानंद कहे गुरु घर को, गुरू बिन होवे नहिं ज्ञान॥

(२३)

रे मटकी फूटी मंगलवार, पोष सुदी एकम दिन ग्यार।
संत स्वतन्त्र त्रिय मिल चार, वो नित्यानंद सो करी पुकार।
नित्यानंद निज कही उच्चार, सार गृहो चारहु गुण यार।
माया ठगनी करत जुहार, स्वामिन् मोरी भई अब हार॥

(२४)

पूत सपूत काट कर खाय, उस जनकी मुत्ति हो जाय।
पर धन बहू हरे वो धाय, जे केवल पद मांहि समाय॥
पुनि पर नारी गले लगाय, निज त्रिया को संग न स्हाय।
भणे ते झूंठ नित्यानंद गाय, विघ्न हरे मंगल होय ताय॥

(२५)

शेरडी कटु मधुर भयो नीम, खेत तमाखू सब गयो जीम।
ताकी मिली नाय मोहि सीम, सूरज बिना दीसे कहो कीम॥
विप्र वेद पाठिहि भयो धीन, तुरत मेरे जो जन ले छीन।
होय ज्ञान सुख से जब इम, नित्यानंद सन्मुख रड़ हीम॥

(२६)

हंसती लीद रोवत है ऊंट, तस्कर ऊंट लिया वित लूट।
शियाल मृगादि पकड्यो ऊंट, बान्ध्यो ऊंट पकड़कर खूंट॥
ऊंट देख समय गयो छूट, किड़ी धाय लठ लेकर कूट
नित्यानन्द पकड़ कर झूंट, डाकन बिल्ली गिल बैठी ऊंट॥

(२७)

तस्कर शेठ! शेठ भयो चोर, ये अचरज देखों कहूं ओर।
हाट बाट पर करता जोर, निर्भय हुकुम करे मूं मोर॥
ते नहिं मानत करता शोर, वो लुटे माल टाल तिथि भोर।
नित्यानन्द कहत भयो भोर, बस्ती मांहि मच्यो बहु शोर॥

(२८)

मछली पी गई सिन्धु को नीर, तोऊन व्यापी वो किंचित पीर।
यह लीला अद्भुत मतिधीर, मच्छी पकड़ जीम गयो कीर॥
शत्रू बसत निज सिंधु तीर, मिले राम गुरु अति गंभीर।
करो श्रीराम रावण की लीर, गर्जे हंसे कूदत महावीर॥

(२९)

एक चोर घर में धस आयो, ताने पुनि बहु शोर मचायो।
दुष्ट रैन दिन लूटत माल, कोतवाल सब जानत हाल॥
चोर खाय रुच रुच के माल, गुप्त प्रगट लूटे तत्काल।
कोतवाल नृप काल हि काल, नित्यानन्द एक देवे न बाल॥

(३०)

एक खेल अद्भुत मैं देखा, वो शिष्य गुरु को करता बोध।
शिष्य गुरु से चरण दबावे, शिष्य गुरु के भयो विरोध॥
गुरू शिष्य से थर थर कंपे, शिष्य कहे गुरू घर तूं शोध।
नित्यानन्द कहे गुरू घरको, गुरु दे बोध होय तब मोद॥

(३१)

पर्वत उड़ा पतंग की नाई, हवा नहीं चलती लवलेश।
पिपिल्का गल गई पर्वत को, नकटी के सिर पर नहिं केश॥
पहेल्वान दो लड़ते निर्भय, नंगी करे ब्रह्म उपदेश।
रण्डी ब्रह्म ज्ञान को सुनती, पण्डित करे परस्पर द्वेष॥

(३२)

लंगड़ा नृप करे जे सुन्दर, देखे मौज नपूंसक यार।
नामरदा मरदाई करता, गणिका बैठी सत् धर्म धार॥
पण्डित भव सागर में डूबे, बिना पढ़े होवे भव पार।
डाकिन कुल कुटुम्ब को खागइ, हंसती करती सोला श्रृंगार॥

(३३)

अन्धा खेल देखता अद्भुत, अन्धा पढ़ता वेद पुराण।
बहिरा कथा सुन श्री हरि की, गूंगा कथा करे द्विज जान॥
लूला दौड़ चला पर्वत पे, बिन कर तौले पूर्ण जहान।
कीड़ी तीन चल्लू को सन्तो वो सप्त समुद्र को कर गई पान॥

(३४)

मोहन को मोहन नहीं देखे, मोहन के मोहन रहे पास।
मोहन से मोहन मिलने को, मोहन मोहन करे हुलास॥
मोहन को मोहन ना मिलता, मोहन मोहन रहे उदास।
मोहन मोहन की कुल लीला, मोहन मोहन स्वयं प्रकाश॥

(३५)

मोहन ध्यान धरे मोहन का, मोहन स्वामि मोहन दास।
मोहन का मोहन सुन प्यारे, मोहन मोहन होय न नास॥
मोहन मोहन मौन लगावे, मोहन को मोहन होय भास।
मोहन से मोह तूं उरता, मोहन मोहन करता खास॥

(३६)

पद राग कल्याण

तरुण मर्यो तत्काल,
सपूत सुत तरुण मर्यो तत्काल।टेक॥
ता सुत को उर क्षोभ न व्यापो भयो अति हर्ष विशाल॥१॥
सुत की माता मंगल गावे सखियन संग दे ताल॥२॥
काल कलेवो चटपट कीनो तब धन भयो मैं निहाल॥३॥
श्रीसत् गुरु सत् सुख नित्यानन्द निज काप दियो मोह जाल॥४॥

( ३७ )

विपर्यय दोहा।

मोहिनी मोहन को करे, मंगल अति हर्षाय।
मोहन मोहिनी देव को, दर्शन कर अज्ञ जाय॥१॥
है अखण्ड ज्योति विमल, निश्चल स्वयं प्रकाश।
रोम रोम में रमि रह्यो, छिप्यो दूध जिमि घास॥२॥
भेद नहीं मुझसे रति, प्रभुवर सदा अभेद।
भेद भरम नाश्यो तब, रही न रति उर खेद॥३॥
चार सुनो दस दस कहे, कहते अष्ट पुकार।
मारहु रजो तम सत गहों, सत् शिव लख निज सार॥४॥
चार मार षट मारिये, मार आठ दश अंग।
अंग रंग तबही चढ़े कहू गाथ सुन चंग॥५॥
दो कन्या त्रय रांड मिल, दो पति के संग जाय।
बिना कमायो माल बहु, पांचों रुच रुच खाय॥६॥
व्यभिचारी व्यभिचार अति, करता विविध प्रकार।
तिहिं कर दुख सुख भोगती, पुनि यम खावत मार॥७॥
सज्जन समझे रमझ कुं, रमझ समझ अति गूढ़।
गूढ़ अर्थ गुढ़हि ग्रहे ग्रहन सकत मति ऊढ़॥८॥
एकादश सखि एक शिशु, हिल मिल मारग जाय।
दो पुमान प्रबल पुनि, आगेह पीछेह धाय॥९॥
पानी में लकड़ी जले, महा प्रचण्ड मति मान।
गुप्त सेन गुरु गुप्त की, जान सके तो जान॥१०॥

ॐ

# श्री रामविनोद

ॐ

# दो शब्द

प. पू. अवधूत महाप्रभु श्री १०८ श्री नित्यानन्द जी महाराज के मुखारविन्द से प्रकाशित यह 'श्रीरामविनोद' प्रथम 'पद्मनाभ प्रिण्टिङ्ग वर्क्स पेटलाद' से हिन्दी अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। पुनः गुजराती लिपि में भी प्रकाशित हुवा। वह सब प्रतियां बहुत शीघ्र दुष्प्राप्य हो जाने से श्री महाप्रभु की आज्ञा से 'नित्यानन्द विलास' के साथ संयुक्त कर इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

यद्यपि इस आवृत्ति के प्रूफ संशोधकों के सामने प्राचीन प्रकाशित प्रति आदर्श रूप से है, तथापि- प्रारम्भ के श्लोकों के अतिरिक्त कहीं-कहीं ह्रस्व दीर्घ का विचार कर जैसा का तैसा रहने दिया गया है। कारण- महा पुरुषों की शैली अगम्य अर्थ की बोधक होती है। ॐ ।

ॐ

# मङ्गल - द्वादशी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
ॐकार रूपा चिति है सदा ॐ
न मूं उसे है सबका निदा न
मो दाग्नि में प्राण अपान हो मो
भ क्ति प्रिया के प्रिय हो चिदा भ
ग ति प्रभावा वह है चिराग
व शी बनो, शुद्ध करो स्वभा व
ते जो मयी में कुछ भी न हो ते
वा र्ता, भवार्ता, मय वासना वा
सु धाचिति, प्राण परा चिरा सु
दे ती सभी वा छ भी नहीं दे
वाणी परा ॐ चिति भावना वा
य श्रेष्ठ देवो सबको सदा य

ॐ शान्ति: ॐशान्ति: ॐशान्ति:

ॐ तत्सत् गुरुपरमात्मने नमः

अथ पक्षपात रहित

# श्री रामविनोद

॥ प्रारम्भ ॥

## मङ्गलाचरण

### श्लोक

गजाननं भूतगणादि सेवितं, कपित्थजबूफलचारुभक्षणम्।

उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्॥१॥

### श्लोक

नीलांबरं श्यामलकोमलांगम्।

सीतासमारोपित बामभागम्॥

पाणौ महाशायकचारुचापम्।

नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥२॥

### श्लोक

अखण्डानंदबोधाय शिष्यसंतापहारिणे।

सच्चिदानंदरूपाय श्रीरामगुरवे नमः॥३॥

### दोहा

रामनाम के वरण दो, एक रकार मकार।

ररा सब में रह रह्यो, तू ममा में ही पुकार॥१॥

### दोहा

राम मया सदगुरु दया साधुसंग जब होय।

भज तब प्राणी जाणे कछु भयो विष रस भोय॥२॥

### दोहा

राम भजन करता नहिं संतत जपता चाम।

वो मुख से उलटा जपेहु सरे न एकहु काम॥३॥

## कवित

आगे राम पीछे राम वांये राम दांये राम।
उर्ध राम अर्ध राम रामराम को पसारो है ॥१॥
बैठे राम उठे राम सोवे राम जागे राम।
लखो खावत पीवत कछु राम से न न्यारो है ॥२॥
लेवे राम देवे राम बोले राम डोले राम।
ध्यान राम ज्ञान राम राम राम म्हारो थारो है ॥३॥
हमभी राम तुमभी राम वेभी राम येभी राम।
भीतर अरु बाहर सब राम को उजारो है ॥४॥

## दोहा

रामदास मुख से जे कहे पुनि बन्यो चाम को दास।
राम श्याम घट में बसेहु तदपि न रहे उलास ॥४॥

## दोहा

दाम चाम शूरा तजे भजे प्रेम से राम।
जो सब को पैदा करे उससे राखो काम ॥५॥

## दोहा

काम महा बलवान है ते दूजा जानो चाम।
लख तीजा शत्रू द्रव्य है याते भज श्रीराम ॥६॥

## दोहा

महाघोर यह नर्क में सब को पटके अंग।
तू याते भज श्रीराम को सब तजि खोटा संग ॥७॥

## दोहा

जीत होय शीघ्र ही तब तू बचे नर्क से मीत।
श्रीरघुपति के ध्यान से तुरत शत्रु ले जीत ॥८॥

## दोहा

जो आया सोही जायगा अपने आप मुकाम।
केवल सीताराम को है निज निश्चल धाम ॥९॥

**दोहा**

ते रोम रोम में रम रह्यो श्रीराम सच्चिदानंद।
इत उत पामर ढूंढता है छतां दृष्टि से अंध॥१०॥

**दोहा**

श्रीराम बिना सूनी मढ़ी रे देख चाम की भीत।
चेत चेतावे सतगुरु तू जीत सके तो जीत॥११॥

**दोहा**

अल्प मति मोरी अति अल्प प्रश्नऽखिल जाण।
कौन युक्ति कर होत है श्रीरघुपति को ध्यान॥१२॥

**दोहा**

वे कर से भजता कुकडा मुख से भजता काग।
गुप्तध्यान महामुनी करे श्रीरघुपति को जाग॥१३॥

**दोहा**

ये खान पीन विष भोग को रे सबही भोगते तात।
देखहु अमोलख श्वास तू श्रीराम भजे बिन जात॥१४॥

**दोहा**

कर मुख में सबही भजे रे श्वासा भजे न कोय।
पुनि श्वासा तज दृष्टि भजे रामध्यान इमि होय॥१५॥

**दोहा**

सुखी दुःखी दोउ जगत में प्राणी सबही ठौर।
वो दुःखी राम को लाड़लो सुखी राम को चोर॥१६॥

**दोहा**

लख सुखी बनाया राम ने मन करके देखो गोर।
प्रभु की सुध जिसको नहिं रह गया कोरमकोर॥१७॥

**दोहा**

धन्य धन्य दुखिया तुझे वे धन्य तोर पितु मात।
तू कियो नेह श्रीराम से सुखिया शठ भटकात॥१८॥

**दोहा**

तू सुखिया मोटा बण रहा अपणे मन से अंग।
राम भजन करता नहिं वे लाग्यो विप्रिये रंग॥१९॥

**दोहा**

तू मानस देही पायके राम भजे नहिं तात।
जाय पड़े भव चक्र में ते सहे घणेरी लात॥२०॥

**दोहा**

सुखिया सुख में सुमरिये पुनि दोय घडी श्रीराम।
जिस कर तू सुखिया भयो तेही तज भजता वाम॥२१॥

**दोहा**

जिसने सुंदर तन दियो वो दीनो सुंदर संग।
जप सुंदर सियाराम को कह्यो मान मम अंग॥२२॥

**दोहा**

दुखी होय तब सब भजे श्रीसियाराम को जे तात।
वो सुमरे सुमरन नहिं ते सुमरन दंभ कहात॥२३॥

**दोहा**

निष्कपटी होवे तब मिले श्रीराम तत्काल।
तेरे हृदय बीच में कपट कूटको साल॥२४॥

**दोहा**

दूर नहीं नजदीक है सियाराम रघुवीर।
ज्वर में कडवी लागती वो सब को प्यारे खीर॥२५॥

**दोहा**

रोग नहीं मुज में रति मैं हूँ अति निरोग।
ध्यान तज्यो सियाराम को भोगन लाग्यो भोग॥२६॥

**दोहा**

भोग स्वाद मुझ को लग्यो ते भोग पाप को मूल।
चींप्यो नहिं सियाराम को केहि विधि काढू सूल॥२७॥

**दोहा**

यही रोग मुझ को लग्यो और नहीं कोउ रोग।
बूंटी दीयो सियाराम की श्रीगुरु करो निरोग॥२८॥

**दोहा**

जे भोगी से जोगी कहे सुन भोगी मेरी बात।
त्याग भोग संसार का सियाराम भज तात॥२९॥

**दोहा**

राम भजन करना सदा फिर करना साधु संग।
तब पीने को तुझ को मिले वे प्याला भर भर भंग॥३०॥

**दोहा**

रे रोग रहे नहिं देहि में तब कंचन काया होय।
जाप जपोहु सियाराम को सब उपद्रव दे खोय॥३१॥

**दोहा**

भंग भवानी सब हरे मूल सहित अज्ञान।
गुप्त राम घट में मिले वे देहि राम की खान॥३२॥

**दोहा**

राम रतन तुझको मिले तब दूर दारिद्र होय।
फिर निश्चिंत पलने सदा फिर चदर ताणे सोय॥३३॥

**दोहा**

वे कर्ण घ्राण चक्षु त्वचा रसना करत पुकार।
तू बिना ध्यान रघुवीर के कबहु न होय उद्धार॥३४॥

**दोहा**

राम भजन सबसे बड़ो रे ज्या से बड़ो न कोय।
भजन करेहु जे प्रेम से मनोकाम सिद्ध होय॥३५॥

**दोहा**

पुनि स्वाद तजे संसार का राम भजन जब होय।
बिना भजन भगवान के कबहु न निर्भय सोय॥३६॥

**दोहा**

सपनेहु में भी सुख नहीं रे जाग्रत में किमि होय।
राम भजन जे जन तजे शिर धुन धुन वो रोय॥३७॥

**दोहा**

राम भजन जे जन करे उनको है धन्य भाग।
रे प्रेम लग्यो भगवान में रति न जग में राग॥३८॥

**दोहा**

देह गले अभिमान तब राम भजन जब होय।
वे देह दृष्टि छूटेहु बिना तू बहे मूढ़ बिन तोय॥३९॥

**दोहा**

श्रीराम अमर बूंटी खरी जे जन कीनी वो पान।
सुनो सकल नर नारी वे जिनके भये कल्याण॥४०॥

**दोहा**

और बूंटी जग की सकल सबही नाश समान।
वे अमर राम बूंटी खरी सुजन सुनो दे ध्यान॥४१॥

**दोहा**

सत बूंटी मिलना कठिन मुश्किल करना पान।
श्रीराम कृपा होवे जब सरे सकल सब काम॥४२॥

**दोहा**

अमर बूंटी जिसको मिले श्रीगुरु कृपा जब होय।
पुनि राम गुरु न्यारा नहीं मूरख समझेंहु दोय॥४३॥

**दोहा**

सत्य सत्य पुनि सत्य कहू सत्य राम रघुवीर।
अमर बूंटी संतत पीये जग में सज्जन धीर॥४४॥

**दोहा**

श्री राम सच्चिदानंद को रे सज्जन धरते ध्यान।
दुर्जन नहिं सुमरे रति तु मान चाहे अमान॥४५॥

**दोहा**

शठ मान बड़ाई में फंसे दुर्जन जग में जीव।
केहि विध सुमरे राम को श्री भक्त राम का शीव॥४६॥

**दोहा**

श्रीशिव बराबर राम का नहीं भक्त कोउ और।
क्वचित भक्त कोउ जगत में है दंभी कोरमकोर॥४७॥

**दोहा**

तिलक भाल शिरपै जटा वो गले में माला डाल।
श्री सियाराम सुमर्या नहीं वृथा धर्यो शिर भार॥४८॥

**दोहा**

सुमरन पैसा को करेहू भजे न मुख से राम।
स्वांग बनाया संत का ते तजे मात पितु धाम॥४९॥

**दोहा**

अष्ट प्रहर चौसठ घड़ी जे रहे भजन में लीन।
राम तजे नहिं जाणि जिमि जेहि विधि जल की मीन॥५०॥

**दोहा**

लख मच्छि जे त्यागे नीर को तुरत प्राण दे त्याग।
यहि विधि संत शिरोमणी भजे राम भख साग॥५१॥

**दोहा**

संत भेख जग में धर्योहु पुनि खाते फिरते माल।
श्री सियाराम सुमर्या नहीं रह गये मूढ कंगाल॥५२॥

**दोहा**

माल मिले झांकु भगेहू जैसे भगते श्वान।
राम भजन में आलसी निर्लज संत वे जान॥५३॥

**दोहा**

जिनके चित चिंता घणी रति न चित निश्चिन्त।
प्रेम नहीं रति राम में है ऐसे सन्त अनन्त॥५४॥

**दोहा**

ऊपर स्वांग बनावते भीतर कोरम कोर।
दास कहावे श्रीराम को रे करके देखो गौर।।५५।।

**दोहा**

नकली भेख बनाय के ते खाते फिरते माल।
रति प्रेम नहिं राम में उनके होय बेहाल।।५६।।

**दोहा**

समझे नहिं पागल जरा को समझावे ते तात।
राम भजन तजि रोवते वो माया को दिन रात।।५७।।

**दोहा**

श्री रामदास खोटा बनेहु लख माया के वो दास।
अन्त समय तन त्याग के ते होय नर्क में वास।।५८।।

**दोहा**

पुनि सन्त सदा एकांत में करते हैं गुप्त विचार।
सार एक श्रीसियाराम है है जग अखिल असार।।५९।।

**दोहा**

बिन विवेक भासेहु नहीं जग में जे सार असार।
कर विवेक जब देखिये श्रीसियाराम एक तार।।६०।।

**दोहा**

चारों खानी में रमाह्यो श्रीगुप्त रूप से राम।
सच्चे सद्गुरु जब मिले दरशे घनश्याम।।६१।।

**दोहा**

मलीन दृष्टि से दीखता सब जग यार मलीन।
अखिल राम सूझे नहीं जल में बसती मीन।।६२।।

**दोहा**

पर दिव्य दृष्टि होवे जब रे दीखे दिव्य स्वरूप।
अखिल चराचर राम है लीला ललित अनूप।।६३।।

**दोहा**

सतगुरु सांई जब मिले जो होय महा अति पुण्य।
श्री जगत राम न्यारो नहीं दरशे अखिल अभिन्न॥६४॥

**दोहा**

श्रीगुरु की नित पूजा करे रे धरेहु प्रेम से ध्यान।
उनकी जे कृपा कटाक्ष सें पुनि होय राम को ज्ञान॥६५॥

**दोहा**

कहो कौन देहकूं राम है कौन जगत को जीव।
गुप्त भेद गुरू से मिले हि श्रीगुरु हमारे शीव॥६६॥

**दोहा**

चोटी नहिं गुरु काटते ते दे न कान में फूंक।
कंठी नहिं गले बांधते बांधे उन मुख थूंक॥६७॥

**दोहा**

सत काज करते नहि करते अति अनीत।
राम भजन कीना नहीं सब आयु गई बीत॥६८॥

**दोहा**

ते चेलाहू चेलीहू मूंडता रे खाता फोगट माल।
राम भजन की सुध नहीं वृथा खोयो सब काल॥६९॥

**दोहा**

लख वेह साधु साधु नहीं रे वेह स्वादु जग जाण।
श्रीगुरु ये श्रीमुख से कहे मोहि सियाराम की आण॥७०॥

**दोहा**

रे मुक्ति नहीं उनसे मिले मिले नर्क तत्काल।
तूं याते भज सियाराम को लख गुरु सब करो समाल॥७१॥

**दोहा**

दंभी गुरु लाखों फिरे सुनो सत्य मम बात।
दुष्ट क्रिया द्रष्टे नहीं राम भजे नहिं तात॥७२॥

**दोहा**

श्रीराम भजे मुखसें सदा वो करे न खोटोहु संग।
रहता वो नित्य एकांत में मन निर्मल जिमि गंग।।७३।।

**दोहा**

स्थावर अरु जंगम सब सियाराम मय जाण।
सैन लखाई जै श्रीगुरु पायो पद निर्वाण।।७४।।

**दोहा**

दो चक्षु के बीच में श्री बैठे वो राजाराम।
राज्य करे त्रिलोकी को करे सत्य सब काम।।७५।।

**दोहा**

पंच ज्ञान इन्द्रिय लखौ रे जिनसे होवे ज्ञान।
पंच कर्म इन्द्रिय सदा वे धरे राम को ध्यान।।७६।।

**दोहा**

त्रिलोकीकेऽखिल नाथ को जे पामर जाणे दूर।
देखे नहिं सियाराम को सब में वे भरपूर।।७७।।

**दोहा**

शून्य देह में देव का जाणो अखिल प्रकाश।
राम ढूंडने को फिरे बन के दासी दास।।७८।।

**दोहा**

मन बुद्धि अहंकार चित्त पुनि महाशत्रू जे जाण।
तू प्रथम जीत शत्रू फिर श्रीराम राम कर गान।।७९।।

**दोहा**

सुण शत्रून के जीत्या बिना रे कभी न होवत चैन।
राम भजन बनता नहीं येह सुनो सत्य मम बेन।।८०।।

**दोहा**

सब इन्द्रिय बस में करे तब भजे फिर श्रीराम।
वे तुरत पाप तीनों नसे सरे सकल सब काम।।८१।।

**दोहा**

जलता है तीनोंहु ताप में वे दे दुःख पंच कलेश।
भजन बने नहिं राम का फिरता जो देश विदेश॥८२॥

**दोहा**

चित्त मन वाणी से है परे श्रीराम निरंजन देव।
अखण्ड ध्यान बनता सदा पर बिरला पावे भेव॥८३॥

**दोहा**

बन पहाड़ों में भटकता शठ भटके चारों धाम।
बसे श्री राम घट में सदा वोह मांगत डोले दाम॥८४॥

**दोहा**

प्रीति है जिनकी दाम में नहिं जे राम में तात।
ऐसे दुर्जन जीव जग अखिल नर्क में जात॥८५॥

**दोहा**

मति सज्जन से प्रीति करो तू दुर्जन को तज साथ।
सज्जन भजता श्रीराम को दुर्जन शठ भटकाथ॥८६॥

**दोहा**

सत प्रीति राखे श्रीराम में जो संतत संत सुजाण।
रतिही प्रेम वपु में नहीं तज असत सत जाण॥८७॥

**दोहा**

सत्त तजेहिं नहिं सूरमा वो चाहे जावे प्राण।
सरे काम उनका अखिल भजे राम निर्वाण॥८८॥

**दोहा**

वीर भक्त हनुमान जी है दूजा तुलसीदास।
जिनके हिरदे बीच में करे राम नित वास॥८९॥

**दोहा**

जिनको कहते हैं सूरमा बश कीने रघुवीर।
अखंड प्रभु के संग रहे भणे महामति धीर॥९०॥

**दोहा**

श्रीराम कृपा जिन पै करे जो शरणांगत होय।
जनम भरण फांसी हरे दे द्वैत मूल से खोय॥९१॥

**दोहा**

केवल दर्शन राम का जिनको संतत होय।
महापुण्य जिसने किया वोही सुख भर सोय॥९२॥

**दोहा**

भक्ति करना महा कठिन नाम धराना सहेल।
श्री राम नहि सुमरे कभी मर कर होवे बेल॥९३॥

**दोहा**

लख खरो कमावे देह से पर खावे खोटो तात।
राम तजा तब पशु वन्या निज खावे डंडा लात॥९४॥

**दोहा**

खोटीहि भक्ति जो करेहै जिनका होय यह हाल।
भज असली भक्ति जो करे रे जिनसे डरपे काल॥९५॥

**दोहा**

असली नकली जे युगल में महा ते अन्तरो जाण।
असली सुमरे राम को नकली दुष्ट पिछान॥९६॥

**दोहा**

यह दुष्ट दृष्टि से देख के करे न मुख से बात।
सुमर राम मुख से सदा तू तजे दुष्ट को साथ॥९७॥

**दोहा**

दुष्टन से दुष्टहि खुशी तुम सज्जन हो अंग।
सज्जन सुमरे राम को तज दुष्टन को संग॥९८॥

**दोहा**

वे दुष्टन के सत्संग से चित्त नहिं उन्नति होय।
लख राम भजन तज के फिरे चौरासी में जे दोय॥९९॥

**दोहा**

है संत भक्त संसार में होवे जे दिल से साफ।
जिनकी राम परमात्मा त्रिधा हरे खिल ताप॥१००॥

**दोहा**

श्रीराम सच्चिदानंद धन निर्गुण सगुण स्वरूप।
कर दर्शन अति प्रेम से लगा बहुरि चित चूप॥१०१॥

**दोहा**

पुनि जगे कोउ खाली नहीं जहां देखे तहां राम।
तदपि दर्शन है कठिन रहे गुप्त घनश्याम॥१०२॥

**दोहा**

येह गुप्त पंथ जाणे बिना मिले श्रीराम नहीं तोय।
सुण मिले भेद भेदू न से तब आनन्द उर होय॥१०३॥

**दोहा**

लख भेदू बसे ब्रह्मांड में गुप्त प्रगट सब ठौर।
उन बिन दर्शन राम का रे करा सके नहिं और॥१०४॥

**दोहा**

अब देखो तुलसीदास को वे मिले वीर हनुमान।
तब ही मिले श्री रघुपति जानत सकल जहान॥१०५॥

**दोहा**

बचन प्रमाणिक मैं कहूँ कहूँ प्रत्यक्ष प्रमाण॥
तुलसी को रघुवीर मिले चित्रकूट में जे जाण॥१०६॥

**दोहा**

मिलेहि भेद भेदून सें श्रीरघुपति को जान।
तुलसी भक्त बिभीषण भक्तवीर हनुमान॥१०७॥

**दोहा**

कविता राम विनोद की ये कीनी कवि नवीन।
पूरी कविता कर कवि वो भया प्रभु में लीन॥१०८॥

### दोहा

कोई दृष्टि दोष जो होय तो कविजन लेवो सुधार।
इति श्रीरामविनोद को कहुँ निज सत्य उच्चार॥१०९॥

इति श्री रामविनोद सम्पूर्णम्।

ॐशान्तिः ॐशान्तिः ॐशान्तिः

# ॐ श्री-नित्य-आनंद-श्रुति।

**प्रणव ध्वनि पद राग रासडा।**

आदि मंत्र ॐकार, गुरु-मुख से लेकर,
जपे मन्त्र क्वचित विवेकी निरंतर।टेक॥
यही योग योगीश, करे महा-मुनि-वर,
भक्ति मुक्ति सर्व सिद्धि, तुझे दे प्रणव हर॥१॥
महा मन्त्र ये है, प्रणव-साक्षि-ईश्वर,
यही ध्यान धनी का, धनी तू धनी-धर॥२॥
दीक्षा गुरू दे शिष्य ही गुरू-कर,
गुरू मंत्र केवल सिद्ध करते चतुर-नर॥३॥
जीवनमुक्त वोही, होता है जो आगर,
गुरूणां गुरू सत्य कहते बराबर॥४॥

**आत्मचिन्तन, पद राग रासडा।**

शिवोऽहं शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं।
रटाकर- रटाकर, रटाकर- रटाकर।टेक॥
शिवोऽहं शिवोऽहं, अस्मि शिवोऽहं।
रटाकर- रटाकर, रटाकर- रटाकर॥१॥
सजातीय वृत्ति कर, विजातीय वृत्ति तज।
तूं समवृत्ति कर, दिव्य द्रष्टि सु-मित्र।
शिवोऽहं शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं॥२॥
जो तू बना है सन्यासी तो ब्राह्मण।
तो जितेन्द्रिय हो तू, न विरागी हो तू।
शिवोऽहं शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं॥३॥
मूल मन्त्रको आनन्द, है तू अखण्ड एकशान्त।
है निर्विघ्न आत्मा, तू स्वयं साक्षी चेतन।
शिवोऽहं शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं॥४॥

महा विरक्त अकर्मी, होते हैं विपश्चित्।
सुणे हमी तो वही हैं, जो वोही तो हमी हैं।।५।।
रटाकर- रटाकर, रटाकर- रटाकर।
शिवोऽहं शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं।।

तत्सत्

अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि,
अहं ब्रह्मास्मि।
मैं ही हूं मैं ही हूं, मैं ही हूं मैं ही हूं।टेक।।
ऋग्वेद प्रज्ञान दब्रह्म गुरू- मुख महा वाक्य।
सुण्या निज नित्यानन्द! मैं ही हूं मैं ही हूं।
अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि,
अहं ब्रह्मास्मि।।१।।
यजुर्वेद अहं ब्रह्म अस्मि गुरु-मुख महा वाकयं।
सुण्या निज नित्यानंद! मैं ही हूँ मैं ही हूँ।
अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि,
अहं ब्रह्मास्मि।।२।।
सामवेद तत्वमसि गुरू- मुख महावाक्य।
सुण्या निज नित्यानंद! मैं ही हूँ मैं ही हूँ।
अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि,
अहं ब्रह्मास्मि।।३।।
अथर्ववेद अयमात्मा ब्रह्म गुरू- मुख महावाक्य।
सुण्या निज नित्यानंद! मैं ही हूँ मैं ही हूँ।
अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि,
अहं ब्रह्मास्मि।।४।।

हरि:ॐ तत्सत् हरि: ॐ तत्सत्, हरि: ॐ तत्सत्
हरि: ॐ तत्सत्।

महा पुरुष मुख से गावे गावें हरि ॐ अस्मि-
हरि: ॐ तत्सत्॥टेक॥

उन्हीं का धरम है, है अधिकार उनको
नर, नर- हरि का, दर्शन को जावें। हरि: ॐ ॥१॥
ध्यानी अज्ञानी, ज्ञानी-विज्ञानी।
विष्णु-मय-विश्व का, दर्शन करावें। हरि: ॐ॥२॥
हरि ही गुरू हैं गुरू ही अमर है।
गुरू ही गुरू को कृपया दिखावें। हरि: ॐ॥३॥
स्वयं विश्वंभर, हूँ वाच्य- वाचक।
मेरा हि मेरे को, आनंद आवे। हरि: ॐ॥४॥

ॐ

**श्रीनित्यानन्दाय नमः**

# जीवन सिद्धान्त

**दोहा।**

महादेव सति दत्त-गुरु, महावीर गण-राय।
कच्छप नन्दीगण निगुण, रुच रुच मंगल गाय॥१॥
लेख अलेख लखे नहीं, लखता लेख अलेख।
लेख अंध है अफुर् है, कर विवेक तूं देख॥२॥
स्वयँ विवेकी पुरुष तूं, देखे तुझको कौन?
आप आप को देख तूं, देखे तुझको कौन?
आप आप को देख तूं, अनायास होय मौन॥३॥
जीव नहीं तूं ब्रह्म है, ब्रह्म नहीं तूं जीव।
जीव ब्रह्म दोनों नहीं, साक्षी तूं निज शीव॥४॥
कल्पित लेख अलेख दोऊ, श्री गुरु दीन दयाल।
बोध कियो सुन कर भलो, नाश्यो तम तत्काल॥५॥

## शिष्य-शंका।

बहुरि भयो भ्रम मोर मति, दीनबन्धु भगवान्।
गुरु-गम, गम पड़ना कठिन, कहते सन्त सुजान॥६॥
लेख अलेख अनित्य नित, भाखे श्रीमुख बैन।
यांते भ्रम मति में भयो, कलेश रहत दिन रैन॥७॥
शीघ्रहि कीजै शान्ति अब, शिष्य आपको जान।
कलेश चित-चिन्ता हरो, दो निज ज्ञान विज्ञान॥८॥

## गुरु-उत्तर।

तीन लोक के नाथ को, करा सके को ज्ञान।
हम-तुम दफतर गुम्म है, तुम-हम हम-तुम जान॥९॥
लेख प्रत्यक्ष दिखावते, सम्मुख पुरुष अलेख।
पुतरी नहिं तू मांस की, कर विवेक फिर देख॥१०॥
जड़ चैतन हैं विषम सम, करें विपश्चित बोध।
सम्यक् ज्ञान-विज्ञान से, होय निरन्तर मोद॥११॥

x x x

गुरु का प्रेमी भक्त बन, हो मन से निरमेल।
हँस हँस के फिर कीजिये, गुरु-घर की गुरु सेल॥

ॐ तत्सत्

# (१४) कक्काक्षरी।

कक्का केवल आत्मा, शिव कल्याण स्वरूप।
नाम रूप की गम नहीं, ऐसा रूप अनूप॥१॥
खख्खा खोजो जासकूं, खो निज विषय विकार।
सत् गुरु चरणे जाइये, तब होवे निस्तार॥२॥
गग्गा गुण जाये नहीं, निर्गुण गुणातीत।
ऐसो नित्यानंद निज, लखो होय तब जीत॥३॥
घघ्घा बन निर्मल सदा, नित सुख आतम राम।
अचल सनातन मानिये, भजो ताहि निष्काम॥४॥
ङङ्गा विलम्ब न कीजिये, सद्गुरु खोजे जाय।
करो वचन विश्वास तब, गुप्त आतमा पाय॥५॥
चच्चा चारु ज्ञान के, कहे गुरु साधन आठ।
साधन जे साधे प्रिये, छुटे हमेशा ठाठ॥६॥
छछ्छा छे चव आठ दस, कहे निज अति पुकार।
जीव सदा शिव रूप है, यही हमारा सार॥७॥
जज्जा जगमग जुप रही, ज्योति आतमाराम।
पंच कोष बपु तीनको, नहीं जास में काम॥८॥
झझ्झा झांकी श्याम की, देखो अति अनूप।
दूजा हुवा न होय अब, कहो दउं कोनकी ऊप॥९॥
ञञा न्यारा मत भजो, अन्तर बाहिर एक।
सोही सच्चिदानंद है, दिव्य दृष्टि कर देख॥१०॥
टट्टा टाले तब टले, चौरासी का फेर।
ब्रह्म आतमा एक है, लखो न कीजे देर॥११॥
ठठ्ठा ठाकुर जी बसे, काया मंदिर मांय।
तामे मन को जोड़िये, क्यों शठ इत उत धाय॥१२॥
डड्डा डाकी ढोंग सब, जान करो चित दूर।
अर्ध उर्ध दशहू दिशा, नित्यानन्द भरपूर॥१३॥

ढड्ढा ढोंगी पुरुष को, संग न कीजे अंग।
बहुत गई थोड़ी रही, अब कुछ कर सत्संग॥१४॥
णण्णा नारायण सदा, सोह परम प्रकाश।
संतत सत्संग कीजिये, तबही होय आभास॥१५॥
तत्ता ताला लग रहा, कुंची गुरु के हाथ।
सत सुख श्री गुरु से मिले, मार असत् के लात॥१६॥
थथ्था थारो है नहीं, पंच कोश वपु जाण।
तामे निज पद चीनिये, तभी होय कल्याण॥१७॥
दद्दा दाह शत्रू सकल, हो अतिशय हुशियार।
तामे विलम्ब न कीजिये, काम क्रोध रिपु जार॥१८॥
धध्धा धन्य उस पुरुष को, करता निरभय राज।
राज करे भय से मरे, उनका सर्या न काज॥१९॥
नन्ना नाना मत करे, जाय समय अणमोल।
नर नारायण रूप तूं, देख दृष्टि को खोल॥२०॥
पप्पा पल भर में नसे, बहुरि तोर अज्ञान।
ज्ञान भानु घट में उदय, होय तुरत तूं जान॥२१॥
फफ्फा फिर फिर देखिये, फिर नित प्रति आनन्द।
स्वेच्छा से जग में फिरो, होय सदा निर्द्वंद॥२२॥
बब्बा ब्रह्मनंद का, भोगो संतत भोग।
पुन्य पुजं अबके मिल्यो, तबहि भयो संयोग॥२३॥
भभ्भा भारी कष्ट को, देना मन परधान।
मार तमाचा गाल पे, तुझे करे हेरान॥२४॥
मम्मा माया श्याम की, करती खेल अनेक।
श्याम अकर्ता भोक्ता, करके देख विवेक॥२५॥
यय्या यामे लेश भी, करो न शंका धीर।
मूल तूल तबही नसै, रहे न लेशहु पीर॥२६॥
रर्रा राग विराग को, कीजे चित्त से दूर।
पिंड और ब्रह्मांड में, लखो हरी निज दूर॥२७॥

ढड्ढा ढोंगी पुरुष को, संग न कीजे अंग।
बहुत गई थोड़ी रही, अब कुछ कर सत्संग॥१४॥
णण्णा नारायण सदा, सोह परम प्रकाश।
संतत सत्संग कीजिये, तबही होय आभास॥१५॥
तत्ता ताला लग रहा, कूंची गुरु के हाथ।
सत सुख श्री गुरु से मिले, मार असत् के लात॥१६॥
थथ्था थारो है नहीं, पंच कोश वपु जाण।
तामे निज पद चीनिये, तभी होय कल्याण॥१७॥
दद्दा दाह शत्रू सकल, हो अतिशय हुशियार।
तामे विलम्ब न कीजिये, काम क्रोध रिपु जार॥१८॥
धध्धा धन्य उस पुरुष को, करता निरभय राज।
राज करे भय से मरे, उनका सर्या न काज॥१९॥
नन्ना नाना मत करे, जाय समय अणमोल।
नर नारायण रूप तूं, देख दृष्टि को खोल॥२०॥
पप्पा पल भर में नसे, बहुरि तोर अज्ञान।
ज्ञान भानु घट में उदय, होय तुरत तूं जान॥२१॥
फफ्फा फिर फिर देखिये, फिर नित प्रति आनन्द।
स्वेच्छा से जग में फिरो, होय सदा निर्द्वंद॥२२॥
बब्बा ब्रह्मनंद का, भोगो संतत भोग।
पुन्य पुजं अबके मिल्यो, तबहि भयो संयोग॥२३॥
भभ्भा भारी कष्ट को, देना मन परधान।
मार तमाचा गाल पे, तुझे करे हेरान॥२४॥
मम्मा माया श्याम की, करती खेल अनेक।
श्याम अकर्ता भोक्ता, करके देख विवेक॥२५॥
यय्या यामे लेश भी, करो न शंका धीर।
मूल तूल तबही नसै, रहे न लेशहु पीर॥२६॥
रर्रा राग विराग को, कीजे चित्त से दूर।
पिंड और ब्रह्मांड में, लखो हरी निज दूर॥२७॥

लल्ला लाखी जासकी, कभी न होवे लुप्त।
लुप्त ज्योति खट जानिये, सो कभि रहे न जुप्त॥२८॥
वव्वा वा बिन है नहीं, घट मठ खाली ठाम।
अस्ति भाति प्रिय आतमा, तहां रूप नहिं नाम॥२९॥
शश्शा सागर मध्य जो, लहेरी फेन तरंग।
ज्यों आत्मा में जानिये, जीव चराचर अंग॥३०॥
षष्षा सार असार को, रती न तुझको भान।
तुझको अपने आपका, रती मात्र नहिं ज्ञान॥३१॥
सस्सा सकल शरीर में, अनुगत आतम एक।
सो तो से प्रथक नहीं, तूं शिव एक अनेक॥३२॥
हह्हा हाजिर रहे सदा, साक्षी नित्यानन्द।
रेन दिवस जहां पर नहीं, तहां न भानु चन्द॥३३॥
लल्ला लाल अमोल को, करे कोउ व्यापार।
मृग तृष्णा के नीर सम, वह लखे पदारथ चार॥३४॥
क्षक्ष्क्षा छाया धूप में, अक्षय नित्यानन्द।
बिन देखे दीखे नहीं, कौन मुक्त को बन्ध॥३५॥
त्रत्रा ताको धन्य है, जो देखे नित्यानन्द।
महा पुरुष जाको कहे, शुभ जाकी उड़े सुगन्ध॥३६॥
ज्ञज्ञा ज्ञानी जन सदा, देखे नित्यानन्द।
सज्जन जन जिनको कहे, आनन्दन के कन्द॥३७॥

### दोहा

ककका आदि वर्ण है, प्रथम पढ़े सब कोय।
ककका सब कारज करे, ककका सब दुःख खोय॥३८॥
लक्षण वृत्ति से लखे, पूरण परमानन्द।
वर्ण अर्थ पण्डित पढ़े, सो पण्डित है अन्ध॥३९॥

# नवीन (पद) भजन

## व्यापक-गुप्तानन्दे।

चराचर व्यापक गुप्तानन्द,
महा प्रभु केशव गुरु गुरुवर गोपति हर गोविन्द।टेक॥
एक अनेक आपही विधिहर, आपहि सुरज चंद।
आपहि नर नारायण नरहरि, नहिं रति भेद की गंध॥१॥
हाटक एक अनेक दागीना, नहिं सोना ते भिन्न।
इन्द्र कुबेर, आपही गणपत, नहिं समझे रहस्य मतिमंद॥२॥
माने भेद भेदवादी जन, वो दुख सहे अनन्त।
भक्त अभेद निरन्तर भजते, रहत सदा निर्द्वन्द॥३॥
चेतन पूर्ण ब्रह्म नित्यानन्द, मोक्ष मूर्ति भगवन्त।
ऐसी भक्ति करो भक्त जन, आनन्द के कन्द॥४॥

**दोहा।**

कहां काशी कहां काशमीर, खुरासान गुजरात।
तुलसी ऐसे जीव को, प्रारब्ध ले जात॥१॥
प्रारब्ध को जड़ कहे, छोड़ो जड़ की आस।
चेतन करके जड़ फिरे, जड़ चेतन का दास॥२॥

## केशव नन्द किशोर।

प्राण पति! केशव नन्द किशोर।
आपहि कृष्ण कन्हैया मोहन, तस्कर माखन चोर।टेक॥
देखे आप, आप अपने को, द्रष्टा दृष्य न होय।
बजे मनोहर बंसी चैन की, करें माद घन मोर॥१॥
ॐइति एकाक्षर केशव, अखण्ड ज्योति परब्रह्म।
आपहि भक्ति भक्त गुरु श्री हरि, वरुण श्याम अरु गोर॥२॥
आपहि कवि, आपही कविता, करो विविध विध शोर।
आपहि सुनो आपही गावो, दिवस शाम निशि भोर॥३॥

गुप्त प्रगट लीला सब करते, हो व्यापक सब ठौर।
जय जय जय अन्तर्यामिन् को, तुमहि मोर अरु तोर॥४॥

केशव केवल आतमा, शुद्ध सच्चिदानन्द।
तीन लोक के नाथ में, नहिं मोक्ष नहिं बन्ध॥१॥

# समर्थ गुरु भगवान्

अद्वितीय समरथ गुरु भगवान।
वेद शास्त्र सुनरति शुचि श्रुति, पढ़ सुन देके ध्यान।टेक॥
गुरु समान समरथ नहिं कोई, अखिल विश्व में जान।
शिव सनकादिक राम कृष्ण को, दियो श्री गुरु ब्रह्मज्ञान॥१॥
यह प्रत्यक्ष प्रमाण वाक्य है, 'गुरु बिन होय न ज्ञान'।
महा मुनि योगी पण्डित जन, अज्ञ तज्ञ युगल समान॥२॥
निर्हठ निर्विवाद निरंकुश, पद निःशंक मति मान।
जीव ब्रह्म अपरोक्ष शिष्य को, बोध अभय दे दान॥३॥
फलीभूत गुरु ज्ञान होय जब, निष्कपटी हाय शिष्य।
पूर्ण कृपा परस्पर होवे, भज गुरु शिष मुक्तसुजान॥४॥

-०-

राम कृष्ण सनकादि शिव, ये निज नित्यानन्द।
गुरु पदवी मिली गुरु कृपा से, गुरु-पद गुरु निर्द्वंद्व॥१॥

**दोहा।**

आपहि बोले शब्द को, सुणें शब्द को आप।
मुख नहिं बोले शब्द का, सुणें करण नहिं साफ॥१॥
सब कुछ सुनता कर्ण बिन, बिन मुख बोले बैन।
सब कुछ देखे नैन बिन, करे नैन बिन सैन॥२॥
त्वचा घ्राण रसना नहीं, इनसे आप अतीत।
सब कुछ सूंघे स्वादले, कठे लगत सम शीत॥३॥

पाणि पाद पायू नही, नहिं उपस्थ मुख अंग।
विविध क्रिया आपहि करे, होकर सदा असंग।।४।।
मन बुद्धि अहंकार चित, प्राण नहीं उपप्राण।
कर्ता नहीं करावता, निज नित्यानन्द जाण।।५।।

ॐकार विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः॥१॥

श्री ॐ

# दो शब्द

इस छोटी सी पुस्तिका में वार्तारूप से थोड़े से जिज्ञासु जनों को 'वेदान्त-रत्न' का बोध कराया गया है। केवल वेदान्त तत्त्व ही नहीं, चारों वर्ण, चारों अवस्था और चारों आश्रमवाले भक्तों तथा सन्यासियों को यथाप्रसंग सरल युक्ति द्वारा व्यावहारिक, नैतिक तथा धार्मिक बोध बतलाये हुये वेदान्त-मार्ग की ओर क्यों और कैसे अग्रसर हो कर स्व-स्वरूप की प्राप्ति की जाय, इसका दिग्दर्शन कराया गया है। आवश्यकता है केवल श्रद्धा भक्ति के साथ इस ग्रन्थ रत्न के श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन पूर्वक कृति में लाने की।

बालक का प्रथम गुरु माता ही है। माता कैसी होनी चाहिये इसका उत्तम उदाहरण मोहिनी है, जिसने राणी मदालसा का आदर्श ग्रहण किया है। जो शिक्षा बाल्यावस्था में दीजाती है वह सुलभता से संस्कार रूप से जमजाती है, और आगे जाकर श्रेय- मार्ग में सहायिका होती है। इसलिये बाल्यावस्था में ही मोहिनी ने अपने पुत्र कचरा को परम-पुरुषार्थ की सहायक, सर्व विद्याओं को अग्रसर जो ब्रह्म-विद्या है, उसका बोध कराया है। साथ ही चारों वर्णों में ब्राह्मण जो शिक्षा-गुरु होते हैं उन्हें स्वतः किस प्रकार का होना चाहिये, इसका आदेश करते हुए तीनों वर्णों के कर्त्तव्यों को बतलाया है कि- उन्हें अपने प्रत्येक आश्रम में क्या कर्तव्य है और वर्तमान काल में क्या करने से क्या से क्या बन गये हैं।

वास्तव में उन्हें क्या करना चाहिये, यह बतलाते हुए चतुर्थ आश्रम में चारों प्रकार के भक्त तथा सन्यासियों का क्या कर्तव्य है यह बात श्री मारुती जी तथा परमअबधूत श्री जड़भरत महाराज के दृष्टान्त से पुष्ट की है। "वस्तु अच्छी हैं और उसे प्राप्त करना चाहिये" इस उद्देश्य से कोई उन आश्रमों में प्रवेश कर जावे; पर जब तक युक्त आचरण धारण नहीं करें, तब तक इष्टवस्तु की प्राप्ति लोग नहीं कर सकते। वरन उलटे पतित होकर बन्धन में फंस जाते हैं। उनकी दशा कैसी होती है यह वार्त्ता

शुष्क-वेदान्ती महात्मा के दृष्टान्त में दर्शायी गयी है।

यदि सद्‌भाग्य से कोई इस पीढ़ी को पार भी कर गया, तो उसे आगे जाकर अहंकार रूपी भूत मिल जाता है जो बिना पछाड़े नहीं रहता। उससे सावधान रहने के लिये बनना बनाना से बिलग रहने को गुरु-शिष्य का दृष्टान्त देकर समझाया है। और अन्त में सर्वोपरि सिद्धान्त स्वस्वरूप की प्राप्ति का मार्ग बतलाया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ साधारण वार्ता पुस्तक नहीं वरन् परम अवधूत सद्‌गुरुदेव स्वयं नारायणस्वरूप श्रीमहाप्रभुजी श्री नित्यानन्दजी महाराज की अमृत वाणी है।

जिज्ञासुओं का परम सद्भाग्य है कि- महाप्रभु जी ने इस प्रकार की कृपा की। जनता इससे पूर्ण लाभ प्राप्त करे इस हेतु से यह ग्रन्थरत्न पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाता है। आशा है कि श्रद्धालुजन इससे योग्य लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। इस इच्छा के साथ ॐ तत्सत्।

गुरुवार, दीपमालिका<br>संवत् १९९०

विनीत-<br>प्रकाशक

॥ ॐ ॥

# वेदान्तरत्न–जननी–सुत–उपदेश

# (कचरा मोहिनी सम्वाद)

## पद–

वटा भणे मति हो, आपा माँगी खावाँगा।टेक॥
निशाल के आगे बेटा तू, कहता है जावाँगा।
दुष्ट पाण्डयो पकड़ लेने, फिर कैसे आवाँगा॥१॥
चाल खेत में मेरे संग में, पक्षी उड़ावाँगा।
लीलो लीलो तोड़ बाजरो, आपां दोनुं पावाँगा॥२॥
बैठ एकान्त प्रभु का बेटा, गुणगण गावाँगा।
पटक धूल लिखने पढ़ने पे, अपना जन्म सुधरावाँगा॥३॥
पढ़ना सहल कठिन है गुणना, गुणया बिन पढ़कर शरमावाँगा।
कहत् कवी वाणी भण सुन्दर, पुत्र तन धन पंकावाँगा॥४॥

अर्ध (धः) ऊर्ध्व के मध्य एक अलौकिक ग्राम था। उस ग्राम में एक मूलचन्द नामक वैश्य भक्त रहता था। उसकी स्त्री का नाम 'मोहिनी' था। दोनुं स्त्री पुरुष महापुरुषों की निष्कामता से अत्यन्त सेवा भक्ति करते थे। काल पाके उस मूलचन्द भक्त की स्त्री मोहिनी के सीमंत रहा और काल पाके उसकी कुक्षि से एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम 'कचरा' रख्या। और जब जब कचरा की माँ दूध पिलावे और रमावे तब ऊपर लिख्या भजन मय अर्थ के प्रेम प्रीति से अपने बच्चे के कान में सुनावे कि–

"हे पुत्र! विद्या (लौकिक) भणने(१) से तेरा यह नर-नारायण शरीर है वो पांच-पचास, सौ, दोसौ, हजार की की कीमत का हो जावेगा– और जिस नारायण ने यह सुन्दर तन बनाया है, सो अमूल्य है; इसका कोई भी मोल नहीं। ऐसा जिसने अमूल्य शरीर बनाया है उसको भूल करके अज्ञानी जीव सैकड़ों रुपिया खर्च करके

अनात्म विद्या पढ़ते हैं। वो पुरुष उभय लोक से भ्रष्ट हुए हैं; और उनके कुछ हाथ पल्ले नहीं पड़ा है। याते हे पुत्र! तूं अपने घर में हीं रमणा, (२)बाहिर नहीं रमणा।

कदाचित् बाहिर रमे तो; निशाल के आंगे जहां गाँव के लड़का लड़की भणते हैं, वहां दुष्ट पण्ड्या रहता है वो तेरेकूं पकड़लेगा, और अपनी धूर्त विद्या भणाने का संस्कार गेरेगा। याते हे पुत्र! तू निश्चल होके अपने घर में ही रम और मेरे संग में अपणों खेत पे चल। अपने बाजरा बाया है, वहां पक्षी ताड़ांगा और दोनूं मां बेटा लीलो लीलो बाजरो तोड़ के चावाँगा। हे पुत्र! मेरा कहेणा मान, सुख पावेगा। भणेगा तो कहीं जगे पे तोकूं गुलामगीरी करणी पड़ेगी, तब तूं अत्यन्त पस्मावेगा(३) और शिर धुन धुन के रोवेगा।

याते, हे बेटा! उठ चाल, एकान्त जगे है; दोनूं मां बेटा बैठ के प्रभु का गुण-गण गावांगा और प्रसन्न करके, प्रभु का स्वरूप कूं प्राप्त होवांगा। तब हे बेटा! जन्म मरणरूपी चक्कर से आपां छुटांगा। येही जन्म सुधारणा है, याते भणे मत। रोहीदास, कबीरदास, धना भगत, गोरो कुंभार, सेन भगत, पीपा भगत, गरीबदास, दादूजी महाराज, रामचरण जी महाराज, अजामिल, प्रह्लाद, ध्रुवजी, सगालसा कहाँ तक कहूँ इनसे आदि लेके और बहुत से भक्त हुए हैं, बिना पढ़े ये महन्तभक्त एक अक्षर के न जाननेवाले परमात्मा कूं प्रसन्न करके परमात्मा के स्वरूप में लीन हुए हैं। बिना पढ़ने का हे पुत्र! शीघ्र ही काम बनता है, याते- मेरे बचनों में श्रद्धा कर, जाते तेरो भी शीघ्र ही उद्धार हो जायगो।

हे पुत्र! तेरे प्रति मैं तेरी माता सत्य बचन सुनाती हूँ, तू मेरे बचनों को खोटा मत समझना, याते तू लिखने पढ़ने पे सात मुट्ठी धूली पटक और प्रभु को प्रसन्न करने का जो साधन मैं तेरे कूँ बताती हूँ सो तू खबरदार होकर कर। और मेरे वचनों में श्रद्धा कर। जो कदाचित् मेरे वचनों में तू अचल श्रद्धा नहीं करेगा तो तेरा चौरासी का चक्कर नहीं टूटेगा। तू मेरा पुत्र है मैं तेरी माता हूं, मैं तेरा फ़र्ज़ अदा करती हूँ। हे पुत्र! तू बच्चा है, बाते तेरे कूँ मेरे बचनों का ख्याल नहीं है।

हे पुत्र! एक मदालसा नाम राणीं थी। उसकी कुक्षि से सात पुत्र हुए थे जिनको हे पुत्र! राणी मदालसा एक अद्भुत मंत्र सुनाती थी; सो मंत्र मैं तेरे कुं सुनाती हूँ, तू एकाग्र चित्त होकर के मेरी गोद में बैठ, तेरे सुणने योग्य है।

---

(१)पढ़ने से, (२)खेलना, (३)पछतावेगा।

एक समय तेरा पिता और मैं तेरे कूं गोद में लेकर के महापुरुषों के दर्शन कुं गये थे। तब वहाँ पर सतसंग में महापुरुषन के मुखारबिंद से राणी मदालसा का इतिहास सुणने में आया। सो इतिहास कैसा है कि जिसके सुणने से और विचार करने से वा निश्चय करने से विद्या भणने की तर्फ लक्ष नहीं लगावेगा। क्योंकि जो ऐसे रहस्य को नहीं जानते; वो पुरुष अपने बालबच्चों को ऐसी अनात्म विद्या पढ़ाते हैं कि जिस विद्या कुं पढ़ने से उप जीव की महा दुर्गति होती है। क्योंकि मदालसा जैसी माता होना महा कठिण है, जिसने अपने पुत्रन को राज्य नहीं करने दिया और विद्या नहीं भणने दीनी। क्योंकि राज्य से भी वा विद्या से भी मदालसा राणी के पास एक अमूल्य वस्तु थी; सो अपने पुत्रन को दे देकर महावन में तपश्चर्य्या करने के निमित्त भेज देती थी। उन पुत्रन में से एक पुत्र को अपने पास रखा और एक चांदी का तावीज़ बनवाके उस में मदालसा ने अमूल्य रकम रखी और अपने पुत्र से कहा कि- "हे पुत्र! जब तेरे पर महा विपत्ति आके पड़े तब तू इस तावीज़ को खोल कर मैंने उस में जो अमूल्य वस्तु रखी है; सो तू तेरी हृदय रूपी तिजोरी में रख लेना, और शीघ्र ही ये अनात्म-राज कूँ त्याग के महाबन-खण्ड में जाके अचल धाम में तू रहना। वहाँ पर किसी का जोर जल्म नहीं"।

पुत्रोवाच:- हे माता! मदालसा राणी ने अपने पुत्रों को ऐसा कौन पदार्थ दिया था; जिसके बल से ये सातो भाई राजपाट सर्व त्याग के शीघ्र ही महा भयंकर वन कूँ चले गये; और अडग पदवी कूँ प्राप्त हुए। सो मन्त्र हे माता! मेरे प्रति कहो। मैं आपका पुत्र हूं; आप मेरी माता हो। मैं आपके मुखारबिंद से उस मंत्र को सुनना चाहता हूं।

मातोवाच:- हे पुत्र! मदालसा राणी ने जो अपने पुत्रों को मंत्र दिया है; सो मन्त्र महा गुप्त है तेरी बुद्धि अल्प है, याते तू भणे मत, मदालसा राणी ने पुत्रों को जो मन्त्र दिया था सो मन्त्र मैं तेरे को सुनाऊंगी इति।

हे पुत्र! पंड्या सब गाम के लड़कन कूँ पढ़ाता है; तदपि उस के बाल बच्चों का व उसके घरका काम महा मुश्किल से चलता है और रात दिवस चिन्ता के सागर में स्नान करता है। उसको अपने आप का होंसला नहीं, क्योंकि पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले, हे पुत्र! द्वार २ पै एक २ पैसे के लिये अत्यन्त मुहताज हो जाते हैं। और गृहस्थियों के दरवाजे २ पै जाके अज्ञानी जीव बिना पठित के सामने दीनता उठाते हैं। पढ़ करके कोई बड़ापन प्राप्त नहीं किया। हे पुत्र! विद्या कूँ पढ़ाने वाला

महा कष्ट कूँ पाता है। तब हे पुत्र! विद्या पढ़ने वाले क्यों नहीं महा कष्ट को उठावें?

हे पुत्र! जितने यह नादान जीव नादानी करते हैं, केवल उनकी अत्यन्त मूर्खता है। जब विद्या नहीं पढ़े थे तब भी यहा दुखी थे, और विद्या भण करके भी महादुःख रूपी पदवी प्राप्त की; और हे पुत्र! अन्त में भी महादुःख को प्राप्त हुए हैं। याते मूर्खों की मूर्खता के चाले मत लग। मेरा कहना मान, विद्या मत भण।

एक कोई हिरण्यकशिपु नामक राजा था, उसके पुत्र का नाम प्रह्लाद था, पिताश्री ने पढ़ाने के निमित्त उस कूं अत्यन्त ताड़नाएँ कीं, तथापि- हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद विद्या भणा नहीं।

और एक द्वितीय इतिहासः- उत्तानपाद राजा की छोटी राणी का लड़का ध्रुवजी था। उसको पांच वर्ष की अल्प अवस्था में उसकी मातुश्री सुनीति ने ममत्व न करके प्रभू कूँ प्रसन्न करने के निमित्त महा घोर भयंकर बन में भेज दिया, विद्या नहीं भणाई। हे पुत्र! तेरे कूँ ज़्यादे सुणना हो तो महापुरुषों के सत्संग में जा। वे महापुरुष तेरे कूं ऐसे इतिहास बिनापढ़ेन के अपने मुखारविंद से अनेक सुनावेंगे। यातें हे बेटा! भण मत अपणे मांग खाँवांगा।

पुत्रोवाचः- हे माता! मदालसा राणी ने जो अपने पुत्रों के निमित्त गुप्त मंत्र दिया था; वो मेरे प्रति सुणावो। मेरे कूँ अत्यन्त जिज्ञासा हुई है। हे मातु श्री! आप कहती हो कि "तू बच्चा है याते तेरे कूँ इसके रहस्य का पता नहीं लगेगा, इस वास्ते नहीं कहती हूँ"। सो हे माता! मैं अब उसी मंत्र कूँ आपके मुखारविन्द से सुनना चाहता हूं, मेरे कूं अत्यन्त जिज्ञासा हुई है। हे मातुश्री! मेरे ऊपर दया की दृष्टि करके, वा करुणा करके वह गुरु मंत्र मुझे सुनाओ।

मातोवाचः- हे पुत्र शान्ति रख, तेरे सिवाय मेरे कूं दूसरा कोई प्यारा नहीं तेरे को जो मदालसा राणी ने अपने पुत्रन के प्रति जो मंत्र सुणाया था, सो हे बेटा! वही मंत्र अब मैं तेरे कूं सुणाती हूँ। सावधान होके एकाग्रचित्त होय करके मेरे निकट निश्चल होके बैठ और सुण।

श्लोकः-

**शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि। संसारमाया परिवर्जितोऽसि॥**
**संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां, मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्॥१॥**

हे पुत्र! तू अत्यन्त शुद्ध स्वरूप है, व ज्ञान स्वरूप है, व निरञ्जन निराकार है।

हे पुत्र! यह संसार माया है, यातें तूं मोहरूपी निद्रासे जाग, इसके मोह में मत फँस। मैं तेरी माता मदालसा जो ये गुप्त मंत्र सुणाती हूं; इसके सुमरण करने से, वा विवेक करके इसके रहस्य को जाणनेसे हे पुत्र! इस दुःख रूप संसार से तुम्हारा शीघ्र ही उद्धार होवेगा। जैसे राणी मदालसा के पुत्रों का माता के वचनों के श्रद्धा करने से तत्काल ही काम बना है और अचल धाम को प्राप्त हुये हैं। यातें तू भणे मत, आपा मागी खावांगा। और हे पुत्र! जो भणेगा तो पूर्व लिखे हाल जो भणेलन का हुआ है; वैसा ही तेरा भी होगा। हे पुत्र! यह मन्त्र मदालसा राणी ने जो अपने पत्रन कूं दिया था, सो मैंने तेरे को सुणाया, तेरी समझ में आया या नहीं? नहीं आया हो तो हे पुत्र! तू मेरे से पूछ, मैं तेरे प्रति फिर कहूँगी तू मेरे प्राण से भी प्यारा एक पुत्र है, इससे मैंने तेरे कूं यह मंत्र सुणाया है।

पुत्रोवाचः- हे माता! पढ़नेवाला और पढ़ानेवाला परमात्मा कूं प्रसन्न क्यूं नहीं कर सकते हैं? हे मातु श्री! उसमें कौन कारण है? सो कहो, मेरे कूं ऐसी शंका होती है, शीघ्र ही मेरी शंका का समाधान कीजिये।

मातोवाचः- हे पुत्र! जो तू शंका करता है, इसकी शान्ति के निमित्त जो महापुरुषों के मुखारविन्द से मैंने सुना है, सो तेरे प्रति सुणाती हूँ- शान्ति रख, सुणः-

**यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्।**
**लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति॥१॥**

हे पुत्र! जिन्होंने अपनी बुद्धि को पेट के निमित्त बेचदी, स्वयं बुद्धिहीन हैं, याते हे पुत्र! शास्त्रों को कोई दूषण नहीं। शास्त्रों में जो लिखा है सों महापुरुषों के मुखारविन्दों के वचन हैं, सो वचन सत्य हैं, सत्य का कभी अभाव नहीं होता सत्य को त्रिकालावाध कहते हैं। याते दूषण पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले में है। एक पेट के निमित्त तेली के बैल की नाईं रैन दिन इधर उधर फिरता है, कामना पूर्ण होती नहीं, सुख से निद्रा आती नहीं, सुख से भोजन करते नहीं और सुखी देह से रहते नहीं। हे पुत्र! जिसके बुद्धि रूपी लोचन फूट गये हैं उनको शास्त्र के गुप्त रहस्य का पता लगता नहीं। जैसे किसी पुरुष के दोनों नेत्र फूट जाँय और वह अपना मुख दर्पण में देखना चाहे तो हे पुत्र! वो स्पष्ट अपने मुख को कैसे देख सकता है? हे पुत्र, दर्पण तो ज्यों का त्यों स्वच्छ है। परन्तु- उसके नेत्र फूटे हुए हैं, दर्पण कूं दूषण नहीं। इसी प्रकार से हे पुत्र, पढ़ने वाले या पढ़ाने वाले प्रभू कूं प्रसन्न क्यों

पुत्र, मेरे कूं 'मन' बता हे पुत्र! मन नाम मानने का है, याते तूं दृष्टि खोल के देख। तेरा मन नहीं है, मन पंच भूतों का है। तेरा धन नहीं, यह सप्त धातु जो जड़ है उसका पदार्थ है। ऐसे ही पंच भूतों के समष्टि सतोगुण अंश से मन की उत्पत्ति हुई है। सोहे पुत्र! जब कारण भी जड़ है, तब उसका कार्य जड़ क्यों नहीं होगा? याते हे पुत्र! मन भी जड़ है, तेरा नहीं। तेरी वस्तु हो तो उसके निश्चल करने का यत्न कर। तेरी वस्तु मेरे कूं इतने पदार्थों में कोई देखने में नहीं आती है। हे पुत्र, तू भी मेरी नाई निर्विकल्प निजबोधरूप जो आत्मा है ऐसा देखेगा तब तू भी निर्विकार होके संसार सागर में सुख से चरेगा। तब तेरे कूँ तीन काल में भी तन मन धन इनका पता नहीं लगेगा। याते तू मेरी जैसी दिव्य दृष्टि प्राप्त करने का साधन संग्रह कर। वक्त जाता है, समय बहुत थोड़ा है, जहां से आये हैं वहाँ को जाना है! खेल कूद में मत लगे। मेरा वचन मान। विद्या भणे मत- हे पुत्र! आपा मांगी खावांगा।।इति।।

पुत्रोवाचः- हे मातु श्री! मैं कौन हूँ? मैं साकार हूँ वा निराकार हूँ? वा इनसे कोई अतिरिक्त हूँ? मेरे कूँ मेरी बुद्धि में समझ आवे ऐसा समझा। अब मेरी बहिर्मुखी-वृत्ति का अभाव हुआ है और प्रभू को प्रसन्न करने का मेरा भाव हुआ है याते अब देरी मत कर। मेरे को शीघ्र ही समझा। तेरे वचन सुण सुण करके मैं नामर्द बच्चा मर्द हो गया हूँ।।इति।।

मातो वाच- हे पुत्र! तू कहता है कि- मैं कौन हूँ? सो हे पुत्र! तू सच्चिदानन्द परब्रह्म जीवात्मा है। तेरे में दुःख रूप पदार्थ का लेश भी नहीं है। केवल तेरे प्रकाश कूं पाय करके यह सब दृश्यमान पदार्थ प्रकाशमान हो रहे हैं। तेरा प्रकाश करने वाला इनमें कोई नहीं, क्योंकि स्वरूप से वो जड़ हैं, जड़ वस्तु तो अपने आपकूं भी नहीं जानती; तो पराये पदार्थन कूं कैसे जाएगी? याते हे पुत्र! तू तीन लोक चौदह भुवन का स्वामी है। जो तू ने शंका करी कि- मैं साकार हूँ वा निराकार, वा इनसे अतिरिक्त हूँ? सो हे बेटा! तू केवल शिव कल्याण स्वरूप है। ये जो पण्डितजन विद्या पढ़ते हैं वा पढ़ाते हैं सो तेरी ही बणाई हुई विद्या है। उसको भण करके अपना जीवन पूरा करते हैं। तेरे स्वरूप में पढ़ना गुणना कुछ नहीं, अपने स्वरूप कूं पहिचान, तेरी सब भ्रान्ति दूर हो जायगी। याते हे बेटा! तू भणो मत, आपां माँगी खावाँगा।।इति।।

पुत्रोवाचः- हे मातु श्री! मेरे कूं शीघ्र ही आज्ञा दे; मैं प्रभू को प्रसन्न करने के

निमित्त और अपने स्वरूप की प्राप्ति करने निमित्त महा घोर भयङ्कर बन में जाता हूँ। एकान्त देश बिना या एकाग्र वृत्ति किये बिना मैं मेरे स्वरूप का यथार्थ बोध प्राप्त नहीं कर सकता, गड़बड़ में गड़बड़ हो जाती है, गुप्त स्वरूप का पता लगता नहीं। हे मातुश्री! मैं महाजन का लड़का हूँ; सो महाजन कैसे होते हैं, सो सुण:-

दोहा- बणिया बणिया सब कहे, बणिया बड़ी बलाय।
दिवस शहर के बीच में, निर्भय लूटे खाय॥१॥
बणिया बणिया सब कहे, बणिया कोऊ न एक।
कपट कूट नखशिख भरे, ऐसे बणिक् अनेक॥२॥
बणज करे सो बाणियो, बणज करै बनि जाय।
बिगर बणज को बाणियो, इत उत धक्का खाय॥३॥
सो कपटी सो लापर्वा, सो ठग्गन ठग एक।
इतनो बाणक जब बणे, तब होय बाणियो एक॥४॥

हे मातुश्री! ऐसे भाइयों के बीच में मैंने जन्म लिया है। मैं भी इनके बीच में रहणे से अनेक अनर्थ करूँगा। याते मेरे कूं इनका व्यवहार देख करके अत्यन्त घृणा हुई है। हम जैसे हैं, वैसे तुलसीदास जी महाराज भी कहते हैं-

दोहा- तुलसी कबहुँ न कीजिये, बणिकपुत्र विश्वास।
मीठा बोले धन हरे, रहे दास का दास॥१॥

इन महात्मा जी के वचन सुणके, हे माता! मैं बहुत लज्जित हुआ हूँ। जिस जाति में मैंने जन्म लिया है ऐसी जाति में नारायण किसी कुं जन्म न दे।

"हुई फ़जर, हराम पे नज़र"

एक का सौ, सौका हज़ार, हज़ार का लाख, ऐसे ही अनात्म धन्धा में सब समय पूरा करता है। अब मेरे कूं आज्ञा दे, मैं तेरे वचनों का पालन करूँगा। न आज्ञा देगी! तो मेरा कुसूर नहीं है।इति॥

मातोवाच:- हे पुत्र! तेरे धन्य भाग्य हैं जो तैने तेरे श्रीमुख से मेरे को बहुत प्यारे लगे हैं, मेरे को एसे वचन कहे हैं, सो तेरा काम शीघ्र ही होवेगा। "तेरे कूं संसार में पूर्ण वैराग्य हुआ है" ऐसा मेरी मति में मेरे कूं निश्चय हुआ है। याते हे बेटा! भणे मत, आपाँ मांगी खावांगा।

पुत्रोवाच:- हे मातुश्री! अब मेरा किसी में चित्त नहीं लगता, तेरे में भी प्रेम नहीं, और मेरे पिता श्री में भी मेरे कूं प्रेम नहीं, और इस घर में भी मेरे कूं प्रेम नहीं।

मेरे कूं प्रेम केवल प्रभु के प्रसन्न करणे का वा प्रभु के स्वरूप प्राप्त करने का लग्या है, और किसी पदार्थ में मेरा प्रेम नहीं। सब तेरी कृपा है, तू मेरी माता मेरी गुरू है, तेरी कृपा से सब काम मेरा शीघ्र ही होगा।

मातोवाच:- हे पुत्र! अब तू पूरा वैरागी हुआ है, तेरी जुबान से मुझको मालूम पड़ता है और तेरी व्यक्ति से भी मेरे कूं मालुम पड़ता है। जैसा तेरे मुख से तू कहता है, वैसा ही मेरे कूं तू दीखता है। हे पुत्र! तेरे स्वरूप का कोई आदि अन्त नहीं हैं दत्त भगवान् ने भी ऐसा ही कहा है:-

श्लोक:- **आत्मैव केवलं सर्वं, भेदाभेदो न विद्यते॥**
**अस्ति नास्ति कथं ब्रूयां, विस्मयः प्रतिभातिमे॥**

(अवधूत गीता १-४)

अर्थात्- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक आत्मा ही केवल सत्यरूप है। आत्मा से भिन्न दूसरा कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है; किन्तु मिथ्या हैं। और सर्वरूप आत्मा ही है, क्योंकि- कल्पित पदार्थ की सत्ता अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है। इस वास्ते सम्पूर्ण विश्व आत्मा से भिन्न नहीं है और अभिन्न भी नहीं कह सकते हैं; क्योंकि सम्पूर्ण विश्व चक्षु इन्द्रिय करके दिखाई पड़ता है। यदि अभिन्न हो, तब आत्मा की तरह कदापि निखाई न पड़े। और दिखाई पड़ता है; इस वास्ते अनिर्वचनीय है।

जिसका सत्य असत्य से कुछ भी निर्वचन न हो सके, उसी का नाम अनिवर्चनीय है। जैसे शुक्ति में रहत, आकाश में नीलता, रज्जू में सर्प; यह सब जैसे अनिर्वचनीय है क्योंकि- सत्य होवे तो अधिष्ठान के ज्ञान से इनका नाश न हो, और यदि असत्य होवे तो इनको प्रतीति न हो। परन्तु- इनकी प्रतीति होती है, और इनका नाश भी होता है। इस वास्ते यह अनिर्वचनीय है, और अनिर्वचनीय पदार्थ का अपने अधिष्ठान के साथ भेद अभेद भी नहीं कहा जाता है क्योंकि 'सत्य रूप' 'आनन्द रूप 'ज्ञान-रूप' चेतन अधिष्ठान ब्रह्म के साथ असद्रूप, दुःखरूप, जड़रूप प्रपंच का अभेद कदापि- नहीं हो सकता है, और भेद भी नहीं हो सकता है, क्योंकि- सत्य असत्य के अभेद में कोई दृष्टिान्त नहीं मिलता है। इस वास्ते यह जगत् 'नास्ति' और 'अस्ति' दोनों रूपों से नहीं कहा जाता है। इसी वास्ते विस्मय की तरह (अर्थात् आश्चर्य की तरह) यह जगत् हमको प्रतीत होता है, अर्थात्- बिना हुए (मृग तृष्णा की तरह) प्रतीत होता है"।

तू अस्ति भाति प्रिय रूप से सब जगह परिपूर्ण है। तेरे बिना अणुमात्र जगह भी

खाली नहीं, तू चेतन पुरुष है; तेरी चेतनता कभी लुप्त नहीं होती, तेरा स्वरूप अखण्ड है, जिसका कभी खण्ड नहीं होता। याते हे बेटा! तू भणो मत आपां मांगी खावांगा इति।

पुत्रोवाचः- हे मातु श्री! अब मेरे कुं मेरे सिवाय तीन लोक चौदा भुवन में दूसरा कोई नहीं दीखता। सबका मैं साक्षी हूं। मेरा साक्षी कोई नहीं। इतने वचन कचरा ने अपनी माता के प्रति कहे और चुप होगया इति।

मातोवाचः- हे पुत्र! तूने मौन किससे लगाई है? तेरे कूँ मालुम है या नहीं मौन चार प्रकार की होती है, उसमें से तेरे कौन सी मौन लगाई है? हे पुत्र! तू तेरी मौन खोल। और जिससे तेने मौन लगाई है? सो पदार्थ कौन है वो मेरे कूँ बता। हे पुत्र! तेरा स्वरूप "अवाङ् मनस गोचर है", तेरे कूं तीन लोक में कोई दुःख देने वाला पदार्थ नहीं है, फिर हे पुत्र! तू मूर्ख की नाईं जड़त्व भाव कूं कैसे प्राप्त हुआ है? हे पुत्र! अन्तरङ्ग वृत्ति करके तू अपणे आपकूँ देख और बहिरंग का अभाव कर। जब तक बहिरङ्ग वृत्ति का अभाव नहीं करेगा तब तक तेरी अन्तरङ्ग वृत्ति होणा असम्भव है। क्योंकि- हे पुत्र! एक म्यान में दो तरवार नहीं रहतीं, एक म्यान में एक ही तरवार रहती है। हे पुत्र! तू साड़े तीन हाथ का क्यूं बनता है? हे पुत्र! तेरा स्वरूप शून्य नहीं तू शून्य का साक्षी है। शून्य तेरे कूं नहीं जान सकती, शून्य तेरे करके सिद्ध होती है। देख! अवधूत महाराज भी यही कहते हैं:-

श्लोकः-

**सर्वं शून्यमशून्यश्च, सत्यासत्यं न विद्यते॥**
**स्वभावभावतः प्रोक्तं, शास्त्रसंवित्ति-पूर्वकम्॥**

(अवधूत गीता-१-७६)

अर्थात्- उस आत्मा ब्रह्म में सम्पूर्ण जगत् शून्य की तरह है और आप उस शून्य से रहित है; किन्तु शून्य का भी साक्षी है। उस चेतन आत्मा में सत्य असत्य ये दोनों भी विद्यमान नहीं हैं, और शास्त्रीयज्ञान पूर्वक स्वभाव से ही तिनको विद्वानों ने भावरूप करके कथन किया है।

याते हे पुत्र! तू महापुरुषों का संग कर; और अपने अन्तःकरण से सब पाखण्डों को दूर कर! तेरा अन्तःकरण रूपी कपड़ा जब स्वच्छ होयगा तब हे बेटा! तेरे कूं अति सुख होवेगा। याते हे बेटा! भणे मत, आपाँ माँगी खावांगा॥इति॥

पुत्रोवाचः- हे मातुश्री! आज के चौथे रोज मैं तेरी आज्ञा से महापुरुषों की सभा

में सत्संग करने के लिये गया था। हे माता! सत्संग के तुल्य और कोई वस्तु देखने में नहीं आती। महात्मा तुलसीदास जी भी यही कहते हैं:-

तात स्वर्ग अपवर्गसुख, धरहिं तुला इक अंग।
तुले न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥१॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगति साधु की, हरै कोटि अपराध॥२॥

इससे आदि लेके अनेक ग्रंथों में अनेक महापुरुषों ने सत्संग की महिमा वर्णन की है। सत्संग करने से वा सन्तों के वचनों में श्रद्धा करने से, हे माता! जड़बुद्धि व जड़दृष्टि का शीघ्र ही अभाव हो जाता है। जब से मेरे कूं तूने कही; तब से मैंने हे मातु श्री! नियमपूर्वक जहाँ जहाँ महापुरुषों को सुणता हूँ उसी जगह पर मैं शीघ्र ही जाता हूँ और एकान्त बैठ के जो महापुरुष श्रीमुख से बोलते हैं, उसकूं श्रवण करता हूँ। तैने कहा कि बिना पढ़ेला परमात्मा कूं प्रसन्न करके परमात्मा में लीन हुए हैं, सो यथार्थ है। परन्तु हे मातुरी! कर के रोज़ महापुरुषन के मुखारविन्द से जो कथा श्रवण करने में आई सो तेरे कूँ सुनाता हूं, श्रवण कर-

याज्ञवल्क्य, वामदेव, जड़ भरत, गुरु वशिष्ठ, श्रृङ्गी ऋषि, गौतम ऋषि इनसे आदि लेके और भी पढ़ेलन का बहुत सा नाम लिया, परन्तु हे माता! मेरे कूं इतना ही याद रहा। हे माता! यह सब पढ़ेले हुए हैं, मामूली विद्या नहीं पढ़े थे, वरन् वे पुरुष विद्या के सागर थे, उनके लिखे हुए ग्रन्थ आज भी भरतखण्ड में मौजूद हैं और वे पुरुष निश्चल पद कूं प्राप्त हुए हैं। तू कैसे कहती है कि बिना पढ़े प्रभु कूं प्रसन्न करके प्रभु के स्वरूप में लीन हुए हैं! याते हे माता! यह मेरी यत किंचित् शंका है; उसका समाधान कीजिए। मेरे को तेरे समझाए बिना स्वयं अनुभव नहीं होता, याते शीघ्र ही समझा।इति॥

मातोवाच:- हे पुत्र! जिन पुरुषों का तूने नाम लिया है वो पुरष बराबर विद्या के सागर ही हुए हैं इसमें संशय नहीं, तू सत्य वचन ही बोलता है। परन्तु हे बेटा, वे पुरुष केवल विद्या नहीं पढ़े थे, विद्या पढ़कर गुणी थी और जो गुप्त रहस्य है सो गुणया, बिना प्राप्त करना असम्भव है। आज कल के पुरुष इनके लिखे ग्रन्थों को पढ़ते हैं व अर्थ भी अपनी मति के अनुसार लगते हैं, परन्तु गुप्त रहस्य को नहीं जानते। याते विद्या भण के केवल मदान्ध हो जाते हैं। वे पुरुष गुप्त रहस्य को प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि विद्या पढ़ने से व विद्या का गुप्त रहस्य जाणने से इस जीव

की चौरासी छूटती है। जब तक गुप्त रहस्य को नहीं जानते केवल अनात्मपदार्थ प्राप्त करके खाली विद्वानों का नाम रखाते हैं और गांव गांव में कथा भागवत करते हैं। ये मूर्खता का लक्षण है। हे बेटा! पण्डितजनों की सम दृष्टि होती है, विषम दृष्टि नहीं होती। क्योंकि- भगवत् गीता में श्री मुख से श्रीकृष्ण भगवान पण्डितों के लक्षण वर्णन किये हैं; वे लक्षण इन पुरुषों में नहीं आते, वे पुरुष विद्या का केवल अपमान करते हैं और अनधिकारियों को ब्रह्मविद्या का बोध कराते हैं और इन पुरुषों से याचना करते हैं। क्योंकि- उनको खुदही बोध नहीं होता। जो बोध होता तो अज्ञानी जीवों की वे पण्डितजन आशा क्यूं करते? याते-सिद्ध होता है कि- वे पण्डित जन पुरुष भी अज्ञानियों के बड़े भाई हैं, खाली पण्डितों का नाम रखवाया है; पण्डितों के जैसा उन पुरुषों में गुण नहीं। याते वे पुरुष आशा के पात्र बन रहे हैं। हे पुत्र! अभय पद को प्राप्त करना पण्डित जनों का वा ब्राह्मणों का मुख्य धर्म है। उस धर्म का उन पुरुषों को किञ्चितमात्र भी ख्याल जो होता; तो वे पुरुष मदान्ध नहीं होते। याते सिद्ध होता है कि- उनको गुप्त रहस्य का पता नहीं। गुप्त पद का पता लगणा महा कठिण है। हे पुत्र! जो तेरे शंका की उसका मैंने तेरे प्रति मेरी मति के अनुसार समाधान किया। अब तेरे कूं जो शंका हो सो और पूछ, मैं तेरे पर बड़ी प्रसन्न हूँ। हे पुत्र! याते तू भणे मत, आपां माँगी खावाँगा। इति।

पुत्रोवाचः- हे मातु श्री! मेरे कूं जो ते अध्यात्म विद्या सुणाई सो अध्यात्म विद्या कैसी है कि- जिसको अग्नि जला नहीं सकती, पाणी गला नहीं सकता, पृथ्वी शोषण नहीं कर सकती, आकाश अवकाश दे नहीं सकता, वायु रोक नहीं सकता। ऐसी अध्यात्म विद्या है; जिसकी मैं एक सुख से महिमा वर्णन नहीं कर सकता। उस विद्या का हे मातु श्री! तेरी कृपा से मेरे कूं कुछ रहस्य मिला है। याते- अब मैं समाधि लगाता हूँ तू मेरे को आज्ञा दे। तेरी आज्ञा बिना मैं कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि तू मेरी गुरु है; तू जो वचन मेरे कूं कहेगी उस वचन का मैं पालन करूँगा।इति।

मातोवाचः- हे पुत्र जो तेरे अध्यात्म विद्या की महिमा करी सो अध्यात्म विद्या महिमा करणे के योग्य ही है। परन्तु- बेटा तेने जो कहा कि- मैं समाधि लगाता हूँ, सो तू समाधि किससे लगाता है? महात्मा श्री तुलसीदास की तो साखी है कि-

जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन अवतार।
संत हंस गुण गूह हिय, परिहरि वारि विकार॥

याते सन्तों की जैसी हंस कीसी वृत्ति कर। जैसे हंस वारि का परित्याग करके स्वच्छ दुग्ध का पान करता है; तैसे तू भी अनात्म पदार्थों की तरफ से मौन लगा और दूध का भी दूध जो तेरा स्वरूप है, उसका प्रेम पूर्वक पान कर।

हे पुत्र! एक 'जड़' और दूसरा 'चेतन' दो पदार्थ ब्रह्माण्ड में देखणे में आते हैं। हे पुत्र! जड़ में समाधि लगाणा असम्भव है, क्योंकि वो स्वरूप से ही जड़ है। जिसको अपणे आप का ज्ञान नहीं; वह दूसरे पदार्थ कूं कैसे प्रकाश कर सकते हैं? याते जड़ में समाधि लग नहीं सकती। क्योंकि- वो निरंजन निराकार है। याते- हे बेटा! तू किसकी समाधि लगाता है? मेरे कूं बता।

इन दोनूं पदार्थों से तीसरा पदार्थ मेरीं दृष्टि में वा सुने में आता नहीं, तेरेकूं समाधि लगाने की भावना कैसे उत्पन्न हुई? हे पुत्र! कोई मूर्खों का तेरे कूं सत्संग तो नहीं हुआ? मेरे कूं ऐसा निश्चय होता है कि- हे बेटा! तू बच्चा है तेरे कूं किसी मूर्ख ने बहका दिया है; याते- हे पुत्र! जो कुछ सच्चा हाल हो; सो मरे कूं कह। हे पुत्र! पातञ्जल सूत्र में भगवान् पतञ्जली ने समाधि का ग्रन्थ बनाया है; परन्तु- उस ऋषि के आशय कूं अज्ञानी जीव नहीं जान सकते, क्योंकि वो गुप्त रहस्य है।

केवल हठ करके आपणी आयु कूँ बर्बाद करते हैं, समाधि का उनकूँ पूरा पूरा पता नहीं-

**"योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:"**

और........ अध्यात्मविद्या ह्यधिका, साधु संगम मेव च।

वासनाया: परित्यागश्चित्तवृत्तिनिरोधनम्॥

हे पुत्र! जो वसिष्ठ भगवान् ने उपरोकत श्लोक श्रीराम परमात्मा के प्रति कहा है और दत्त भगवान् ने भी वैसा श्रीमुख से कहा है; सो हे पुत्र! तूभी उस श्लोक में लिखे मूजिब करेगा, तब तेरे कूँ समाधि का पता लगेगा। याते तू बारम्बार विचार कर और पाखण्डियों का संग छोड़। महापुरुषों का निष्कपटी होकर सत्संग कर। तू समाधि का सिद्ध करनेवाला है, तेरे कूँ समाधि सिद्ध करनेवाली नहीं है। हे पुत्र! मरी हुई गौ का दूध नहीं निकलता जिन्दी गौ का सब दूध निकालते हैं, याते समाधि की वासना दूर कर और अपने स्वरूप को देख। जड़ से क्यों सिर फोड़ता है? तिलों बिना तेल नहीं निकलता। समाधि का अष्टांग है। वह जड़ है। हे पुत्र! कुछ विचार कर, क्यों मेरा शिर पचाता है? याते हे बेटा! भणे मत आपाँ मांगी खावाँगा।इति॥

पुत्रोवाच:- हे मातु श्री! जो तैने समाधि का प्रकरण सुनाया सो मैंने साँगापाँग श्रवण किया। अब हे मातु श्री! मेरे कूँ समाधि की तरफ से अत्यन्त वैराग्य हुआ है, मैं सत्य कहता हूँ, मेरी रति मात्र राग नहीं। हे माता! अब मैं सबका साक्षी व सब का दृष्टा व सब पड़ार्थो का प्रकाश करने वाला हूँ। ऐसा तू भी कहती है और महापुरुष भी कहते हैं और मैंने भी अन्वय व्यतिरेक करके जाण्या है। अब हे माता! मैं तेरे से किसी बात की शंका करूंगा नहीं। क्योंकि मैं शंका करता हूँ तब तेरे कूं हे माता दु:ख होता है, शंका का समाधन करना महाकठिन है। तेरी कृपा से मैं निशं:क हुआ हूँ, मैं कचरा नहीं, मैं कचरा का जाननेवाला हूं। हे माता! तेरी कृपा से मेरे को ऐसा अनुभव हुआ है, याते मेरी तेरे को बारम्बार नमस्कार है। हे मातु श्री! अज्ञान जीवों की नाईं मैंने अज्ञानी बन-बन के तेरे से अनेक प्रकार की शंकायें करी, तथापि हे माता! मेरी तरफ से तेरे कूँ रति मात्र भी घृणा उत्पन्न नहीं हुई। याते हे माता! आपकी जय हो! जय हो!! जय हो!!!-

धन्य धन्य माता तुझे, धन्य मोर बड़ भाग।<br>
कथा कही अद्भुत सरस, सुण कर कीनी राग॥१॥<br>
ले आज्ञा सुत मात से, गये राज को त्याग।<br>
राणी धन्य मदालसा, रति न कीनो राग॥२॥

हे माता! अब मेरे को भी शीघ्र ही आज्ञा दीजिए, मैं भी महाघोर बन में जाऊँगा। प्रभु के प्रसन्न करने का एकान्त स्थान होता है- मेरे को निश्चय हुआ है, तू मेरे से ममता मत करे, मैं तेरा पुत्र नहीं, तू मेरी माता नहीं। हे मातु श्री! भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, विचार व जीवन-मुक्ति का विचार आनन्द संघात का संग त्यागे बिना नहीं आता है, याते हे मातु श्री! मेरे कूं आज्ञाकर

॥ इति ॥

मातोवाच:- हे पुत्र! तू एकान्त स्थल में जाने की जिज्ञासा करता है, और मुझसे बात तू ब्रह्म-ज्ञान की करता है। हे पुत्र! तू वाचकज्ञानी तो नहीं है? हे पुत्र! वाचक-ज्ञान से तेरा कोई कार्य सरेगा नहीं। हे पुत्र! ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक सापेक्ष्य ज्ञान होता है; और दूसरा निरपेक्ष्य ज्ञान होता है। किसी की सहायता से जो ज्ञान होता है सो सापेक्ष्य ज्ञान कहा जाता है; और जहां किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं सो निरपेक्ष्य ज्ञान कहा जाता है, याते हे पुत्र! तेरे वचनों से ऐसा सिद्ध होता है; किन्तु किसी की सहायता लेकर के ऐसा वचन बोलता है। स्वयं-विज्ञानियों

की नाईं नहीं बोलता, याते हे पुत्र! तू सत्य वचन बोल और प्रभु कूँ प्रथम प्रसन्न कर। हे पुत्र! प्रभु को प्रसन्न करने की यही तेरे कूँ युक्ति बताती हूँ। पूर्व भी तेरे कूं अनेक युक्तियाँ बताई थीं।

हे पुत्र! तन, मन, धन, वाचा प्रभु के अर्पण किये बिना प्रभु प्रसन्न नहीं होता। याते तैने तन, मन, धन, वाचा प्रभु के अर्पण करी या नहीं? तेरे वचनों से सिद्ध होता है कि- तेरे को पूरा-पूरा देहाभिमान है। हे पुत्र! भक्ति व ज्ञान देहाभिमान के गले बिना दोनूँ पदार्थों की सिद्धि नहीं होती, याते तेरे कूँ भक्त व ज्ञानी बनना हो तो पूर्व अवस्था में जैसे भक्त और ज्ञानी हुए हैं सो हे पुत्र, वे निष्कपटी हुए हैं; तेरा नाईं वाचाल नहीं हुए। हे पुत्र! अब तू मेरा वचन मान और जड़ वर्ग से ममत्व हटा तत्पश्चात् हे पुत्र! तेरे पर प्रभु स्वतः ही प्रसन्न होवेंगे। तब तब तेरा बोल चाल, बैठ-उठ अज्ञ अवस्था की नाईं नहीं रहेगी। याते हमारे कूं तेरे व्यवहार से आपही मालूम पड़ जावेगी तेरे कहने की कोई अपेक्षा नहीं रहेगी।

भक्त व ज्ञानी का हे पुत्र! व्यवहार से पता लगता है। खाली मुख से बकने से वाचक-ज्ञानी कहा जाता है; याते हे पुत्र, कुछ समझ और भणे मत आपाँ दोनूं मां बेटा माँगी खावांगा।

पुत्रोवाचः- हेमातु श्री! जो तैने मदालसा की कथा मेरे प्रति सुनाई, सो हे माता! मैंने प्रेम से श्रवण करो और हे माता! भक्तों व ज्ञानियों का जो लक्षण कहा सो भी मैंने प्रेम से श्रवण करा। हे माता! मेरे कूं मेरी देह में बहुत दिनों से प्रेम है, अब तेरी कृपा से मैं उस देह से प्रेम शनैः-शनैः हठाऊँगा और भक्तों की नाईं मैं भी तन, मन, धन, वाचा प्रभु के अर्पण करूँगा।

हे माता! मेरे कूं यह मालूम नहीं था कि- यह प्रभु की है। हे मातुश्री! पूर्व अवस्था में तैने मेरे कूं उपदेश किया था, परन्तु हे माता, वह उपदेश मेरी बुद्धि से विस्मरण हो गया और हे माता! अब मेरे भणने से अत्यन्त घृणा हुई है। हे माता! मैं तो एक प्रभु का नाम ही भणूँगा। मेरी राग भणने पर अब रति मात्र नहीं है। केवल तेरे वचनों में मेरी राग है। हे माता तू मेरी गुरु है। हे माता! पूर्व अवस्था में जो वचन मैंने तेरे कूं कहा था सो हे माता- निश्यात्मक बुद्धि से नहीं कहा था, तू मेरे अन्दर के. हाल जानती है, याते मेरी गुरु है। तेरे कोई बात छिपी नहीं। हे माता! अब मैं भिक्षा मांग के खाऊँगा और तेरे वचनों का पालन करूँगा, मेरे को प्रभु प्रसन्न करने की सरलयुक्ति बता पूर्व जो भक्त हुए हैं, उन्होंने मेहनत करके दो

पैसा पैदा करके अपने बाल-बच्चों को पाला है, और अपने प्राणों की शान्ति करी है। भक्तों का काम मांग के खाने का नहीं। भिक्षा मांग करके खाना केवल सन्तों का काम है। भक्तों का काम नहीं! हे माता! अब जो आगे तू कहे सो मैं करूँ।इति॥

मातोवाचः- हे पुत्र तेरे कूं भक्त होना हो तो परम भक्त श्रीमारुतीजी महाराज हुये हैं। वे प्रभु की शरण अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी रहे हैं। हे पुत्र, देह-दृष्टि से वे प्रभु के दास थे, ओर जीव-दृष्टि से प्रभु के अंश थे और आत्मदृष्टि से वह प्रभु की आत्मा ही थे; ऐसी उनकी दृष्ट निश्चल मति थी।

**देहबुद्धयातु दासोऽहं, जीवबुद्धया त्वदंशकः।**
**आत्मबुद्धया त्वमेवाहं, इति मे निश्चला मतिः॥**

तब हे पुत्र! प्रभु उनके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। हे पुत्र! तेरे को भक्त बनना हो तो कमा के खाना और मारुती जी की नाईं तू भी प्रभु को जैसे मारुती जी ने प्रसन्न किया, तैसे तू भी करना; यह भक्तों के लक्षण हैं। सामान्य रोति से दर्शाया है। हे पुत्र! और ज्ञानी बनना, हो तो जड़ भरत महाराज की नाईं बनना। एक कोई चोरों का राजा था। देवी के बलिदान के निमित्त किसी आदमी की उसे जरूत हुई थी। उसने अपने जल्लादों को हुकम दिया कि कोई लावारिशी आदमी कूं पकड़ के लाओ। जल्लाद अपने स्वामी की आज्ञा लेकर राजा की बस्ती से दस कोस छेटी पर एक महाभयंकर झाड़ी थी, वहां जल्लाद गए। उस झाड़ी में परमहंस जड़ भरत कैसा है कि उनके शरीर पर हिन्दु का चिन्ह- ऐसी व्यवस्था से रहते थे, जल्लादों ने महाराज- शरीर कूं देखा, और निश्चय किया कि बराबर ये लावारिशी पुरुष है, इसको ले चलो। जो राजा ने कहा वह अब अपने को मिल चुका है। चलो- देरी मत करो। उन जल्लादों ने महाराज शरीर की दोनों भुजायें पकड़लीं और राजा के पास ले गये। हे पुत्र! जल्लादों ने महाराज शरीर को लेजाकरके राजा के सन्मुख खड़ा कर दिया। राजा ने हुकम दिया कि इनकूं बगीचे में ले जाओ और इनकूँ स्नान कराओ, सुन्दर खाना खिलाओ, रात्रि कूं नौ बजे देवी के बलिदान के समय जल्लादों! तुम इनको लाना। हे पुत्र! रात्रि के नौ बजे जब देवी बलिदान का समय हुआ तब जल्लाद महाराज श्री कूं देवी के मन्दिर में लाये और लाकर के देवी के सन्मुख खड़ा कर दिया। हे पुत्र! राजा ने अपने पुरोहित से कहा- इस पुरुष का शीश काट के देवी को चढ़ाओ। समय हो गया है- देरी मत करो, देवी नाराज हो

जायगी। हे पुत्र! इतना वचन राजा का सुन करके राज-पुरोहित ने जल्लादों से कहा कि इसका सिर तलवार से काटो। हुकम देते ही जल्लाद महाराज श्री का सिर काटने को खड़े हुये, और म्यान से तलवार काढ़ने लगे। हे पुत्र! महाराज श्री ज्ञान-विज्ञान की मूर्ति थे, देवी कम्पायमान होकर- महाराज श्री को देख करके राजा को उस सभा में बोलती भई- 'हे राजा! तू अंधा तो नहीं है। तू मेरे कूं किसका बलिदान देता है? हे अज्ञानी राजन! ये अवधूत जड़ भरत साक्षात् त्रिभुवन नाथ हैं। तेरे कूं इनका पता नहीं। याते तू अपने हाथ जोड़ के इनके चरणों में पड़ और अपनी माफी चाह, नहिं तो यह जड़ भरत तेरे कूं और मेरे कूं भस्म कर देंगे। हे राजन्! तू और मैं इन महापुरुषों के संकल्प से बने हुए हैं, तू इस सड़ासा राज्य कूं प्राप्त करके महान्ध हुआ है। महात्मा जड़ भरत के बड़प्पन का तेरे कूं पता नहीं। हे राजन्! तेरे जल्लादों ने व तेरे नौकरों ने व तेरे वजीर ने व तैने महाराज श्री कूं बहुत ताड़ना की है, तदपि महापुरुष जड़ भरत अपने निश्चय से नहीं हटे हैं; ये ही इनमें एक बड़ा भारी बड़प्पन है। हे राजन्! तैने कितनी नादानी की तदपि महाराज श्री अफुर होकर के सब तेरे खेल देखते रहे और तेरे से कुछ भी नहीं कहा। हे पुत्र! ज्ञानी बनना हो तो महापुरुष जड़ भरत की नाई बनना। खाली ज्ञानियों का नाम नहीं रखवाना, खाली ज्ञानियों की सी बात नहीं करना। पुत्र! जान सब को प्यारी है। शीश कटने की तैयारी हुई और जल्लाद ने हाथ में खड्ग म्यान में से काढ़ भी लिया, तथापि महापुरुष अपने मुख से कुछ नहीं बोलते भये। और हे राजन्! इनकी पूजा कर और क्षमा मांग। राजा ने तद्वत् किया अस्तु; हे पुत्र! देख, राजा रहुगण की सभा में जल्लाद पकड़ कर लाये, तब भी महाराज आनन्दमय थे, और सभा में लेकर के खड़ा किया तब भी आनन्दमय थे। हे पुत्र! जड़ भरत महापुरुष को देह में रति-मात्र अध्यास नहीं था। केवल अपने आप में मगन थे। हे पुत्र! जड़ भरत व राजा रहुगण की कथा भागवत में लिखी हुई है। मैं पढ़ी हुई नहीं हूँ। महापुरुषों के सत्संग में यह इतिहास मैंने श्रवण किया था। जितनी मेरे को याद थी उतनी मैंने तेरे कूं सुनाई। हे पुत्र! ज्ञानी बनना हो तो जड़ भरत की नाई बनना। ज्ञानी बनना सहज नहीं।

**देहाभिमानं गलिते, विद्यते परमात्मने।**
**यत्र यत्र मनोयाति, तत्र तत्र समाधयः॥१॥**

हे पुत्र! जड़ भरत की सब पदार्थों में समबुद्धि थी। ज्ञानी पुरुष किसी से भय

मानते नहीं। वह पुरुष निर्भय पदवी कूं प्राप्त हुए हैं, और स्थावर जंगम दृष्यमान जड़, वर्ग पदार्थ उनको सब शून्य दीखते हैं। वह स्वयं चेतन पुरुष हैं शून्य के साक्षी को चेतन कहते हैं। हे पुत्र! तैने कहा कि- मैं भणूंगा नहीं। मेरे को भणने की तरफ से अत्यन्त घृणा हुई है, सो हे पुत्र! कहने से कुछ नहीं होता। करके दिखावेगा तब मैं स्वयं जानलूंगी। जैसे परमभक्त मारुतीजी महाराज व ज्ञान-विज्ञान की मूर्ति अवधूत जड़ भरत जी महाराज इन्होंने जैसा कहा वैसा करके दिखाया।

हे पुत्र! तूं भी करना हो तो ऐसा ही करना, नहीं तो उभय लोक से भ्रष्ट हो जायगा। मैं तेरी माता मोहिनी यह तेरे प्रति सत्य कहती हूँ तू एकान्त में बैठ करके मेरे ऊपर कहे हुए वचनों का विचार कर।

पुत्रोवाचः- हे मातुश्री। तैने भक्तों की व ज्ञानियों की मेरे कूं कथा सुनायी। सो कथा कैसी है, जिसके श्रवण करते ही मेरे रोमांच खड़े हो गये हैं। हे मातुश्री! भक्तों ने कमा के खाया है और प्रभु को प्रसन्न किया है। अनर्थ उन्होंने अपनी जिन्दगी में कोई किया नहीं। हे मातुश्री! मैं मूलचन्द भक्त का लड़का हूं। तू कहती है कि आपां मांगी खावांगा, भणे मत। सो हे माता! भक्त मांग के खाते नहीं, कमा के खाते हैं, सो हे माता! मेरे कूं तू ऐसा बोध क्यों करती है कि- आपा दोनूं मां-बेटा माँगी खावाँगा? हे मातुश्री! मैं तेरे इस गुह्य आशय कूं नहीं समझा- मेरे को खुलासा करके समझा।

मातोवाचः- हे पुत्र! जो तैने कहा कि "भक्त मांग के नहीं खाते हैं, कमा के खाते हैं और मेरे कूं माँग के खाने का तू बोध क्यों करती है?" ऐसी तो तैने शंका करी है, सो हे पुत्र! तेरे को भक्त बनना है वा सन्त बनना है? सन्त बनना हो तो पूर्व सन्तों के लक्षण कहे हैं- वैसे और भक्त बनना हो तो पूर्व भक्तों के लक्षण कहे हैं वैसा हो। हे पुत्र! दोनों में से जो तेरे को अच्छा दीखे सोकर। हे पुत्र। सन्त में और भक्त में व्यवहार से थोड़ा सा फ़र्क़ दीखता है, और परमार्थ से भक्त की और सन्त की निश्चियात्मक बुद्धि एक ही है।

भक्त-भक्ति-भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक।
जिनके पद वन्दन किए, नाशत विघ्न अनेक॥

हे पुत्र! निश्चय में फ़र्क़ नहीं। तेरे को भक्त बनना है वा सन्त बनना है? शीघ्र ही बोल। हे पुत्र! तू गृहस्थ नहीं है- तू सन्त है। भले मैं तेरे कूं बारम्बार कहती हूँ कि तू भणे मत आपां माँगी खावागां। तेरे स्त्री नहीं, तेरे पुत्र नहीं, तेरी माता मैं

मोहिनी नहीं। हे पुत्र! तू गृहस्थी कोई जगह से सिद्ध नहीं होता तू मेरे को सन्त दीखता है याते मैं तेरे कूं बारम्बार कहती हूँ हे बेटा! मणे मत आपां दोनों माँ-बेटा माँगी खावाँगां ऐसा बोध करती रही। तेरी अक़्ल अब मुक़ाम पर आई है तत्पश्चात् तैने ऐसी मेरे से शंका करी है। हे पुत्र! जो तूने शंका की उसका तेरे कूं मैंने समाधान किया। अब हे पुत्र! शीघ्र ही तू निर्द्वन्द हो करके जैसे रानी मदालसा के पुत्र, घर से निकल करके महावीर बन को गए थे। ऐसे ही तू भी लकड़ी मट्टी के घर से व हाड़ के साढ़े तीन हाथ के घर से उपराम वृत्ति करके महाघोर बन को जा। वहां जीवन-मुक्ति का आनन्द लेना। हे पुत्र! तपोभूमि में गए बिना तप की सिद्धि नहीं होती है। तेरे मेरे में ममता रतिमात्र नहीं है। हे पुत्र! ममता किसमें करता है? सो मेरे कूं बता। इतने वचन कचरा अपनी मातुश्री का सुन करके और जो गुप्त तत्व का बोध अपनी मातुश्री ने किया था सो अपनी बुद्धि में दृढ़ निश्चय करके बन में जाने को तैयार हुआ। उक्त वचन सुन करके कचरा की माता कचरा से बोलती भई कि- हे पुत्र! तेरे को मैं एक कथा और सुनातौ हूँ- तू श्रवण कर-

एक कोई गृहस्थ था, सो वो अपने गृहस्थाश्रम कूं त्याग करके महापुरुषों के शरण जा करके सन्यास को लेता भया, कोई काल तक उस पुरुष ने तीर्थों में बास किया और बड़े बड़े महापुरुषों का सत्संग किया। अध्यात्म-विद्या के ग्रन्थों का अवलोकन किया। हे पुत्र! तीन वर्ष तक उस पुरुष ने तीर्थों में निवास किया। काल पा करके एक दिन मन में विचार किया कि देशान्तर में विचरें। महात्मा वहाँ से दूसरे दिन चल दिये। और फिरते फिरते पाँच सात वर्ष व्यतीत हुए। तब महात्मा का शरीर वृद्ध हो गया। तो एक ग्राम से दो कोस छेटी ऊपर एक झाड़ी थी, वहाँ महात्मा जा करके बैठ गये, और अपने रहने के लिए जगह साफ करने लगे, अपने हाथों से छोटी सी झोंपड़ी बनाई, अनेक प्रकार के झाड़ लगाये। और अपनी झोंपड़ी से पच्चीस कदम छेटी के ऊपर अपने हाथों से एक छोटा सा तालाब खोदा। उस तालाब में पानी बारहोंमास तक रहने लगा। हे पुत्र! महात्मा-पुरुष के रहने से वह जगह बहुत ही रमणीय हो गई और हरिजन बहुत से आने जाने लगे, और बहुत सी गौ, भैंस, बकरी, पशु इत्यादि पानी पीने को आने लगे, हरिजन महापुरुष की सेवा भी करने लगे। एक दिन एक बृद्ध गौ पानी पीने को उस तालाब में आई, गर्मी के दिन थे, पानी उस तालाब में थोड़ा रह गया था। और कीचड़ बहुत था। उस कीचड़ में गौ का दोनूं अगला और पिछला पग गच गए। पानी पीने न पाई और

अधबिच में उसने प्राण त्याग दियो। प्राण त्यागते ही हत्या आई और महात्मा जी से जाकर बोली कि "हे महात्माजी! मैं हत्या हूं, तुमने तुम्हारे हाथन से तालाब खोदा है। उस तालाब में आज गऊ कीचड़ में गच करके मर गई है, याते तालाब के बनानेवाले आप हो, मैं हत्या आपके लगूंगी।" हत्या का वचन सुन करके महात्माजी बोलते भये। "हे हत्या! हाथों के देवता इन्द्र हैं उसने ही तालाब खोदा है मैंने नहीं खोदा। मैं असंग पुरुष हूँ। हे हत्या तू इन्द्र के पास जा और इन्द्र के ही लग"। इतने वचन हत्या महापुरुषन का सुन करके शीघ्र ही इन्द्र के पास गई। और इन्द्र से कहने लगी कि "हे इन्द्र! मैं हत्या हूं, तैने तेरे हाथ से तालाब खोदा है, उसमें आज गऊ मर गई है, मैं तेरे लगूंगी"। इतने वचन इन्द्र हत्या का सुन करके इन्द्र हत्या से बोलता भया:-

हे हत्या! इस महात्मा ने (तीस + सात) = सैंतीस वर्ष फ़कीरी करी तदपि हत्या, अन्त में अनात्म पदार्थों में ममत्व करके तालाब, बगीचा व मढ़ी, चेला-चेली पदार्थ इकट्ठा करने लगा। अब सिर पे हत्या आके पड़ी तब वेदान्ती बना और तेरे से कहने लगा कि हाथों का देवता इन्द्र है, उसकी जाकर तू लग, मैं सच्चिदानन्द हूँ। हे हत्या! यह महात्मा अपने मुख से सत्य वचन नहीं बोलता। तद्दन? असत्य बोलता है। हे हत्या! तू मेरे संग में चल। वह महात्मा अपने मुख से ही आप ही तेरे- मेरे से कहेगा कि मैंने तालाब मेरे हाथों से खोदा है- मैंने बगीचा मेरे हाथों से लगाया है, मैंने पानी पीने की की कुण्डी मेरे हाथों खोदी- मैंने मढ़ी मेरे हाथों बाँधी इत्यादि। हे हत्या! ऐसे वचन वह सन्त अपने मुख से बोलेगा। इतने वचन सुन करके हत्या इन्द्र-संग में महात्माजी की मढ़ी पर आयी? इन्द्र ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया। बगीचे के मायां जा करके बैठ गया। हत्या कूं बगीचे के बाहर बिठा दी, थोड़ा काल पाकर के महात्मा बग़ीचे में टहलते टहलते जहां इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके बैठा था- तहां आया और ब्राह्मण को देख करके अन्न-जल पूछता भया, इन्द्र के पास महात्मा बैठ गया। इन्द्र महात्मा से पूछता भया- हे सन्त जी! यह मढ़ी, यह बग़ीचा, यह कुण्डी, यह तालाब किसने बनाये हैं। इतने वचन महात्मा के सुन करके (महात्मा ने) श्रीमुख से कहा:-

हे ब्राह्मण! यह तालाब मैंने मेरे हाथों खोदा है, ऐसे ही मढ़ी, कुण्डी, बग़ीचा मैंने मेरे हाथ से बनाया है- ऐसे वचन इन्द्र के सन्मुख महात्मा ने कहे। इन्द्र ने शीघ्र बाहर से हत्या को बुलाई और कहने लगे कि हे हत्या! यह महात्मा खुद

कर्ता भोक्ता बनता है और अपने सिर पर पड़ती है, तब मेरे सिर पर पटकता है, जो कुछ इसने मुख से कहा है सो तैने भी श्रवण किया है। याते हे हत्या! अब तू इस महात्मा के लग। मैं मेरे भवन को जाता हूं। इतने वचन कह कर के इन्द्र अपने भवन कूँ गये।

हे पुत्र! दूसरी कथा और श्रवण कर- एक कोई महात्मा थे, उसने एक गृहस्थ के लड़का को अपना चेला बनाया। महात्मा कैसे थे- साक्षात् विष्णु रूप थे। अपने शिष्य पर जब प्रसन्न होते तब अपने श्री मुख से ऐसे वचन बोलते- "शिष्य! कुछ बनना नहीं, जो कुंछ बनेगा तो अत्यन्त मार खायगा। एक दिन दोनूं गुरू-शिष्य हरिद्वार को यात्रा करने के निमित्त निकले। रास्ते में दिन अस्त होगया, थोड़ी छेटी ऊपर एक बगीचा था, उसमें दोनूं गुरु चेला गये, वहां पर एक अमीर आदमी की कोठी बन रही थी। उस कोठी में जाकर के दोनूँ गुरु चेला अपना आसन लगाकर रात्रि कूं सोये, मध्य रात्रि के बारह बजे उस कोठी का अधिपति अपने नौकरों को संग में लेकर के गाड़ी में बैठ करके बगीचे में आया। नौकरों को हुकम दिया कि माया जाके देखो कोई आदमी है तो नहीं? नौकर अपने मालिक के हुक्म से अन्दर गये और देखा तो दो पुरुष नंगे होकर के सो रहे थे। नौकर उनकूं देख करके डर गया। बाहर आकर के अपने मालिक से कहने लगा- हे स्वामिन्। मायां दो नंगे सो रहे हैं। उस अमीर हे पुत्र! गुरु महाराज कुछ भी नहीं बोलते भये चुपचाप बाहर चले गये और चेला के दो चार हण्टर मारे। चपरासी कहता है- तू कौन है? चेला कहता है- मैं साधु हूं। चपरासी और ज्यादा ताड़ना करी और धक्का देकर बाहर निकाला। ऐसा रोता रोता गुरु महाराज के पास आया। गुरु महाराज ने कहा कि- हे चेला! तू क्यों रोता है? चेला कहता है, हे महाराज! मेरे कूँ मारा है। गुरु महाराज कहते हैं- हे चेला! तू कुछ बन्या होगा? चेला कहता है- मेरे से पूछा तू कौन है? तो मैंने कहा कि मैं साधु हूं। हे पुत्र! गुरू का वचन कूँ समय पर याद नहीं किया, तब हे पुत्र तू भी ऐसा ऐसा काम नहीं करना जो बनेगा तो कोई काल में बिगड़ेगा। जो बस्तु बनती है सो अवश्यमेव बिगड़ती है। हे पुत्र! उस महात्मा ने अपने आत्मबल कूँ त्याग करके अनात्म पदार्थ में अत्यन्त राग किया। हे पुत्र! न धोबी का गधा घर का रहा न घाट का रहा, याते तू घर ही रह। संतों की पदवी प्राप्त करना महा कठिन है। महापुरुषों का वचन है कि:-

**रागद्वेषविनिर्मुक्तः, सर्वभूतहिते रताः।**
**दृढबोधश्च धीरश्च सगच्छतिपरं पदम्।।१।।**

और भी सुन-

**संनियम्येन्द्रियग्रामं, सर्वत्र समबुद्धयः।**
**ते प्राप्नुवंति मामेव, सर्वभूतहितेरताः।।१।।**

हे पुत्र! महात्मा पुरुष कैसे होते हैं। इनके धैर्य जैसे पिता है और क्षमा जैसी माता है, शान्ति जैसी अर्धांगी है, सत्य जैसा पुत्र-मित्र है, दयारूपी जिनके भगिनी है और संयम जिनके भ्राता हैं, और शय्या जिनकी सकल भूमि है। दसो दिशा जिनके वस्त्र हैं। ज्ञानरूपी अमृत का वह अष्टप्रहर पान करते हैं। हे पुत्र, जिन महापुरुषों को ऐसा कुटुम्ब प्राप्त हो गया है- वह महापुरुष किसी को भय देते नहीं, किसी से भय मानते नहीं।

## पद राग मल्हार

मों सम कौन बड़ो घरबारी।
जा घर में सपनेहु दुःख नाहीं, केवल सुख अति भारी।टेक।।
पिता हमारा धीरज कहिये, क्षमा मोर महतारी।
शान्ति अर्ध अंग सखि मोरी, बिसरे वो नाहि विसारी।।
मों सम कौन बड़ो घरबारी।।१।।
सत्य हमारा परम मित्र है, बहिन दया सम वारी।
साधन संपन्न अनुज मोर मन, मया करी त्रिपुरारी।।
मों सम कौन बड़ो घरबारी।।२।।
शय्या सकल भूमि लेटन को, वसन दिशा दश धारी।
ज्ञानाभूत भोजन रुचि रुचि करूं, श्रीगुरु की बलिहारी।।
मों सम कौन बड़ो घरबारी।।३।।
मम सम कुटुम्ब होय खिल जाके, वो जोगी अरुनारी।
वो जोगी निर्भय नित्यानंद, भय युत दुनिया दारी।।
मों सम कौन बड़ो घरबारी।।४।।

हे पुत्र! बिना पूंजी सेठ नहीं बन्या जाता है। तेरे पास पूंजी नहीं है और सेठ बनना चाहता है, सो तेरी अत्यन्त मूर्खता है। हे पुत्र! बहुत से साधु अपनी बस्ती में

आते हैं और शिड़े शिड़े आदमियों को कथा भागवत सुनाते हैं। जैसे श्रोतागण कहते हैं, वैसे ही उनको टाइमटेबिल बनानी पड़ती है। हे पुत्र! जिसके नाम से उन्होंने यह भेष बनाया है, उसका उन संतो को रतिमात्र ख़याल नहीं। जो ख़याल होता तो उनके व्यवहार से खोटा-खरा का पता लगता। हे पुत्र! वे संत आध सेर लोट में व आध सेर दूध में वेदान्ती हा करके गुलाम बन जाते हैं। मुख से वेदान्त को बात करते हैं। हे पुत्र, उनको शर्म नहीं आती है। वेदान्तियों को अपनी देह का भान नहीं रहता तो हे पुत्र! वह कथा किसको सुनावेगा? अर्थात् किसी कूं भी नहीं सुनावेगा। याते हे पुत्र! तेरे कूं मैं समझाती हूँ। तू भी बन में जाने की कहता है तो, जिस काम को जाता है- वह ही काम करना। ऊपर जैसे सन्तों की जैसी कथा सुनायी है- वैसे काम नहीं करता। ऊपर जैसे सन्तों की जैसी कथा सुनायी है- वैसे काम नहीं करना। महापुरुषों की पदवी प्राप्त करना तब तो बन में जाना, नहीं तो नहीं जाना। हे पुत्र! कहना बहुत सरल है, करना महा खाँडा की धार है। याते मैं तेरी माता मोहिनी तेरे कूं बारम्बार समझाती हूं। तू बन में जाने की कहता है। मेरा रोम रोम खुश होता है; परन्तु हे पुत्र! तेरे कूं कोई दुष्ट जीवों का संग न हो जाय। हे पुत्र! वे दुष्ट जीव कैसे हैं कि तेरे कूं वे अपने फंदे में लेलेंगे। अच्छे पुरुषों का सहवास होना महा दुर्लभ है। इतना वचन कचरा की माता कचरा को कह करके चुप हो गई।इति॥

पुत्रोवाचः- हे मातु श्री! मेरे ऊपर तेरी अत्यन्त कृपा है। मेरे कूं तू बारंबार मेरे सुधार के लिये समझाती है। हे माता। मेरे को तेरे वचन बहुत प्रिय लगते हैं जो तैंने कथा आज श्रवण कराई, ऐसी कथा मैंने कभी श्रवण करी नहीं। हे माता! तैंने जो कथा सुनाई सो कथा नहीं है- महान् मंत्र हैं! हे माता! मेरा कोई पूर्वला तपोबल बहुत प्रबल है, उसके प्रताप से मेरे को ऐसी कथा श्रवण करने में आयी है। हे माता! अब मैं बन को जाऊँगा, मेरे को शीघ्र आज्ञा दे। मेरा चित्त अब यहाँ लगता नहीं। चित्त-वृत्ति उपराम बहुत हो गई है। महाबन में महापुरुष रहते हैं, उनका मैं सत्संग करूंगा, और उनके चरणों में ही रहूँगा। भिक्षावृत्ति करके मेरे प्राणों की शान्ति करूंगा।

हे मातुश्री! तेरी भेंट करने कूं मेरे कूं कोई पदार्थ सुन्दर दीखता नहीं। याते हे माता, अब कौनसा ऐसा पदार्थ है जो मैं भेंट करूँ? मेरे को ऐसा कोई नहीं दीखता जो हे मातुश्री, मैं तेरी भेंट करता। हे माता, सब पदार्थ अनात्म हैं- अनित्य हैं, जड़

है, दुःख रूप हैं। याते हे माता! ऐसे पदार्थों का भेंट करना नहीं बनता है। हे माता! अब मेरे कूं आज्ञा दे, इतने वचन कचरा अपनी माता कूं कह करके चुप होगया।इति॥

मातोवाचः- हे पुत्र! तू बारम्बार बन में जाने की आज्ञा मांगता है, याते तेरे कूं धन्य है। बन में दो प्रकार के संत रहते हैं। एक संत तो निर्विकल्प समाधि में अखंड स्थित रहते हैं, और दूसरे संत ऋद्धि-सिद्धियों की उपासना करते हैं। हे पुत्र, वह ऋद्धि-सिद्धि की उपासना करके सब जन्मा राखो देते हैं। तदपि ऋद्धि-सिद्धि उन पर प्रसन्न नहीं होती, क्योंकि ऋद्धि-सिद्धि परमात्मा के चरणारविन्द की दासी है। परमात्मा कूं प्रसन्न किए बिना ऋद्धि-सिद्धि-उन पर प्रसन्न नहीं होती, उनके कब्जे में नहीं होती। हे पुत्र! खोटा नाम सिद्धों का रखवा करके मदारी की नई अनेक खेल उन जीवों को दिखाते हैं। हे पुत्र! वे संत मदारी के बड़े भाई हैं, क्योंकि गांव-गांव में जैसे मदारी अनेक खेल करता है, तैसे वे महात्मा भी झूठी-सिद्धि लोगों कूं दिखा करके उनका द्रव्य हरते हैं। हे पुत्र! जो उनको सच्ची सिद्धि प्राप्त हो जाती तो मदारी की नाईं गांव-गांव में वह संत दो-दो पैसे के लिए नहीं भटकते। याते सिद्ध होता है कि वह नक़ली संत हैं। करने का काम उन्होंने नहीं किया। आपने भी अधोगति कूं जाने का यत्न किया और उनके सत्संगियों को भी अधोगति में जाने का ही बोध किया। हे पुत्र! सच्चे महापुरुषों के चरणों में ऋद्धि-सिद्धि हरदम हाथ जोड़ के खड़ी रहती है। तदपि वह महापुरुष दृष्टि खोल के उनकी तरफ झांकते भी नहीं। क्योंकि ऋद्धि-सिद्ध से महापुरुषों को कुछ भी प्रयोजन नहीं। हे पुत्र! उन महापुरुषों कूं ऋद्धि-सिद्धि का जो स्वामी है, उसमें प्रेम है। ऋद्धि-सिद्ध में प्रेम नहीं, ऋद्धि-सिद्धि इस जीव कूं उभय लोक से भ्रष्ट करने वाली है। चौरासी से उस जीव का उद्धार नहीं होता, याते हे पुत्र! तू तो महापुरुषों का सत्संग करना और प्रभु को प्रसन्न करना। प्रभु को प्रसन्न करने से अष्टसिद्धि नवनिधि व तेंतीस कोटि देवता सब तेरी सेवा करेंगे। जो प्रभु कूं प्रसन्न नहीं करते हैं, घर त्याग के संत होते हैं, उनको अष्टसिद्धि नवऋद्धि व तेंतीस कोटि देवता उन जीवों कूं महादुःख देते हैं और घोरानघोर नर्क में पड़े हैं। हे पुत्र! अष्टसिद्धि नव ऋद्धि व तेंतीस कोटि देवता प्रभु की सेना हैं। प्रभु कूं प्रसन्न किये बिना या उनके स्वरूप की प्राप्ति हुए बिना कोई प्रसन्न नहीं होते। हे पुत्र! अब तू कुछ तप करने लायक़ हुआ है। हे पुत्र! तू भी ध्रुव महाराज की नाईं अब बन में जा, मेरी तेरे को

आज्ञा है। मेरा उपदेश भूलना नहीं। हे पुत्र! मेरा उपदेश भूल जायगा तो चौरासी में तेली के बैल की नाई इधर उधर फिरता ही रहेगा। चौरासी छुटाना महा कठिन है। बड़े बड़े ऋषि महर्षियों को तप करने के समय विघ्न हुए हैं। हे बेटा! अपनी धीरता से हटना नहीं। मेरे दूध को लजाना नहीं। हे पुत्र! शूरमा रण में जाते हैं, शत्रु को मार के पीछे मुख मोड़ते हैं। उनकी हे पुत्र, इस लोक में व परलोक में जय जय होती है। हे पुत्र! कायर शूरमा-शत्रु कूं देख के मुख मोड़ के भागता है, उसकूं उभय लोक में मुख दिखाने की कहीं जगह नहीं रहती। याते हे पुत्र! असली शूरमा बनना और महा शत्रु जो अज्ञान है, ज्ञानरूपी खड्ग से उसको मारना। हे पुत्र! अब कहाँ तक तेरे कूं उपदेश करूं? महापुरुषों का सत्संग करना, महापुरुष तेरे को अलौकिक उपदेश करते रहेंगे। जब तक तेरी देह है तब तक महापुरुषों के चरणारविन्दो को छोड़ना नहीं। हे पुत्र! महापुरुष प्रभु के प्यारे हैं। तेरे को प्रभु से शीघ्र ही मिला देंगे। इतना वचन कचरा की माता करा से कह करके कचरा कूं बन जाने की आज्ञा देती भई-

पुत्रोवाचः- हे मातुश्री! मैं आपको साष्टांग दंडवत् करता हूँ। आपकी मैं पुष्प व चन्दनादि से पूजा करता हूँ। मेरे मस्तक पे हाथ रख, मेरे को आशीर्वाद दे। इतना वचन कचरा अपनी माता से कह करके, निहंग हो करके एक माटी का खपरा हाथ में ले करके घर से निकला और दर्वाज़े के बाहर आकर के जिस बस्ती में कचरा रहता था उस बस्ती को साष्टांग प्रणाम कर, बाद में कचरा निर्द्वन्द हो करके महा भयंकर बन को चला गया, जिस बन में महापुरुष रहते थे। वहां पर जाके महापुरुषों के चरणों में पड़ा, और महापुरुषों की नाईं कचरा भी तप करने लगा। थोड़े ही दिनों में कचरा का महा कठिन तप देख करके प्रभु प्रसन्न हुए और कचरा को पुचकार के कचरा की माता ने जो उपदेश बोध दिया था, सोई बोध कचरा कूं प्रभु ने किया। कचरा प्रभु की कृपा से वा इनकी माता की कृपा से प्रभु के स्वरूप में लीन हुआ और प्रभु अन्तर्ध्यान हुए। इति

॥ तत्सत् ॥

मनुष्य जीवन की सफलता के अर्थ

# बापजी का उपदेश

अर्थात्

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य परमअवधूत
पूज्यपाद बापजी श्रीनित्यानन्दजी
महाराज के सारगर्भित
वचनामृत।

# मंगलम्

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च।

(यजुर्वेद)

भावार्थ- हे प्रभो! आप स्वयं मंगल-स्वरूप हो और सर्व को मंगल के दाता हो, अतः आपको नमस्कार है।

हे प्रभो! आप स्वयं सुख-स्वरूप हो और सर्व को सुख के देनेवाले हो, अतः आपको नमस्कार है।

हे प्रभो आप स्वयं कल्याण-स्वरूप हो और सर्व को कल्याण के प्रदाता हो, अतः आपको नमस्कार है।

# विज्ञप्ति

संसार में सब प्रकार के दुःखों का सदा के लिए निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति कौन नहीं चाहता? सभी चाहते हैं, परन्तु इसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? यही मुख्य प्रश्न है।

शिव स्वयं कल्याण-स्वरूप हैं, जिनकी उपासना से उक्त स्थिति प्राप्त हो सकती है, परन्तु; 'शिव-उपासना' संबन्धी प्रचीनपरिपाटी के गूढ़ तत्त्वों का वास्तविक रहस्य तत्त्वदर्शी महापुरुष ही जानते हैं।

श्रीमत्-परमहंस शिव-स्वरूप, परम अवधूत वापजी श्री नित्यानन्दजी महाराज ने कुछ श्रद्धालु विद्यार्थियों पर दया करके उन्हें, 'शिव-उपासना' का सुन्दर क्रम बहुत ही संक्षेप से ऐसे शब्दों में बताया है कि जिसका प्रभाव हृदय पर सहज ही में पड़े बिना नहीं रहता।

यह क्रम योजना चार अङ्गों में विभक्त है:-

(१) प्रथम अंग सामान्य स्थिति का है। इस स्थित में मनुष्य शंकर का निवास कैलाश किंवा शिव-लोक में मान कर प्रतिमा आदि के आधार से सेवा पूजादि करते हैं, इस प्रकार के उपासकों में जिनका मन भक्ति-भाव से निर्मल हो जाता है उन्हें; (२) दूसरे अंग में प्रवेश करने का योग प्राप्त होता है, इस अंग में बुद्धि स्थिर होकर प्रज्ञता द्वारा इष्टदेव की अभिमुखता प्राप्त होती है। (३) शिव का स्पष्ट स्वरूप हृदगत होने से चित्त की चंचलता दूर होती है। जिसे वेदान्त में विक्षेपनाश कहते हैं, यह तीसरा अंग है। इस स्थिति को पार करने पर (४) भक्त निर्वाण अवस्था का अनुभव करता है, तब जीवत्त्व-भाव दूर होकर वह शिवत्व भाव को प्राप्त होता है। शिवत्व-भाव से तात्पर्य त्रिकालावाध कल्याणरूप स्वस्वरूप (आत्मा) ही से है। यही उक्त योजना का चौथा अंग है।

शिव का बाह्यरूप भी अत्यन्त विचारणीय है, केशर चन्दनादि- लेपन, मुक्ताहार भूषण, पीताम्बर धारण, रम्य कैलाश-निवास, अमृतपान आदि सांसारिक दृष्टि से जिस प्रकार रुचिकर दिखाई देते हैं, उसी प्रकार शिव की सम-दृष्टि में भस्मलेपन, सर्पहार, बाघाम्बर धारण, स्मशान निवास

तथा विष-पान भी प्रियकर है। अर्थात्, उनकी दृष्टि में इसके लिए विपरीत भाव किंचित् मात्र भी नहीं है, इसीलिए शिव को कल्याण अर्थात्- परम-आनन्द-स्वरूप कहते हैं।

समदृष्टि की प्राप्ति गंगा के अविच्छिन्न प्रवाह के समान. स त शुभ संकल्प, शुभ विचार द्वारा होती है। समदृष्टि की परिपाक अवस्था होने पर अन्तर दृष्टि; जिसे ज्ञान-चक्षु कहते हैं प्राप्त होती है। इसी को शिव का तीसरा नेत्र कहा है। ज्ञान-चक्षु ही मनुष्य जीवन की सफलता का कारण है। यह परमगोपनीय 'शिव-तत्त्व' केवल बाह्य-साधन तथा उपचारादि से ही प्राप्त नहीं होता, किन्तु जिज्ञासा सहित परम पुरुषार्थ द्वारा अनुभवगम्य है, जिसका दिग्दर्शन इस छोटी सी पुस्तक में उत्तम रूप से कराया गया है।

यह पुस्तक केवल विद्यार्थियों ही के उपयोगी नहीं वरन् मनुष्यमात्र को अलाभकारी है।

मानवयोनि पाके विषय-भोग-रत-रह कर अमूल्य जीवन को वृथा नष्ट न करते, शिव-तत्त्व (शिवस्वरूप) प्राप्त करना ही परम कर्त्तव्य है। जिस समय से मनुष्य इस ओर सार्थक दृष्टि से प्रवृत्त होता है, तभी से उसकी इस दशा की सच्ची विद्यार्थी व्यवस्था आरम्भ होती है। ऐसे जिज्ञासुजन को उनके कर्म पथ प्रदर्शन में यह पुस्तक सहायकारी हो, इस सद् इच्छा से यह प्रकाशित करने में आई है।

इस पुस्तक में सूत्रवत् बताये हुए सिद्धान्तों को विशेष रूप से जानने की जिन्हें उत्कंठा हो, उनके लिए भगवान् कृष्ण ने गीता में स्पष्ट मार्ग बताया है-

**तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।**
**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।**

अर्थात् भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा करके निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा इस ज्ञान को जान तत्वदर्शी महात्मा अर्थात् मर्म के जानने वाले ज्ञानी जन तुझे इस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

विनीत-

प्रकाशक

### मनुष्य जीवन की सफलता के अर्थ-

# बापजी का उपदेश

## (१) ज्ञान चक्षु

**सर्वत्रावस्थितं शान्तं, न प्रपश्येद् जनार्दनम्।**
**ज्ञानचक्षुविहीन त्वात्, अंधः सूर्याभिमोघताम्॥**

भावार्थ- सूर्य के प्रत्यक्ष विद्यमान होते हुये भी जिस प्रकार अन्धे मनुष्य को वह दिखाई नहीं पड़ता उसी प्रकार शान्ति प्रदाता जनार्दन (ब्रह्म) सर्वत्र उपस्थित होते हुए भी ज्ञानरूपी नेत्र हीन मनुष्यों को भान नहीं होते हैं।

उक्त श्लोक का यह आशय है कि मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान संपादन द्वारा जीवन को सफल करना उसका परम कर्तव्य है,

## (२) विद्या की महत्ता

जीवन की सफलता बिना ज्ञान के होती नहीं। और ज्ञानविद्या के बिना प्राप्त नहीं होता है; इस लिए मनुष्य का सब से प्रथम कर्तव्य 'विद्या' प्राप्त करना ही है। कविवर हरदयाल जी ने यथार्थ ही कहा है:-

सब भूषण को शुभ भूषण है,
यह वेदमयी है वाणि उदारा।
नर को वहि सुन्दर वेग करे,
वपु सार जिसे फल देवहि चारा॥
चतुरानन चौदह भौन रचे,
पर ना विद्या सम ताहि मंझारा।
नर ताते सदैव पढ़े विद्या,
हरद्याल चहे जु पदारथ चारा॥

अर्थात्- ब्रह्मा ने चौदह भुवन की रचना की परन्तु, उन सब में बिद्या के समान कोई भी वस्तु नहीं, क्योंकि विद्या सब भूषणों में उत्तम प्रकार से प्रगति देनवाली और

जीवन को सफल करने वाली है; इसलिए कवि हरदयाल कहते हैं कि- जो मनुष्य चारो पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चाहें वे सदैव विद्याभ्यास करें वेद का यह उदार वाणीरूपी उपदेश है।

## (३) विद्या के मुख्य भेद

विद्या दो प्रकार की होती है, एक परा, दूसरी अपरा। परा (लौकिक) से बुद्धि का विकास होकर के सांसारिक कार्य्यों में कुशलता प्राप्त होती है, और कुछ अंशों में पराई विद्या अपरा विद्या की साधक भी हुआ करती है। अपरा विद्या से ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होता है।

## (४) परा विद्या

"विद्या ददाति विनयम्"

विद्या से विनय प्राप्त होता है। यदि विद्या पढ़ने पर भी विनय प्राप्त नहीं हुआ तो वह विद्या नहीं, किन्तु अविद्या ही है।

"विनयाद्यति पात्रताम्"

विनय से पात्रता आती है। पात्रता से तात्पर्य व्यवहार में प्रामाणिकता और आध्यात्मिक ज्ञान के लिए पिपासुता होना है।

"पात्रत्वात् धनमाप्नोति"

पात्र को योग्य मार्ग द्वारा धनादिकी प्राप्ति होती ही है।

"धनात् धर्म ततः सुखम्"

धन से धार्मिक कार्य (पुण्य कर्म) होते हैं और धार्मिक कार्य्यों से सुख प्राप्त होता है। इसलिये शास्त्र में कहा है कि-

"धर्म चरति पण्डितः"

वास्तविक पढ़ा हुआ जन वही है, जिसका आचरण धर्मानुकूल हो।

## (५) अपरा विद्या

शाश्वत सुख अर्थात् 'नित्य आनन्द' जिसे परमानन्द भी कहते हैं, उसकी प्राप्ति केवल अपरा (ब्रह्म-विद्या) द्वारा ही हो सकती है। इसलिए भगवान् ने 'अध्यात्म-विद्या विद्यानाम्' अर्थात् सब विद्याओं में श्रेष्ठ अध्यात्म विद्या ही को अपना स्वरूप

कहा है।

## (६) सद्‌गुरु

अध्यात्म-विद्या को प्राप्ति बिना सद्‌गुरु (ब्रह्मनिष्ट) के कदापि नहीं हो सकती, इसलिए कहा है- "नास्ति तत्वं गुरो:परम्"॥

अर्थात् गुरु से बढ़कर संसार में दूसरा तत्व (उद्धारक) नहीं है। विचार सागर में भी कहा है:-

**दोहा-**

**ईश्वर तें गुरु में अधिक, धारे भक्ति सुजान।**
**बिन गुरु भक्ति प्रवीण हू, लहे न आतम ज्ञान॥**

भावार्थ- यही है कि जिसकी कृपा से मनुष्य नर से नारायण हो जाता है, वह संसार में अवश्य परम पूजनीय तथा सेवनीय है।

## (७) गुरु-सेवा

ऐसे सद्‌गुरु की सेवा- पूजा के लिये उपस्थित होने के पूर्व शुद्धि का आवश्यकता है। यथार्थ शुद्धि केवल शारीरिक शौच तथा बाह्यस्नानादि ही से प्राप्त नहीं होती। इसलिए शास्त्रों में कहा है-

१- "स्नानं मनोमलत्यागम्"

मन के मल का त्याग करना ही वास्तविक स्नान है।

२- "शौचमिन्द्रियनिग्रह:"

इन्द्रियों के व्यवहार को शुद्ध रखते हुए उनको अपने बश में रखना 'शौच' कहलाता है।

३- "ध्यानं निर्विषयं मन:"

विषयों से मन को मुक्त रखना ध्यान है।

## (८) ईश बन्दना का रहस्य

जब मन विषय वासनाओं से रहित हो जाता है, तब ईश्वर की ओर झुकने के योग्य होने से ईश बन्दना का सच्चा रहस्य जानने लगता है।

## (९) महेश-बन्दना

सब देवों के देव महादेव ही हैं, जैसा कि महिम्न में कहा है:-

'महेशान्नपरो देव:'

उक्त प्रकार से शौच स्नानादि द्वारा जब मनुष्य अन्दर और बाहर दोनों तरह से निर्मल होकर 'गुरूणां गुरु महेश' की निम्नलिखित वन्दना करता है तब उसे विशेष प्रकार का आनन्द होता है:-

**वन्दे देवमुमापतिं सुर-गुरुं, वन्दे जगत्कारणं,**
**वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं, वन्दे पशूनां पतिं।**
**वन्दे सूर्यशशांक वन्हि नयनं, वन्दे मुकन्द प्रियं,**
**वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं, वन्दे शिवं शंकरम्॥**

भावार्थ- हे देव! उमापते देवताओं के गुरु, जगत् के कारण सर्पमाला से विभूषित, वाघाम्बर धारी, जीवमात्र के अधिपति सूर्य चन्द्रादि द्वारा वन्दित, दिव्य नेत्रवाले, कृष्ण के प्यारे, भक्तों को अभय पद के प्रदाता, हे कल्याण स्वरूपी शंकर! आपको मैं बारंबार वन्दना करता हूँ।

## (१०) बन्दना द्वारा अभिमुखता

इस प्रकार वन्दना करते करते जब अभिमुखता की स्थिति प्राप्त होती है, तब यह भक्त गद् गद् हृदय से निम्नलिखित स्तुति करने लगता है:-

**कर्पूरगौरं करुणावतारं,**
**संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।**
**सदा वसन्तं हृदयारविन्दे,**
**भवं भवामि श्रीचैतन्नमामि॥**

भावार्थ- हे प्रभो निर्मल गौर वर्ण वाले, करुणा के अवतार, संसार के सार, भुजंगों के हार को धारण करने वाले चैतन्य स्वरूप परमात्मन्! मेरे हृदय कमल में सदा श्री सहित बसने वाले! आपको नमस्कार करता हूं।

## (११) स्व स्वरूप में महेश भावना

जब भक्त की स्थिति इससे भी उच्च कोटि पर पहुंचती है तब वह अपने आप में ही शिव स्वरूप का अनुभव कर प्रेम लक्षणा अथवा परा भक्ति में स्तुति करता

है:-

**आत्मात्वंगिरिजामतिः, सहचराः प्राणःशरीरंगृहम्**
**पूजाते विषयोपभोगरचना, निद्रा समाधिस्थितिः॥**
**संचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः, स्तोत्राणि सर्वा गिरो**
**यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं, शम्भो तवाऽऽराधनम्॥**

अर्थात् हे शम्भो! तू ही मेरी आत्मा है, बुद्धि माता पार्वती है, प्राण सहचर हैं, शरीर गृह है, जितनी विषयोपभोग रचना है, वह सब पूजन है, निद्रा समाधि है, जो चलता हूँ सो तेरी प्रदिक्षणा है, और जो कुछ बोलता हूँ सो वह तेरी स्तुति ही है, अधिक क्या कहूँ। मैं जो कुछ भी कर्म करता हूं, वह सब हे प्रभो! तेरी आराधनाही है।

अहा! कैसी उत्तम स्थिति है। शिव महिमा का रहस्य कितना गहन और कैसा आनन्दकारी है। यह रहस्य अन्तः करण के उत्तरोत्तर शुद्ध होने पर अधिकाधिक विलक्षणता के साथ अनुभवगम्य होता है। आरम्भ में जो बातें अदृष्ट और दुर्गम प्रतीति होती थीं, बेहसतत साधन द्वारा सद्गुरु कृपा से सुगम होने लगीं और आगे चलकर अत्यन्त निकटवर्ती अर्थात् अपरोक्ष अनुभव होने लगी हैं।

## (१२) अपार महिमा का अनुभव

इस उच्च स्थिति का भक्त कुछ काल ज्यों ज्यों अनुभव करता है, त्यों त्यों उसको शिव-गुरु के व्यापक स्वरूप की महत्ता का विशेष विशेष रूप से पता लगता जाता है; परन्तु, अपार का पार क्या? तब वह स्थगित होकर ऐसे उद्गार प्रकट करता है:-

**असितगिरि समंस्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे,**
**सुरुतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी।**
**लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,**
**तदपि तब गुणानामीश पारं न याति॥**

भावार्थ- हे प्रभु आपकी महिमा का क्या वर्णन करूँ। मैं तो क्या पर सारे समुद्र की स्याही होकर कल्पवृक्ष की कलम बनाई जावे, पृथ्वी ही कागज हो, स्वयं शारदा लिखने बैठे और सदा सर्व काल लिखती रहे तो भी वह पार नहीं पा सकती; तो मेरी क्या शक्ति? स्वयं वेद ही यह कहता है:-

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसासह"

अर्थात् जहाँ से वाणी लौटकर चली जाती है, वह स्थिति मन आदि से भी अप्राप्त है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के अन्तःकरण का निश्चय इस प्रकार होता है:-

**अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो,**
**विभुत्वाच्चसर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।**
**सदा मे समत्वं न मुक्तिर्नबन्ध-**
**श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥**

अर्थात्- मैं निर्विकल्प, निराकार रूप व्यापक सर्वत्र सर्व इन्द्रियों से सदा सर्व काल समरूप हूँ। न मैं मुक्त हूँ, न वन्ध हूं। वरन् सच्चिदानन्दरूप शिव हूँ, शिव हूँ।

# (१३) अभेद दर्शन

इस अवस्था के अन्त में त्रिपुटि अर्थात् द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, भक्त-भगवान-भक्ति तथा ध्याता-ध्येय-ध्यान एक हो जाने से अद्वैत स्थिति अपरोक्षानुभव का अलभ्य लाभ प्राप्त होता है, तब वह यही स्वाभाविक भाव ग्रहण कर लेता है:-

'समासमं चैव शिवाचर्नं च'

चराचर में सम भाव का होना शिव पूजन है।

ऐसा जो समदर्शी पुरुष है वही 'हित प्रोक्ता धीर वक्ता' कहलाता है; उसी को वास्तव में पण्डित नाम शोभा देता है। श्री भगवान् का वचन है कि-

'पण्डिताः समदर्शिनः'

पण्डित उसी को कहते हैं- जो समदर्शी हो। समदर्शी ही को अभेद ज्ञान प्राप्त होता है। जो अपरा विद्या का मुख्य फल है, इसीलिये कहते हैं:-

'अभेद दर्शनं ज्ञानं'

अपरोक्षानुभव अर्थात् भेद रहित ज्ञान ही स्वरूप दर्शन कहिये आत्मसाक्षात्कार है।

# (१४) गुरु कृपा

ऐसे आत्मसाक्षात्कार के करने वाले सद्गुरु के लिए शास्त्रों में कहा है:-

'दातासम्मानदानतः

इस गुह्य विद्या के प्रदाता दातारों के दातार केवल महेश कहिये गुरुणां गुरु ही

है। जिनकी कृपा से मनुष्य स्वरूप को प्राप्त होता है। गुरु दत्तात्रेय भगवान् ने भी कहा है:-

**गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खो वा यदि पण्डितः।**
**यस्तु संबुध्यते तत्त्वं, विरक्तो भवसागरात्॥**

भावार्थ यह है कि- गुरु के ज्ञानरूपी प्रसाद से मूर्ख व पण्डित कोई भी यदि हुआ तो; उसे तत्त्व का बोध हो जाने पर इस संसार रूपी समुद्र से वह पार होता है।

# (१५) धीर वीर

इस परम पुरुषार्थ की प्राप्ति केवल धीर वीर पुरुष ही करने में समर्थ हो सकते हैं। कायरों का काम नहीं। शूरवीर ही समर्थ हो सकते हैं। शूरवीर की परिभाषा श्रीशंकराचार्य महाराज ने निम्नलिखित की है:-

"शूरान्महाशूरतमोस्ति को वा"?
शूरो में महशूर कौन है?
"मनोजवाणैर्व्यथितोन यस्तु"।
कामदेव के वाणों से जो व्यथित नहीं हुआ है।
प्राज्ञोऽथ धीरश्च ममस्तु को वा?
सब में प्राज्ञ और धीर कौन?
"प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः"

जो ललनाओं के नेत्र कटाक्षों में मोहित नहीं हुआ है।

सारांश यह है कि जिन्होंने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त किया है वे ही सच्चे शूर हैं। इसीलिए कहा है:-

"इन्द्रियाणाँ जये शूरः"

# (१६) उपसंहार

अन्त में जिज्ञासु जनों का लक्षित कर यही कहना है कि सद्विद्या पढ़ने से विद्वानों का इस लोक में सर्वत्र सन्मान्-पूजन होता है और देह के वियोग होने पर-

"देहाभावे तथा योगी, स्वरूपे परमात्मनि"

अर्थात् देह का वियोग होने पर तथा योग्यावस्था होने पर स्वरूप से ही परमात्म स्थिति प्राप्ति होती है। यही मनुष्य जीवन की सफलता की सफलता है।

ॐ तत्सत्

# विद्यार्थी लक्षण

श्लोक-

काकचेष्टा बकध्यानं, श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी ब्रह्मचारी, विद्यार्थी पंच लक्षणम्॥

# अनधिकारी विद्यार्थी-

दोहा-

सुखी विपाधि आलसी, कुमति रसिक बहु सोय।
ते अधिकारि न शास्त्र को, षट दोषी जन जोय॥

# विद्या प्राप्ति के साधन

दोहा-

गुरु पुस्तक भूमी सुभग, प्रीतम खबर सहाय।
करहि वृद्धि विद्या पढी, बहिर पञ्च गुण गाय॥

(सार सूक्तावली)

(१)

मत बात लगो मत हाथ लगो।
यह बोध विमल अवधूत करे, यह बात लगो मत हाथ लगो।
यह बोध हृदय के बीच धरो, जिज्ञासु गणों जिज्ञासुगणों॥
यह बोध.।टेक॥

यह बाल अवस्था पढ़ने की, घूमन मे इसको मत खोओ।
यह शिघ्रहि करे उद्धार तेरा, जाकर के पढ़ो जाकर के पढ़ो॥
यह बोध॥१॥

गुरु, मातु, पिता, ईश्वर की सदा, पूजन सुमरन सेवादि करो।
विद्या से अविद्या होय फना, जाकर के पढ़ो जाकर के पढ़ो।
यह बोध.॥२॥

एक ज्ञान अज्ञान को नाश करे, कोई साधन और न देखे सुने।
जड़ देव का अग्रध देब करे, जाकर के पढ़ो जाकर के पढ़ो॥
यह बोध.॥३॥
यह ज्ञान करे निस्पृहि तुझे, सह प्रेहि को क्लेश अनन्त करे।
बिन बोध के नहिं चौरासि टरे, जाकर के पढ़ो जाकर के पढ़ो॥
यह बोध.॥४॥

(२)

गुरुदेव कहे सोइ पंथ चलो।
यह बोध विमल अबधूत करे, गुरुदेव कहे सोइ पंथ चलो।
नहिं क्लेश, आनन्द की थाह कोइ, यह ज्ञान खरो, यह ज्ञान खरो॥
यह बोध.॥टेक॥
गुरुवार को पूज्य गुरुवर का, पूजन करके दर्शन करना।
दर्शन बिन पूजन नाय बने,' परमाद तजो, परमाद तजो॥
यह बोध.॥१॥
गुरुदेव चराचर विश्व पति, दर्शन करते ही करदे मुक्ति।
बिन दर्शन होय नहीं मुक्ति, परमाद तजो परमाद तजो॥
यह बोध.॥२॥
सत्संग करो चाहे खूब पढ़ो, चाहे दान करो चाहे भक्त बनो।
दर्शन करना दर्शन करना, परमाद तजो परमाद तजो॥
यह बोध.॥३॥
अविनाशी है आतम ब्रह्म अचल, गुरुणाम् गुरु श्रुति चित्त करे।
जड़ जीव की जड़ में होय रति, परमाद तजो परमाद तजो॥
यह बोध.॥४॥

(३)

आनन्द करो, आनन्द करो।
यह बोध बिमल अवधूत करे, आनन्द करो, आनन्द करो।
इस योग से योगीराज बने, आनन्द करो, आनन्द करो॥

यह बोध.।टेक॥

ग्रन्थी ग्रन्थों के पढ़ने से, बिन काटे आपहि आप कटे।
दोइ का परदा दिल पे न रहे, हंकार तजो, हंकार तजो॥

यह बोध.॥१॥

गुरुदेव करे तब बोध खरो, निष्कपटि जिज्ञासु की मुक्ति करे।
यह उत्तम ब्रत धारण करना, हंकार तजो, हंकार तजो॥

यह बोध.॥२॥

ज्ञानी नहिं वाद विवाद करे, एक वाद विवाद अज्ञानी करे॥
कर दूर घमण्डि सुनो, हंकार तजो, हंकार तजो॥

यह बोध.॥३॥

**दोहा-**

जड़ चेतन छिपते नहीं, देख दीखते साफ़।
विद्वान् नित ईश स्वयं, जपे न जाप अजाप॥१॥

# वार्ता - प्रसंग

(परोपकार कर्त्ता को कभी २ आनन्द के बदले क्लेश भी उठाना पड़ता है)

जैसे तैसे पुरुष को, दे उपदेश न सन्त।
मूरख कवि बिन गृह करी, चटिका जो गृहवन्त॥१॥

एक दिन उपदेश प्रसंग में गुरु शिष्य के प्रति बोले- हे शिष्य! सांसारिक लोगों की माया बड़ी विचित्र होती है। इनसे बचकर चलना महान् कठिन कार्य है। महान् पुरुष ज्यों ज्यों इनसे निवृत्ति चाहते हैं, त्यों त्यों ये उन्हें अधिक अधिक सताते हैं। इनकी मूल दृष्टि निज स्वार्थ की ओर ही रहती है; वास्तविक पारमार्थिक श्रद्धा तो होती नहीं, केवल अपने स्वार्थ सिद्ध करने को जब तक स्वार्थ सिद्ध नहीं होती, दिखावटी सेवा-भक्ति करते रहते हैं, और स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर विमुख हो जाते हैं। कोई कोई तो कृतघ्न बनकर दुःख तक पहुँचाने वाले बन जाते हैं। इसलिए चाहे बड़ी विभूति वाला हो, चाहे छोटा, जहाँ तक हो सके इनके प्रलोभनों में मत आना और न इन्हें दिल का भेद ही देना, क्योंकि वास्तविक स्वरूप के समझने वाले तो लाखों में एकाद ही सद्गुण-सम्पन्न, कृतज्ञ अर्थात्- उपकार मानने वाला होता है। नहीं तो अन्त में वह उपकारिकता ही महात्मा को क्लेश दाता हो जाती है, इस पर तुझे एक दृष्टान्त सुनाता हूं; चित्त लगाकर सुन-

किसी नगर के निकट एक उपवन में कोई एक महान् विरक्त समर्थ महापुरुष रहते थे, उनकी सेवा उस नगर के एक सेठ का पुत्र किया करता था। काल पाकर वह लड़का बीमार पड़ा, और ऐसा बीमार हुआ कि उसके जीने की आशा घरवाले, वैद्य, हकीम, डाकटर सब ने छोड़ दी। सारे शहर में हाहाकार मच गया, क्यों कि बड़ा सेठ, एक मात्र पुत्र, वह भी सुन्दर, जवान, पढ़ा लिखा, सबका प्रिय और साधु सन्तों का सेवक। इन गुणों को करके बहुत लोगों को बड़ी चिन्ता हुई।

दुनिया दुरंगी ठहरी, तरह तरह की बातें शहर में होने लगीं, किसी ने कहा इसकी यह साधु-सेवा का फल हैं। धन भी खोया और शरीर भी जाने की तैयारी में है। सुनते हैं इसके गुरु तो बड़े समर्थ हैं, तो अब इसे

क्यों नहीं बचाते? देखो, कितने दिन से कितना बीमार है। कैसा कष्ट उठा रहा है, पर वे एक दिन भी न तो उसके पास आए न समाचार ही पुछबा मंगवाये। किसी ने कहा अरे यार! ये साधु बाबा किसी के नहीं होते, मालचट्ट होते हैं, जब तक माल मिला; तारीफ कर करके माल चाटते रहे, जब मौका पड़ा तो निर्मोही बन गए। किसी ने कहा- भाई! साधु का इसमें क्या दोष सब अपने अपने कर्मों के फल को भोगते हैं। सेवा करी है तो इसका फल स्वर्ग में या दूसरे जन्म में मिलेगा। दूसरे ने कहा- साधु सेवा का फल तो प्रत्यक्ष होता है और जब इसके गुरु समर्थ ही हैं तो समर्थ पना क्यों नहीं बतलाते? यह खरा खरी का मौका, - किसी ने कहा भाई! इसमें उस लड़के का ही दोष है। हमने इसको बहुत समझाया था कि देख इस साधु से तुझे कुछ मिलने वाला नहीं है, हमारे गुरु का चेला होना वे बड़े प्रत्यक्ष चमत्कार के दिखाने वाले हैं, और बड़े बड़े लोग उनके पास आते जाते हैं- पर हमारी नहीं मानी। अब क्या हो सकता है? घड़ी दो घड़ी में मरनेवाला है, पृथ्वी पर उतार दिया है। भगवान् करे सो खरी। साराँश इस प्रकार कि तरह तरह की बातें इधर उधर होने लगीं।

इसी नगर का एक वयोवृद्ध पण्डित भी उन महात्मा जी का भक्त था, लोगों का स्वभाव ही होता है कि भगवान् से कहने की नहीं बने तो भक्त को खरी खोटी सुनावें। उसी प्रकार उस भक्त पण्डित को. तानाजनी करने लगे। जब पण्डित ने देखा कि सारे शहर में बहुत बावेला हो रहा है और जब उससे न सहा गया तो वह उपराम होकर महात्माजी के पास गया। दर्शन मेला हो जाने पर पण्डित को अतीव उदास देख महात्मा ने पूछा- कहो पण्डित आज बहुत उदास क्यों हो?

पण्डित ने कहा- "महाराज कुछ नहीं ऐसे ही"। पण्डित निर्लोभी, गुरु भक्त तथा वयोवृद्ध था। इससे महात्मा जी ने फिर पूछा- "पण्डित कुछ तो कारण होगा ही, कहो क्या कारण है"?

पण्डित चतुर था और यह जानता था कि यह महात्मा जी वचन में आजायें तो अवश्य कार्य बन जायगा; क्योंकि सिद्ध होते हुए भी दयालु तथा परोपकार वृत्ति वाले हैं। इससे बोला- महाराज क्या कहूं, कहना न

कहना सरीखा ही है। जो भी मेरी उदासी का कारण मेरा निज का स्वार्थ नहीं है, पर मैंने कहा, और आपने ध्यान नहीं दिया तो कहना वृथा जायगा। इसलिए न कहना ही अच्छा है।

महात्मा बोले- जब तुम्हारा निजी स्वार्थ नहीं तो क्या परोपकार की बात है?

पण्डित- हां, महाराज! है तो परोपकार की बात।

महात्मा- फिर कहते क्यों नहीं?

पण्डित- मैंने कहा और आपने नहीं किया तो?

महात्मा- करने सरीखा कार्य तो प्रत्येक मनुष्य को करना धर्म है; तो फिर हम साधु ब्राह्मणों का तो शेष रहा शरीर- जीवन परोपकार के निमित्त ही होता है- अवश्य करेंगे।

पण्डित- महाराज वचन दो, आपके करने सरीखा है।

महात्मा- तो इसमें वचन देने की क्या आवश्यकता है?

पण्डित- नहीं महाराज, वचन तो देना पड़ेगा, कृपा कीजिए।

महात्मा बातों में आगए। बोले, 'अच्छा कहो, क्या बात है?'

पण्डित- महाराज, बात यह है कि अमुक अमुक सेठ का पुत्र जो आपका सेवक है- वह मरणासन्न बीमार है, उसे अच्छा करो।

महात्मा- हिश्! यह क्या लूगली बात की। उसमें क्या परोपकार-धर्म की बात है। हम किसे मारें और किसे जिलावें। ब्रह्माण्ड में कोई क्षण खाली नहीं जाता कि जिसमें लाखों प्राणी न जन्मते हों न मरते हों। क्या साधु- सन्तों का यही काम है?

पण्डित- महाराज, यह बात ऐसी नहीं, यह बातें तो सब मैं जानता हूँ कि सेठ का लड़का आपकी कितनी तथा कैसी सेवा करता है, तथा आपका केवल वही एक सेवक नहीं वरन् उसके सरीखे क्या अच्छी २ कोटि वाले छप्पन कोटि सेवक- भावुक भक्त हैं, और आपकी आज्ञा मात्र पर मर मिटने के दम भरने वाले भी हैं, पर आप तो असंग निर्लेप स्वच्छन्द महान् पुरुष हैं। आपको मनुष्य क्या देवादिक की भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि आप स्वरूपा-वस्थित-केवल स्वरूप हो। पर यह मौका ऐसा आ गया है कि- शहर भर में नास्तिकवाद बहुत फैल गया है और

लोगों की श्रद्धा सन्त महात्मा से उठ जाय; इसका प्रबल प्रयत्न हो रहा है। इसलिए कुछ भी करो परन्तु जिस प्रकार अवतारादिक ने समय समय पर और महान् पुरुषों ने निर्हेतुकता से अपने अपने अलौकिक सामर्थ्य द्वारा जन-मूढ़ता को दूर कर धर्म का प्रभाव प्रकाशित किया है, तुलसीदास, नरसिंह-मेहता आदिकों के दृष्टान्त आप श्री के मुखारविन्द से श्रोताओं तथा मैंने समय समय पर सुने हैं, उसी प्रकार इस मौके को भी साध लो। मुझे मालूम था कि आप कदापि मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करोगे। इसीलिये मैंने पहिले आपसे वचन ले लिया है। अब तो वचनबद्ध हो गये हो, प्रार्थना मानना ही पड़ेगी। थोड़े दिन बाद वह भले ही मर जाय, पर इस समय की घांटी तो टाल दो।

महात्मा बड़े पशोपेश में पड़ गये, बड़े धर्म संकट में पड़ गये। विचार करते करते महात्मा समाधिस्थ हो गए। समाधि में महात्मा ने नारायण को स्मरण कर प्रार्थना की।

"हे प्रभो! आत्मरूप से जो कुछ है सो आप जानते ही हैं। पर देहरूप से तो आपका दास हूँ। कर्त्ता कारयिता सब तू है, जो तुझे अच्छा लगे सो कर, तेरा धर्म और तू रक्षक"।

समाधि से निवृत्त हो महात्मा ने पण्डित से कहा- जाओ घर, लोगों की कही हुई निन्दा स्तुति पर ध्यान मत दो, प्रभु सब भली करेंगे। उस लड़के से जाकर कह देना कि- सब प्रकार की चिन्ताओं को दूर कर इष्ट स्मरण कर। गुरु महाराज सब देख रहे हैं, जो होगा अच्छा ही होगा। चिन्ता मत करना। हे पण्डित! आयन्दा फिर कभी ऐसी बात हम से मत करना जाओ।

पण्डित हर्षित चित्त से लौटकर शहर में आया और उस मृतप्राय अर्ध्व-श्वासित वणिक्-पुत्र को गुरु महाराज का शुभ सन्देश सुना, अपने घर चला गया। गुरु कृपा से उस वणिक् पुत्र की दशा एक दम पल्टी। जिसे देख प्रेमी भावुक, इष्ट-मित्र महान् आश्चर्यान्वित हुए। थोड़े काल में प्रभु की कृपा से लड़का अच्छा हो गया। दुनिया तो फिर भी दुरङ्गी ठहरी। लोगों का हाथ रोक सकते हैं, बोलते का मुंह थोड़े ही बन्द हो सकता है? अस्तु।

लड़का अच्छा तो हो गया, पर समय पाकर उसकी वृत्ति में फेर पड़ा। श्रद्धा, भक्ति के बजाय आलस्य, प्रमाद, अभिमानादि ने डेरा जमाया। एक दिन गुरु ने कुछ उपदेश किया जो उसे बुरा लगा। यहाँ तक कि मौका पा रात्रि को जब गुरु सोये हुए थे वही लड़का- जिसे गुरु ने प्राण दान दिया था, छुरा लेकर गुरु जी की छाती पर चढ़ बैठा। गुरु हक-बका गये, पर क्या कर सकते थे। वृद्ध, निःशस्त्र और ऊँघभरे थे। उधर शिष्य जवान, सचेत और सशस्त्र। गुरु ने नीचे पड़े पड़े शिष्य को छाती पर पड़ा देख विचार किया। अब क्या करना? यदि आवेश करता हूँ, और उससे उसका कुछ अनिष्ट हो जाय, तो अच्छा नहीं, और यदि कुछ नहीं करता हूँ, और चुपचाप मरता हूँ तो भी इस गुरु-हत्या के पाप से इसकी अधोगति होती है। यह मूर्ख अज्ञानवश ऐसा कर रहा है। अब क्या करना, विचार में निरुपाय हो महात्मा ने मन ही मन नारायण का स्मरण किया। नारायण तो भक्त-वत्सल, सन्त, गो प्रतिपालक ठहरे-पधारे।

गुरुजी की यह दशा देख हंसे। महात्मा बोले- नारायण यह क्या?

नारायण बोले- यह परोपकार का बदला! तुम नन्द के फन्द को नहीं जानते, पर अब करना क्या?

महात्मा- तुम जानो, तुम्हारा धर्म और तुम रक्षक।

नारायण की कृपा हुई। महात्मा जी के व प्रभु स्वरूप के तेज से शिष्य एक दम कम्पायमान हो भयभीत हो भागा और गुरु निरुपाधिक हुए। अस्तु।

गुरु शिष्य के प्रति कहते हैं- हे शिष्य! देख सांसारिक लोग परोपकार के बदले ऐसी गुरुदक्षिणा चुकाया करते हैं। जिस प्रकार काग की दृष्टि हमेशा विष्टा पर ही रहती है, ऐसी ही गृहस्थियों की दृष्टि सदा निज स्वार्थ की ओर ही रहती है। निष्काम भाव से तथा सत्य हृदय से सेवा करने वाले तथा महात्मा के सत्य स्वरूप को पहिचानने वाले तो कोई क्वचित् ही माई के लाल होते हैं। इसीलिए कहना है कि- इनसे सदा सर्वदा सावधान रह अपने लक्ष्य में ही जीवन बिताना।

इतनी बात सुन शिष्य दोनों हाथ जोड़ कर गुरु महाराज के प्रति बोला- महाराज! इसमें एक शंका हुई है कि- गुरु इतने समर्थ थे- तो उन्होंने उस

दुष्ट शिष्य को भस्म क्यों नहीं कर दिया? नारायण को क्यों याद किया?

गुरु शिष्य की बाल-शंका सुन कर मुसकराये और बोले:-

बेटा! बड़ों को बड़ा ही ख़याल करना पड़ता है। उन्हें आगा पीछा बहुत सोचना पड़ता है। देख यदि महात्मा उसे भस्म कर देते तो एक तो महात्मा जी का तप क्षीण होता दूसरे शिष्य अधोगति को जाता। महापुरुषों को निज शरीर में राग नहीं होता, उनका तो एक मात्र लक्ष्य स्वरूप कहो वा नारायण कहो- उसी में रहता है। ऐसे समय में विश्व-व्यवस्थापक जिसे ईश्वर अथवा- भगवान् कहते हैं- नियमबद्ध कार्य करते हैं। महात्मा तो निवृत्त रहते हैं। देख, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र कितने समर्थ थे कि जिनमें नया ब्रह्माण्ड रचने तक की शक्ति थी, पर जिस समय वे यज्ञ कर रहे थे, राक्षसों ने उसमें विघ्न करना शुरू किया, उस समय वे चाहते तो एक क्षण मात्र में सब को भस्म कर देते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। वरन् साधारण तपस्वी याचक की भाँति राजा दशरथ के पास गये और राम लक्ष्मण को माँग कर लाये, उन्हें शस्त्र विद्या सिखाई और उनसे काम लिया।

राम भगवान् की बात देखो, लंका में युद्ध करते समय जब लक्ष्मण जी की शक्ति लगी, और वे मूर्छित होगए; उस समय क्या राम उन्हें संकल्प मात्र से अच्छा नहीं कर सकते थे? पर वैसा न करके साधारण गृहस्थ की नाईं उपचार योजना में लगे। हनुमान जी को संजीवन बूटी लाने को भेजा। मार्ग में भरतजी के हाथ से वे पीड़ित भी हुए, लंका में से वैद्य को बुलाया, सारांश कि आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग नहीं किया। सो कथा तूने रामायणादि ग्रंथों में पढ़ी ही होगी; इसी प्रकार श्रीकृष्ण का उदाहरण देख। कौरवों का नाश क्या उनके लिए कठिन था? क्षण मात्र में कर सकते थे- पर निशस्त्र रह कर रथ-वाहक हो अर्जुन से काम लिया और आप अलग के अलग रहे। दूसरा उदाहरण सुदामा-श्रीकृष्ण का लो। सुदामा कितना गरीब कैसी व्यवस्था में वृद्ध कोढ़ टपक रही, स्त्री समविचार वाली नहीं, बहु सन्तति, भोजनादि के पूरे साधन नहीं, और दोस्त किसके? त्रैलोक्याधिपति भगवान् श्रीकृष्ण के। पर उन्होंने अपने लिए अन्तःकरण में कभी ऐसा संकल्प नहीं किया कि- "मुझे अच्छा

करो" वग़ैरा परोक्ष की बात जाने दो, अपरोक्ष में श्रीकृष्ण उनकी सेवा करते रहे, पर उस निस्पृही भक्त ने कभी दीनता नहीं दिखाई। अन्त में भले भगवान् ने अपना भगवानपन दिखाया और भौजाई (सुदामा जी की पत्नी) की मनोकामना पूर्ण की। जो हो, सुदामा निस्पृही ही रहे, जिनकी बोधप्रद कथा भागवतादि में प्रसिद्ध ही है, सो तू जानता ही है। ऐसे अनेक इतिहास हैं। यह तो महान् पुरुष अवतारादिक की बात है। पर तुझे साधारण बन पशुओं का एक दृष्टान्त सुनाता हूं कि जिसके सुनने से तुझे ज्ञात होगा कि- साधारण बुद्धिवाला भी किस युक्त से काम निकाल लेता है जिसमें साँप भी न मरे और लाठी भी न टूटे। चित्त लगाकर सुन-

किसी बन में एक शिकारी ने सिंह के पकड़ने को पिंजरा रखकर उसमें बकरी बाँधी। सिंह बकरी के खाने को उसमें घुसा, सिंह के घुसते ही फाटक के बन्द हो जाने से सिंह उसमें घिर गया।

दैव वशात् दो-तीन दिन बन्द रहने से सिंह बड़ा व्याकुल हो गया। देव से प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो! इस बन्धन से मुक्त कर, आयन्दा कभी ऐसे बन्धन में नहीं पडूंगा"। जिस जगह सिंह गया था, उसी मार्ग से एक सियार गुज़रा। सियार को देखकर सिंह बोला- हे चतुर मित्र! उदार चेता!! देख मैं बन का राजा हूँ, पर इस समय फंस गया हूं। यदि तू मुझे इससे मुक्त करदे तो मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूंगा और सदा मित्रता निबाहूँगा। तू जानता ही है कि राजा की दोस्ती हो जाने पर फिर तुझे कुछ चिन्ता न रहेगी। एक तो तू सदा के लिए निर्भय हो जावेगा। दूसरे तुझे भोजनादिक की भी कुछ चिन्ता न रहेगी। मैं यावत् जीवन तुझे भोजनादि दूंगा। सियार छोटी उम्र का चुलबुला था, सिंह की बातों में आगया। अपने पंजों से पिंजरे का फाटक उघाड़ा, सिंह बाहर निकला परन्तु, बन्धन मुक्त होते ही सिंह की वृत्ति में फेर पड़ा, वृत्ति पल्टी। भोज्य पदार्थ सन्मुख देखते ही क्षुधातुर हो सियार पर झपटा।

सियार बोला- हे मृगराज! यह क्या? अभी दो चार क्षण भी नहीं गुजरी कि तुमने रक्षक होने का वचन दिया था, उसके विरुद्ध उसे भूलकर भक्षक बन रहे हो?

सिंह हंसा, और बोला- हे भोले प्राणी! तू नहीं जानता कि राजा किसी

के मित्र नहीं और वेश्या किसी की पत्नी नहीं, वेश्या तो कदाचित निभा भी दे- पर राजा से मित्र भाव की आशा रखना आकाश कुसुम प्राप्त करने सरीखी बात है।

सियार- पर दिये वचन को तो साधारण से साधारण प्राणी भी निभाता है।

सिंह- अरे मूर्ख! साधारण आदमी भले वचन निभादें, क्योंकि वे साधारण ठहरे। राजा लोग ऐसे वचन निभाने लगें तो राज्य कैसे करें? यह नीति-फीति तेरी तेरे पास रहने दे, मुझे भूख लगी है।

सियार- पर नीति भी तो आपही लोगों ने बनाई है। और कितनों ही ने जैसे कहा है, वैसा ही करके दिखाया भी है।

सिंह- नीति बनाने वाले मर गये, वे मूर्ख थे। नीति दूसरों के लिये बनायी जाती है। जो नीति के चक्कर में आते हैं, उन्हें दुनिया मूर्ख ही समझती है। बहस मत कर मुझे भूख लगी है।

सियार- पर मेरे खाये से आपकी भूख भी तो नहीं मिटेगी?

सिंह- भोजन न सही कलेवा ही सही, बहस न कर- मैं तो तुझे बिना खाये छोड़ने का नहीं?

सियार- हे वनराज! अब आप खाओगे तो सही। मेरी अन्तिम प्रार्थना स्वीकार करलो तो अच्छा।

सिंह- क्या प्रार्थना है, जल्दी बोल मुझे बहुत भूख है।

सियार- मरने के पहिले शंका निवृत हो जाय तो अच्छा क्योंकि- शंकित मरना अच्छा नहीं। शंका यही है कि- क्या परोपकार का यही बदला होता है? इसका न्याय तीसरे प्राणी से करवालो। जो न्याय हो वह सही।

सिंह ने सोचा- चलो इस प्राणी के मन की भी हो लेने दो। मेरे खिलाफ अव्वल तो कोई कहने वाला मिलेगा नहीं। यदि कोई मिल गया तो मैं उसकी मानने वाला कब हूं। उसके समेत चट कर जाऊंगा। ऐसा मन ही मन सोचकर सिंह बोला- अच्छा चल। दोनों सिंह सियार न्याय कराने को चले।. जो बन पशु इन्हें देखें, देखते ही बन में यत्र तत्र भाग जाँय। अन्त में एक बूढ़ा सियार मिला। उसे देख दोनों ने उसे पुकारा। वह

आकर दूर खड़ा रहा। दोनों ने उससे अपना सब हाल कहा। सियार चुपचाप सब सुनता रहा।

सब हाल सुनकर बूढ़ा सियार थोड़ी देर चुप रहा- तब गंभीरतापूर्वक बूढ़ा सियार बोला- भाई तुम लोगों का इन्साफ तो हो सकता है, पर बिना मौक़ा देखे ठीक ठीक न्याय नहीं हो सकता। इसलिए चलो अव्वल हमको मौक़ा दिखलाओ।

सिंह सियार और न्यायाधीश (वृद्ध सियार) चले। यह तीनों उसी जगह जहां पिंजरा था- पहुंचे। न्यायाधीश ने कहा- जिस हालत में थे, वैसे ही हो जाओ। युवक सियार ने जंगला ऊँचा किया, सिंह भीतर घुसा, जंगला नीचा हो बन्द हो गया। सिंह सियार को यथास्थिति देख बूढ़े सियार ने उस युवक सियार को इशारा कर चलना शुरू किया। दोनों को चलते देख सिंह गुर्रा कर बोला- यह क्या? इन्साफ करो।

बूढ़ा सियार बोला- और इन्साफ क्या चाहिये? मूर्ख! कृतघ्न! राजा होकर एहसान फ़रामोश हुआ जाता था? इस पाप से तुझे बचाया- यह इन्साफ क्या कम है? जवान सियार से कहा- बेटा जी, अभी तुमको बहुत ज़माना गुज़रान करना है। ऐसों के साथ क्या परोपकार करना जो रक्षक के बजाय भक्षक बन जाय। देख नीति के इस वाक्य को ध्यान में रखना-

**उपकारोऽपि नीचानाँ, प्रकोपाय न शान्तये।**
**पयः पानं भुजंगानां, केवलं विषवर्द्धनम्॥**

अर्थात् नीच पुरुष पर उपकार करना क्रोध का हेतु ही होता है शान्ति का नहीं। जैसे सर्प को दूध पिलाने से केवल विष की ही वृद्धि होती है। दोनों सियार चलते बने। अस्तु।

इतना दृष्टान्त कह गुरु बोले "हे शिष्य! देख उस बृद्ध सियार ने युक्ति से कार्य लेकर अपना, अपने जाति बन्धु का प्राण बचाया तथा सिंह को शिक्षा दे, कृतघ्नता के पाप से बचा लिया। इसी प्रकार उन महापुरुषों ने भी अपने को तपः क्षीणता से बचाया।

शिष्य को गुरु घातकता के पाप से बचाया और विश्व व्यवस्थापक से व्यवस्था करवा धर्म को संरक्षित रखा और आप निर्लेप-असंग ही रहे।

इतनी कथा कह गुरु शिष्य के प्रति बोले:- हे शिष्य इतना कहने का यह प्रयोजन है कि प्रथम अधिकारी देखना। अनधिकारी को हित की बात नहीं कहना, अधिकारी को तो पूर्ण प्रेम से हृदय की वस्तु देना ही चाहिये, क्योंकि- यदि अधिकारी को वस्तु न दी जाय तो फिर उसका उपयोग ही क्या? उनने भी तो किसी से प्राप्त ही की होगी न? यदि वे अधिकारी को न देंगे तो उन पर एक प्रकार का ऋण कहा है रह जाता है। इसलिए जिस प्रकार उत्तम जिज्ञासु सद्‌गुरु की खोज में रहता है वैसे ही सद्‌गुरु भी अधिकारी शिष्य की तलाश में रहते हैं। ऐसे उत्तम गुरु-शिष्यों की नामावली में योगी याज्ञवल्क्य, मुनि अष्टावक्र, राजा जनक के नाम सन्त समाज में सदा सर्वदा मान की दृष्टिपूर्वक लिए जाते हैं। देख राजा जनक को जब बोध प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई और अत्यन्त तलावेली लगी तो प्रभु कृपा से योगी याज्ञवल्क्य से उनका मेल हुआ। योगी याज्ञवल्क्य के उपदेश से राजा जनक को शान्ति प्रान्त हुई। कैसी शांति कि जिसे महाशान्ति कहते हैं। योगी ने उसकी परीक्षा तक ली। एक समय जब योगी याज्ञवल्क्य राजा जनक को कथा सुना रहे थे जिस समय वहाँ अनेक साधु ब्राह्मणादि बैठे हुए थे। याज्ञवल्क्य जी ने अपने योग बल से जनक की नगरी में आग लगादी जिससे राज महल तथा आसपास के गृहादि जलने लगे। दूसरे बैठे हुए साधु वगैरह तो अपने अपने लोटी-लंगोटी बचाने को भागे भी परन्तु राजा जनक वैसा ही शान्त चित्त से एकाग्र मन किये कथा श्रवण में लगा रहा, क्योंकि वह इन्हें अनात्म वस्तु मान चुका था। दूसरे ऋषि-मुनियों को तब निश्चय हुआ कि याज्ञवल्क्य, जनक को इतना क्यों चाहते हैं?

राजा जनक ने बोध-प्राप्ति कर दक्षिणा में अपना समस्त राज्य गुरु को चढ़ा दिया। गुरु ने विचार किया अपन राज्य को क्या करेंगे? राजा को बहुत समझाया- पर राजा जब अपने प्रण पर दृढ़ रहा तो याज्ञवल्क्य ने कहा- हे राजन्! सुन अच्छा यह राज्य हमारा ही सही पर अब गुरु-प्रसादी भी तुझे चाहिए या नहीं?

राजा बोला- गुरु-प्रसादी से कौन इन्कार कर सकता है।

याज्ञवल्क्य जी बोले- तो राज्य गुरु-प्रसादी समझकर लो। इसकी

व्यवस्था करना। अपने पने का अहंकार त्याग अपना जीवन व्यतीत करना। हम तो ब्राह्मण हैं, तपस्या करना हमारा कर्त्तव्य है; राज्य करना क्षत्रियों का धर्म है, सो करो। देखा, दोनों का, अर्थात् राजा जनक की गुरु-भक्ति और त्याग और याज्ञवल्क्य जी की निस्पृहता, त्याग और अडग स्थिति।

कुछ काल जाने पर इन्हीं राजा जनक को परम ज्ञानी अष्टावक्रजी मिले। उन्हों को भी राजा ने राज्य-पाट, धन-सन्तति राज्य सब भेंट करना चाहा, पर अष्टावक्रजी यही कहते रहे और युक्तिपूर्वक समझाते रहे कि- राजन्! यह वस्तुयें तेरी नहीं, जो तेरी वस्तु हो; उसे भेंट करे तो स्वीकार करूँ। होते २ अन्त में राजा के मन-भेंट करने की बारी आयी। राजा ने कहा- महाराज 'मन' मेरा है, इसे तो लीजिये। मुनि ने कहा- अच्छा।

अच्छा कह दिया- पर मन मन ठहरा, मन का स्वभाव ही संकल्प विकल्प करने का होता है। ज्यों ही राजा के मन में संकल्प उठा कि- मुनि ने वहां ही रोक कर कहा- हे राजन्! जब 'मन' मेरा हो चुका तो उससे काम लेने का अब तेरा क्या अधिकार है? राजा सन्न हो गया, संकल्प विकल्प के बन्द होते ही राजा की समाधि लग गई, और उसे स्वरूप का ज्ञान हुआ। हे शिष्य! देखा, राजा जनक की ज्ञान पाने की जिज्ञासा, गुरु-भक्ति और शोधक बुद्धि। वैसे ही योगी याज्ञवल्क्य जी की योग तथा ज्ञान की सामर्थ्य। उस पर भी गृहस्थ होते हुए उनकी निर्लोभता तथा मुनि अष्टावक्रजी के भेंट लेने की सामग्री? ऐसे गुरु और ऐसे शिष्य होते हैं। तब ही उनका काम बनता है, और अमर होकर संसार के पथ प्रदर्शक कहलाते हैं। जिनके पवित्र नाम तथा चरित्र को पढ़-सुन कर भावुक जिज्ञासु भक्त अपना जीवन सुधारने में लगते हैं। इतनी कथा कहने का यही तात्पर्य है कि- महान् पुरुष- अवतारादि जिज्ञासुओं को उनके कर्मों का फल भुगतवाकर मुक्त कर देते हैं। और आप सदैव असंग और निर्लेप रहते हैं। तभी कहा है कि-

"गुरु शिष्य के लिए पुण्य की मूर्ति है, शिष्य गुरु के लिये भोग की मूर्त्ति है।"

हे शिष्य! इन महापुरुषों के चरित्र खूब मनन करने योग्य है। बड़े

एकाग्र मन से इनको बारम्बार पढ़-सुनकर विचार करना चाहिये। इनके पढ़ने सुनने से आनन्द के साथ २ बड़ा रहस्य प्राप्त होता है। देख, सुदामा- श्रीकृष्ण की बाबत जो प्रथम कहा है, कितना आदर्श जीवन है? भगवान् श्रीकृष्ण चाहें तो एक सुई के नाके में सारे ब्रह्माण्ड को सैकड़ों बार निकाल दें; पर उन्होंने सुदामाजी की कोढ़ धोई, सेवा की, सान्त्वना दी और सब बात चीत करी- पर रोग बाबत कुछ नहीं कहा। तो सुदामा जी का फक्कड़पना देखो श्रीकृष्ण जो कुछ करते- कराते रहे, सब देखते सुनते रहे- पर 'रोग' के बाबत कुछ नहीं कहा। समझते थे, जो कुछ हो रहा है, अच्छा ही हो रहा है। स्त्री कुल्टा है- होने दो, बहु सन्तति है- होने दो, गरीबी है- होने दो; कुछ पर्वाह नहीं। यह सब अपनी परीक्षा के लिए है, अपने ध्येय से न हटो।

परीक्षा कितनी टेढ़ी ली जाती है, यह भगवान् ने दिखला दिया। इतना प्रेम, ऐसा भाव, ऐसी मैत्री भावुकता दिखलाई कि हद करदी। 'रङ्क-राय' की मैत्री कैसी होना चाहिए। एक दूसरे के प्रति कैसा भाव रख तदनुसार आचरण करना चाहिए। सब बतला दिया, पर परमार्थिक- मार्ग में हरेक को कैसा सचेत सुदृढ़ रहना, इसका दृश्य भी सन्मुख खड़ा कर दिया है। सच है जब नारायण अन्तर्यामी हैं; तो वह अपना काम आप करेगा ही। हमें कह कर जतलाने की क्या जरूरत है। जरूरत है केवल इस बात की कि हमारा भाव उसके प्रति शुद्ध और पूरा हो, फिर कैसा ही कठिन से कठिन रोग क्यों न हो, वह डाक्टर 'वैद्यनाथ' अवश्य अच्छा करेगा। यह दृढ भाव सुदामाजी ने कायम रखा और उसके अनुसार भगवान् कृष्ण को डाक्टर बन अच्छा करना पड़ा। ऐसा अच्छा किया कि- फिर कभी सुदामाजी को रोग का नाम न सुनना पड़ा।

गुरु-शिष्य के प्रति कहते हैं कि- हे शिष्य! मैंने जो तुझे भक्त, योगी, तथा ज्ञानी की स्थिति के संबन्ध में सूक्ष्म रीति से कहा है, उस पर एकान्त में जाकर बैठ और विचार कर।

॥ ॐ तत्सत् ॥

ॐ
श्री नित्यानन्द विलास